प्रथम संस्करण	:	मई १९४९
द्वितीय संस्करण	:	मार्च १९५०
तृतीय संस्करण	:	मई १९५२
चतुर्थ संस्करण	:	अक्तूबर १९५५
पचम संस्करण	:	जनवरी १९५८
षष्ठ संस्करण	:	फरवरी १९६०
सप्तम संस्करण	:	फरवरी १९६२
अष्टम संस्करण	:	मार्च १९६४

मूल्य : पांच रुपये

प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
मुद्रक : हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली

निवेदन

'आत्म-विकास' का विषय उसके नाम से ही स्पष्ट है। इस ग्रन्थ म मनोविज्ञान, स्वास्थ्य-विज्ञान, आकृति-विज्ञान, व्यवहार-विज्ञान और अर्थ-विज्ञान आदि मानव-विज्ञान-सम्बन्धी विषयो की अधिक से अधिक उपयोगी, प्रामाणिक एवं सारगर्भित सामग्री कम से कम शब्दो मे और तर्कसम्मत सरल भाषा मे प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। पाठको को इसमे वे सभी बातें सक्षेप मे मिलेगी जिनका जानना एक सामाजिक प्राणी के लिए आवश्यक है। इसमे कोरे सिद्धान्तो की चर्चा नही, व्यावहारिक जीवन का सकेतात्मक वृत्तान्त मिलेगा, प्राचीन और आधुनिक जीवन-विज्ञान का सुन्दर सम्मिश्रण मिलेगा। एक प्रकार से यह जीवन विषयक एक छोटा-सा विश्व-कोष है। मैं अधिकारपूर्वक यह कह सकता हू कि मैंने इस मौलिक ग्रन्थ को सैकडो ग्रन्थो के शास्त्रीय अध्ययन के आधार पर वैज्ञानिक बुद्धि एव आधुनिक दृष्टिकोण से लिखा है।इसके द्वारा पाठको का यदि कुछ भी बुद्धि-वर्द्धन या मनोरजन हुआ, तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक मानूगा।

इस ग्रन्थ को लिखने की प्रेरणा मुझे मेरे मित्र और हिन्दी के सुलेखक, पत्रकार एव पण्डित ठाकुर राजबहादुरसिंह से मिली थी। इस विषय मे मेरी जितनी जानकारी थी, उसको लिपिबद्ध करने का कष्ट मैंने उनके आग्रह से ही उठाया है। उनके प्रति मुझे उतना ही कृतज्ञ होना चाहिए, जितना कोई उद्योगी किसी उद्योजक के प्रति होता है। प्रकाशक के प्रति भी मैं विशेष रूप से कृतज्ञ हूं, क्योकि उन्होने मेरी इच्छा का सम्मान करके 'आत्म-विकास' को सुन्दर रूप मे प्रकाशित करके यथाशीघ्र जनता के हाथो मे पहुचाने का शुद्ध प्रयास किया है। अन्त मे मैं उन ग्रन्थ-लेखको के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हू जिनके उद्धृत वाक्यो से मेरे ग्रन्थ का गौरव बढा.

है। यथास्थान उन ग्रन्थों या ग्रन्थकारों का नामोल्लेख कर दिया गया है।

शीघ्र प्रकाशन के लिए मेरी व्यग्रता के कारण इस पुस्तक में यत्र-तत्र कुछ त्रुटियां रह गई हैं। विधाता की सृष्टि भी दोषपूर्ण होती है, अतः मानवकृति का सदोष होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

वसन्त-निवास
मुल्तानपुर
२२-३-४६

—आनन्दकुमार

विषय-सूची

१. आत्म-विकास [११-५६]

२. मनुष्य का मस्तिष्क [५७-६०]

३. स्वास्थ्य, व्यायाम, विश्राम [६१-१५५]

४. सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति [१५६-१९७]

८ संग्रह-त्याग न विनु पहिचाने [२८५-३४४]

९. आत्म-परीक्षा [३४५-३७६]

१०. चयनिका [३७७-३९२]

१. आत्म-विकास

आत्म-विकास एक प्राकृतिक धर्म है क्योकि मनुष्य स्वभाव से ही महत्त्वाकांक्षी जीव होता है। वह अपनी स्थिति से कभी सन्तुष्ट नहीं रहता, दूसरों से स्पर्द्धा करता है। ससार के सघर्षमय, प्रतियोगितामय जीवन में मनुष्य बिना आत्मोत्थान किए, बिना अपना एक निश्चित स्थान बनाए खड़ा नही रह सकता। सभी महत्त्वानुरागी है; सभी को जीविका, प्रतिष्ठा और सुख-प्राप्ति की चिन्ता रहती है, इसलिए सभी उनके लिए प्रयत्नशील रहते है। ऐसी स्थिति मे सबलता प्राप्त किए बिना जीवन मे सफलता प्राप्त करना कठिन है। जगत् का यह प्राकृतिक नियम है कि अचर वस्तुए सचर प्राणियों द्वारा भोग्य होती है और प्राणियो में कायर प्राणी वीरों के अन्न (खाद्य) होते है। आत्म-विकास करना एक राष्ट्रीय धर्म भी है, क्योकि महात्मा गांधी के शब्दो में 'यदि प्रत्येक व्यक्ति आत्मोद्धार कर ले तो सारे देश का उद्धार हो सकता है।' नैतिक, भौतिक, व्यक्तिगत, सामाजिक—सभी दृष्टियो से आत्म-विकास करना मनुष्य का परम कर्तव्य है।

प्रत्येक व्यक्ति स्वय अपना पूर्वज होता है। मनुष्य बाहरी साधनों की सहायता से नहीं, मुख्यतः आत्मशक्ति द्वारा ही आत्म-विकास करता है। प्रत्येक व्यक्ति अपना विधाता स्वय होता है। दूसरे शब्दों में ईश्वर हमको जैसा बना देता है, हम वैसे ही नही बने रहते। हम वही है, जो हम अपने साधनों से अपने को बनाते है। समाज हमारे ईश्वर-निर्मित रूप को उतना मान नही देता, जितना स्वनिर्मित रूप को। सभी द्विज है—एक रूप में वे मनुष्य होकर जन्म लेते है, दूसरे रूप में वे नर-देव, नर-पिशाच, नर-पशु या गर्दभ कहे एव माने जाते हैं।

इससे स्पष्ट है कि मनुष्य अपने को जैसा बनाता है, उसीके अनुसार उसकी गणना होती है। मनुष्याकार का विशेष सम्मान नहीं होता, बल्कि गुण-कर्म के आधार पर मानवता, दानवता या पशुता की पहचान होती है। आत्मा के पुनर्जन्म में विश्वास करने से भी इस सत्य को मानना पडेगा कि प्रत्येक व्यक्ति स्वय अपना पूर्वज होता है और अपने कर्म के अनुसार फल पाता है—विकास या विनाश को प्राप्त होता है : 'कर्मायत्त फल पुंसा बुद्धिः कर्मानुसारिणी।'

महाजनो येन गतः स पंथा

आत्मोन्नति कैसे की जाती है, या की जा सकती है—इसपर विचार करना चाहिए। जीवन का क्षेत्र बहुत व्यापक है; अनेक दिशाओं मे लोग अनेक उपायों एव साधनो से आगे बढते हुए देखे जाते हैं। प्रतिभाशाली व्यक्ति अवसर के अनुकूल साधनों का निर्माण करते हैं। विलक्षण प्रतिभावाले प्राय. अपना मार्ग स्वय बनाते है, दूसरों के मार्ग पर नही चलते। कहा भी है कि 'लीक छांडि तीनो चले, सायर, सिंह, सपूत' (कबीर)। ऐसी दशा मे किसी एक मार्ग की ओर संकेत करके यह नही कहा जा सकता कि यही सफलता का मार्ग है। केवल कुछ ऐसे मूल गुणों की ओर सकेत किया जा सकता है जो सफल व्यक्तियों के मूल चरित्र मे मिलते हैं। उनके आधार पर मनुष्य स्वय साधना करके अपने जीवन-मार्ग को बना सकता है या ढूढ सकता है। उचित रीति यही है कि जब तक अपने पैरो मे बल और अपनी बुद्धि मे स्वतन्त्र विचार करने की शक्ति न आ जाए, तब तक महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति महापुरुषों के कार्य को ही अपना मार्ग माने। जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रो में जीवन का विकास कैसे किया जाता है, इसको हम सत्पुरुषो द्वारा प्रयुक्त सिद्धान्तों से आधार पर सक्षेप मे लिखेगे।

आत्मशक्ति का विकास

आत्मविश्वास

आत्मशक्ति की दृढ़ता एव सबलता सब जगह सफलता देती है। इसके लिए निम्नलिखित बातो पर ध्यान देना आवश्यक है। आत्म-विश्वास के बिना मनुष्य मे स्वावलम्बन की प्रवृत्ति ही नहीं उठती और स्वावलम्बन के बिना वह अपने को उठाने मे असमर्थ होता है। महत्त्वा-कांक्षी व्यक्ति को आत्मसत्ता मे सर्वाधिक विश्वास करना चाहिए। उसमे यह विश्वास होना चाहिए कि उसका जीवन निरर्थक नही है; उसमे कुछ विशेष शक्तियां है, तभी ईश्वर ने उसको मानव-शरीर दिया है, वह तुच्छ होता तो मनुष्य का शरीर न पाकर खटमल या झींगुर का शरीर पाता। यदि आंख से देखने पर अपना शरीर मनुष्य जैसा दिखलाई पड़ता है तो निश्चित रूप से विश्वास कर लेना चाहिए कि हम भी वही हो सकते है जोकि कोई अन्य मनुष्य-शरीरधारी हो चुका है, और उसके साथ ही अपनी क्षणभगुरता पर नही, बल्कि अपनी ईशता पर विश्वास करना चाहिए। यह विश्वास आत्मस्फूर्ति देता है, मनुष्य के सोए हुए बल को जगाता है।

सुप्रसिद्ध रूसी लेखक गोर्की ने एक बार अपने देश के किसानों के सामने भाषण देते हुए कहा था कि याद रखो कि तुम पृथ्वी के सबसे आवश्यक प्राणी हो।[1] कोई कारण नही कि कोई व्यक्ति अपने को अनावश्यक समझे। जब तक वह स्वय अपने को आवश्यक न मानेगा, तब तक दूसरे उसको कैसे आवश्यक मानेगे। अतएव अपने साथ विश्वासघात न करना चाहिए; अपनी मनुष्यता को पहचानना चाहिए। महाकवि शेक्सपियर ने लिखा है कि सबसे बड़ी बात यह है कि अपने

---

१. Remember, you are the most necessary man on the earth.

साथ सच्चे बनो[1]। अपने साथ सच्चे बनने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि मनुष्य अपने को धोखे मे न रखे, अपने मनुष्यत्व और मनुष्य-सुलभ शक्तियो मे विश्वास रखे; इस बात पर विश्वास करे कि वह शव की तरह इस भवसागर में बहने के लिए नहीं फेका गया है; वह जीवित प्राणी है। अतएव सजीव एवं शक्तिमान बनकर इस भवसागर को तैरकर पार करना उसका धर्म है।

आत्मज्ञान

दूसरी प्रधान आवश्यकता है आत्मज्ञान की। आत्मज्ञान का अर्थ है—अपने को पूर्ण रूप से पहचानना, अपने बलाबल को जानना, अपनी साधक और बाधक चित्त-वृत्तियों को समझना। अपनी इच्छाओं, कल्पनाओ और विचारधाराओ एव शरीर-सामर्थ्य को तोलना ही आत्मज्ञान है। प्राचीन नीतिकार अप्पय दीक्षित ने लिखा है कि नीति-शास्त्र के पडित, ज्योतिषी, चतुर्वेदी, शास्त्री और ब्रह्मज्ञानी बहुत मिलते है, परन्तु अपने अज्ञान को समझनेवाले विरले ही मिलते है :

नीतिज्ञा नियतिज्ञा वेदज्ञा अपि भवन्ति शास्त्रज्ञा ।
ब्रह्मज्ञा अपि लभ्याः स्वज्ञानज्ञानिनो विरलाः ॥

अपने अज्ञान, अपनी अपूर्णता और असमर्थता को समझकर ही अपने को सस्कारित, ज्ञान-गुण से समर्द्धित तथा आत्मशक्ति से समृद्ध बनाया जा सकता है।

आत्मशुद्धि

आत्मज्ञानी वही हो सकता है जो सचाई के साथ स्वय आत्म-स्वरूप को देखे। शरीर-शास्त्री डॉक्टर आत्मज्ञानी नही माना जाएगा। कोई भी व्यक्ति जो अपनी समर्थता और विवशता का विवेचन कर सके, आत्मज्ञानी हो सकता है। आत्मज्ञान के बाद आत्मशुद्धि की

१ This above all, to thine ownself be true.

परम आवश्यकता होती है; क्योकि आत्मा की दैवी सम्पत्तियो को अनेक आसुरी सम्पत्तिया या प्रवृत्तियां उसी प्रकार घेरे रहती है, जैसे प्राचीन ऋषि-मुनियों को दिन में भी निशाचर घेरे रहते थे। अपनी मनोव्याधियो से मुक्त होकर ही मनुष्य स्वस्थचित्त होकर आत्म-विकास कर सकता है। अतएव आत्मशुद्धि नितान्त आवश्यक है। यह आत्म-शुद्धि रेडी का तेल पीने से नही, वल्कि मन के मिथ्या विकारों को भगाने से होती है।

मानसिक व्याधियों की सेना वहुत वड़ी है। उनमे से अधिकांश भय से उत्पन्न होकर स्वयं भयोत्पादक हो जाती है—जैसे किसी मां की लडकी कुछ दिनो मे स्वयं मा वन जाती है। मानसिक भीरुता जीवन की प्रगति रोक देती है, इसलिए उसके विषय मे कुछ जान लेना आवश्यक है। भय मुख्यतः इन कारणो से उत्पन्न होता है :

अज्ञान—किसी विषय को जव मनुष्य नही समझता तो उससे डरता है। अंधेरी कोठरी में जाने से पहले जिस प्रकार भय लगता है, वैसे ही किसी काम मे अनभिज्ञ होने पर उसको करने मे डर लगता है। प्रकाश से भय स्वभावतः नष्ट हो जाता है—वह चाहे सूर्य-प्रकाश हो या आत्म-प्रकाश अथवा ज्ञान-प्रकाश।

संशय—किसी वात को न समझने से जो सदेह उत्पन्न होता है अथवा समझने पर भी स्वभाववश जो विचिकित्सा की भावना होती है उससे भय तत्काल उत्पन्न होता है। मन मे शका होने पर छोटी वस्तु भी वड़ी लगती है, झाड़ी मे भी भूत दिखलाई पड़ता है। सदेह से भ्रम और भ्रम से निराशा उत्पन्न होती है।

उदासीनता—नीरसता या उदासीनता से जीवन-रथ के दो मुख्य घोडे—आशा और उत्साह—मर जाते है और मनुष्य को ससार अंधकारमय, मायामय और भयदायक लगता है। विरक्ति से निर्भीकता

की नही बल्कि निराशा और भय की सृष्टि होती है।

अनिश्चितता—मन की अस्थिरता या अनिश्चितता अथवा उच्छृ-खलता से जो व्यग्रता उत्पन्न होती है, वह भी अन्ततः भय का कारण होती है। मनुष्य जब दृढमति होकर सप्रयोजन एक निश्चित दिशा की ओर नियम से चलता है तो सकटपूर्ण परिस्थिति मे भय उसको नही लगता।

अनैतिकता—यह भय की बड़ी मां है। चरित्र की निर्बलता से मनुष्य पद-पद पर डरता है। शारीरिक अपराध से ही नही, मानसिक अपराध से भी उसके भय का बीजारोपण होता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, दम्भ, स्वार्थ, घृणा, प्रतिकार-भावना और अनुचित पक्षपात से भीतर-भीतर आत्मा कापती है। मिथ्या भाषण, मिथ्या व्यवहार अथवा मिथ्या विश्वास या अन्धविश्वास से तो भय अवश्य ही बढ़ता है। हिसा या क्रूरता से भय का भयानक सचार होता है। फ्रांस के एक महामान्य ग्रथकार ने लिखा है कि अत्याचार और भय परस्पर हाथ मिलाते है, एक-दूसरे के सखा होते है।[1] भयभीत दशा मे मनुष्य क्रूरता करता है और क्रूरता करने के बाद उसको भय लगता है। मनुष्य अनैतिक आचरण से भयभीत होता है और भयभीत होने पर अनैतिक आचरण करता है। नैतिक पक्ष प्रबल होने पर एक व्यक्ति मे भी दस हजार व्यक्तियो का मनोबल आ जाता है।

अशक्तता—भय और अशक्तता भी एक-दूसरे के बाप-बेटे है। किसी भी प्रकार की निर्बलता में प्रतिपक्षी की चिन्ता होती है। स्वास्थ्य के निर्बल होने पर रोग का, मन के निर्बल होने पर परिस्थितियो का, और व्यक्तित्व के निर्बल होने पर शत्रु का भय मन में आता है। इसी प्रकार भयत्रस्त रहने पर सभी बातों मे अशक्तता आ जाती है।

---

१ Cruelty and fear shake hands together —Balzac

घबराहट और रोगजन्य अशक्तता—दोनों से गाड़ी की गति बढ़ती है, हृदय धड़कता है। इसीसे समझना चाहिए कि भय और अशक्तता का प्रभाव एक-सा होता है। जब मनुष्य अपने को अशक्त पाता है, तभी वह वेदना या वेदना की कल्पना से भयाक्रान्त होता है। छोटे बच्चे अशक्त होते है तभी तो वे बात-बात में डरकर चिल्लाते है। अशक्त होने पर दूसरों से ही नहीं, अपने से भी डर लगता है। क्षीणकाय व्यक्ति सदैव डरता है कि कही उसके हृदय की गति न रुक जाए। शरीर और मन से दुर्बल बच्चे कभी-कभी अपने चिल्लाने की आवाज़ से चौंकते है।

अयोग्यता—अयोग्यता के कारण मनुष्य को यह भय सदा बना रहता है कि कहीं कोई भूल न हो जाए और उस भय से प्राय. भूल हो ही जाती है क्योकि मन में भय रहने से रही-सही योग्यता भी स्फुटित नही होने पाती, मनुष्य की बोली तक बन्द हो जाती है ; वह हक्का-बक्का हो जाता है।

अकर्मण्यता—हाथ पर हाथ रखकर बैठने से भय मुह खोलकर सामने खडा हो जाता है। आलस्य से पुरुषार्थ क्षीण हो जाता है और भयकर परिस्थितिया मनुष्य को दबा लेती है। उसको चारो ओर भय के भूत ही दिखलाई पड़ते है। काम के साथ भय निश्चित रूप से समाप्त हो जाता है। जब मनुष्य एक दिशा मे चल पड़ता है तो भय उसके पैरो के नीचे आ जाता है। युद्धस्थलों में यह देखा गया है कि युद्धारम्भ के पूर्व बहुत-से सिपाही भावी सहार की कल्पना से भयभीत रहते है, परन्तु युद्ध के प्रारम्भ होने पर भीत सैनिक भी गोलियों की बौछार मे निर्भय होकर दौड़ता है। इसका कारण केवल यह है कि कर्मोद्यत होने पर भय समाप्त हो जाता है ; तब मनुष्य अपनी मृत्यु से भी नहीं डरता। शारीरिक श्रम से मन का भय निश्चय ही भागता है। आलस्य

में कल्पनाजन्य भय से अपनी निस्सहायावस्था का जो अनुभव होता है वह महाआत्मनाशी होता है। शारीरिक एव मानसिक शिथिलता के कारण ही प्राय जीवन में असफलता होती है।

दीनता—चाहे परिवार की दीनता हो या स्वभाव की अथवा साहस-उत्साह की या धन की, वह भय उपजाती है। आर्थिक दीनता से असमर्थता ज्ञात होती है। पारिवारिक दीनता से मनुष्य अपने को हीन मानकर दूसरो से डरता है। स्वभाव की दीनता से स्वामी होने पर भी मनुष्य अपने सेवकों तक से डरता है। दीन व्यक्ति सदैव हीन-चित्त एव आकुल-व्याकुल रहता है।

परवशता—परवशता मे सर्वत्र भय ही भय का सामना करना पड़ता है। परवशता हम उस परिस्थिति को कहते हैं, जिसमें मनुष्य अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व को खो देता है। उस दशा में वह स्वावलम्बी न होकर पूर्णरूपेण परावलम्बी बन जाता है। पूर्ण आत्म-विश्वास के साथ स्वतन्त्र व्यक्तित्व बना लेने पर मनुष्य निर्भर हो जाता है। अपने को किसीके आश्रित कर देने पर अथवा भीड़ का एक अग बना देने पर आत्म-शक्ति क्षीण हो जाती है। भीड़ में अन्धविश्वास और उसके कारण भय के भाव उठते है। भीड़ मे मिले रहने पर यदि किसी ओर भय का सचार हुआ तो भगदड मच जाती है, लोगों में परिस्थिति को समझने या उसका सामना करने की योग्यता नही रह जाती। भीड़ में भेड़ बनने की प्रवृत्ति उठती है। अकेले रहने पर धैर्य सबल होता है। कोई कुत्ता भी अकेले रहने पर जब विषम परिस्थिति में पडता है तो तनकर मुकाबला करता है। नेपोलियन का कहना था कि जो अकेले चलते है वे तेज़ी से बढ़ते है।[1] और यही निर्भीक हिटलर का भी मत था कि साहसी व्यक्ति यदि अकेला रहे तो महासाहसी बन

१. They walk with speed who walk alone.

जाता है।[1] इसका तात्पर्य यह है कि स्वतन्त्र अधिकारी बनने से भय का निवारण होता है।

असहनशीलता—असहनशीलता से भय खड़ा होता है। असहन-शील होने पर मनुष्य स्वभाववश छोटी-छोटी बातों को भी भयंकर समझता है, क्रोध करता है और अन्त में विषाद, पश्चात्ताप तथा लोक-भय से पीड़ित होता है। भावोन्माद से असहनशीलता तीव्र होती है और भावोन्माद या भावुकता से भय की भावना भी तीव्र होती है।

व्यसन—प्रत्येक व्यसन भयकारी होता है ; क्योंकि बन्धनग्रस्त प्राणी भयभीत रहता ही है। किसी सुख से परिचित होने पर उससे आसक्ति होती है और परिणामतः दुःख से द्वेष तथा भावी कष्ट की कल्पना से भय उत्पन्न होता है। व्यसनी या विलासी व्यक्ति भय से निर्मुक्त होता हुआ नहीं देखा जाता।

श्रद्धा-विश्वास की कमी—श्रद्धा और विश्वास की कमी से आत्म-असमर्थता का अनुभव होता है और यह भय लगा रहता है कि सारा ससार हमारे ही ऊपर आकमरण करने को तैयार है। सुप्रसिद्ध जार्ज इलियट ने लिखा है कि अविश्वास से बढकर एकाकीपन और कौन होगा, अर्थात् उससे अपनी निस्सहायावस्था की कल्पना उठती है।[2] गांधीजी ने भी कहा है कि विश्वास करना एक धर्म है ; अविश्वास करना दुर्बलता है।[3] और हम जानते है कि गांधीजी अपने शत्रु पर भी विश्वास करके सदैव भय-निर्मुक्त रहते थे। अविश्वास से दुराशा ही जन्मती है और दुराशा के गर्भ से भय नामक आत्मज पैदा होता है।

भय को आधार मानकर हमने अनेक मनोव्याधियों का निर्देश

---

१. The strong man is stronger if he remains alone

२. What loneliness is more lonely than distrust

३ To trust is a virtue. It is weakness that begets distrust.

ऊपर कर दिया है। सक्षेप मे यही जानना चाहिए कि जब तक मस्तिष्क शुद्ध एव सुव्यवस्थित नही होता तब तक मनुष्य विवेकपूर्वक अपने कर्तव्य का निश्चय नही कर सकता। स्वाभाविक भीरुता, निराशा, अस्थिरता, उद्विग्नता अथवा अनभिज्ञता या अनुभवहीनता के कारण जब मन अस्तव्यस्त रहता है, तो सारा जीवन अस्तव्यस्त हो जाता है। उस अवस्था में मन मे द्वन्द्व या द्विविधात्मक भाव उठते है और मनुष्य किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। किंकर्तव्यविमूढ होने पर भयकर परिस्थितिया उठ खड़ी होती हैं। जीवन के बहुत-से काम चित्त की अस्तव्यस्तता और भय के कारण बिगड़ते है। हिटलर इस मनोवैज्ञानिक रहस्य को जानता था। सन् १९३३ मे राज्य का प्रधान होने पर उसने कहा था: हम शत्रु को बाहरी साधनों से नही, बल्कि उसीके द्वारा जीतेंगे, भीतर ही भीतर हम उनको नष्ट करके उसपर विजय प्राप्त करेंगे। यही हमारी योजना है। घबराहट, परस्पर-विरोधी विचारो का सघर्ष, अनिश्चितता, भयकर त्रास की भावना—यही हमारे हथियार होगे?[१]

और हम जानते है कि हिटलर ने कई अवसरों पर शत्रु-जनता के चित्त को डावाडोल एव भय-सत्रस्त बनाकर उसको नष्ट कर दिया था। किसी पुराण में भी इस सम्बन्ध में एक कथा है। एक वार यमराज ने दूतों को बुलाकर कहा कि मुझे चार सौ मृत प्राणियो की आवश्यकता है, जाकर लाओ। दूत चार सौ मनुष्यों को मारने के लिए व्याधियों आदि के सहारक अस्त्र-शस्त्र लेकर ससार में पहुंचे। चार सौ के स्थान पर वे आठ सौ मृत प्राणी लेकर यमराज के सम्मुख

१ Our strategy is to destroy the enemy from within, to conquer him through himself. Mental confusion, contradiction of feelings, indecision, panic are our weapons. —Hitler

पहुचे तो यमराज ने विगड़कर अनावश्यक व्यक्तियों को लाने का कारण पूछा। दूतों ने कहा कि हम क्या करे ; हम तो चार सौ व्यक्तियों को मार रहे थे, चलते समय ज्ञात हुआ कि उस हत्याकांड से भयभीत होकर चार सौ व्यक्ति अपने-आप मर गए है। अतः उनके प्राणों को भी लाना पड़ा।

इस कथा के मर्म को समझिए। वह यह है कि अधिकांश लोग विना मारे मरते है। उनके मन में भय का भूत समाया रहता है। वह भूत मस्तिष्क की अशुद्धता से आता है, क्योकि भूतवादियों के भूत भी गन्दी जगहो में, खडहरों और श्मशानो ही में रहते हुए सुने जाते है—देव-मन्दिरों और सज्जनों के घर में नही। भय से जब अपना ही पैर लडखड़ाने लगता है तो मनुष्य जीवन-सग्राम मे खड़ा नही रह सकता।

अतएव आत्मोत्थान करने के लिए मन को शंकारहित, स्वच्छ वनाना चाहिए; उसके कुसस्कारो को मिटाना चाहिए। उनके मिटाने पर ही निर्मुक्त आत्मा उसी प्रकार चैतन्य होगी जैसे किसीकी स्वतत्र मातृभूमि। यह स्मरण रखना चाहिए कि आत्म-शुद्धि एक दिन मे या एक वार में नही होती। इसके लिए दैनिक अभ्यास करना पड़ता है कि मस्तिष्क में मैल न वैठे। कर्तव्य करते समय जहां मन भयभीत हो वहा समझना चाहिए कि मस्तिष्क विकारग्रस्त है। जहा कर्तव्य करने की प्रेरणा या किसी काम को ठीक समझते हुए भी उसको करने का साहस न पैदा हो वहां मानना चाहिए कि मन मे कायरता है, भय है, कापुरुषता है।

आत्म-सयम

आत्म-शुद्धि का कार्य तभी चल सकता है जब साथ-साथ आत्म-सयम का कार्यक्रम भी चलता रहे। मस्तिष्क तो विचारों का भूखा

रहता है। यदि कोई चाहता है कि दुर्विचारों से पोषित न हो तो उसके स्थान पर सद्विचारों का प्रबन्ध करना पड़ेगा। सद्विचारो का अर्थ है, अपनी मूल प्रवृत्तियो को जगाना और सुव्यवस्थित करना। मूल प्रवृत्तियों मे सत्य, अहिसा मुख्य है। सत्य से अधिक शुद्ध और सरल वस्तु कोई अन्य नही हो सकती। सत्य और अहिंसा के आधार पर ही प्रकृति का कार्य चलता है, अतएव प्रकृति के प्रधान प्रतीक—मानव के यही मूलधर्म है। क्रूरता और धूर्तता आदि पशु-धर्म है। प्रत्यक्ष जगत् मे हम देखते है कि सत्य की अन्त मे विजय होती है। धन और मान आदि न्याय से अर्जित होने पर ही सुरक्षित एवं चिरस्थायी रहते है। अन्यायी अन्त मे हारते है। पतञ्जलि ने सत्य लिखा हैं कि सत्य प्रतिष्ठित होने से क्रियाफल स्वाधीन हो जाता है : 'सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।' सत्य ही से परम मानव-धर्म अहिंसा भी सिद्ध होती है। व्यास के मत से: 'अहिंसा परमोधर्मः स च सत्ये प्रतिष्ठितः।' अहिसा का अर्थ है सहृदयता। उसको जीव-रक्षा के अर्थ में ही न लेना चाहिए। स्वभाव एव चरित्र की सरलता एव उदारता से सत्य-अहिंसा की विज्ञापना होती है। इन गुणों से पारस्परिक विश्वास बढता है और यह स्मरण रखना चाहिए कि विश्वास ही लोक-जीवन का धारक है। ससार के सूत्र मे बधकर आगे बढने के लिए विश्वासपात्र बनना परमावश्यक है।

इनके अतिरिक्त अन्य प्रमुख आत्म-विकास के भाव हैं—आशा, उत्साह, साहस और धैर्य। आशा मानव-आत्मा का एक विशेष गुण है, क्योंकि हम देखते है कि जब तक शरीर मे प्राण रहता है, तब तक आशा उसके साथ वधी रहती है, अतएव उसको दवाना न चाहिए और उसको अधकारमय न वनाना चाहिए। उज्ज्वल भविष्य की आशा रखने से आत्म-स्फूर्ति चिर-जागरित रहती है। उत्साह से बढ़कर

संसार मे कोई वल नहीं है, ऐसा व्यास ने कहा है : 'नास्त्युत्साहात् परं वलम्।' आदिकवि के मत से उत्साह द्वारा ससार मे कुछ भी दुष्प्राप्य नही है : 'सोत्साहस्य हि लोकेपु न किंचिदपि दुर्लभम्।' और उन्हीके शब्दों में हनुमान के मत से उत्साह ही सदैव सब कार्यों की सफलता का कारण होता है : 'अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेपु प्रवर्त्तकः।' साहस से पुरुपार्थ और मनोवल सिद्ध होता है। इस वर्ग के गुणो में धैर्य का स्थान वहुत ऊचा है। आशा, विश्वास, उत्साह और साहस आदि से उत्पन्न मनस्विता का धारक धैर्य ही होता है। धैर्य के विना सभी मानस-शक्तिया अल्पजीवी होती हैं। कैसा भी उत्साह-सम्पन्न या साहसी व्यक्ति हो, यदि वह धैर्य-स्खलित होगा तो हताश होकर कहीं न कहीं वैठ जाएगा, विघ्न पड़ने पर कार्य-सिद्धि के पूर्व ही कर्म-घात करेगा और एक वार गरमाकर फिर ठडा पड़ जाएगा। जीवन के सभी क्षेत्रों में धैर्य सफलतादायक होता है। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में आविष्कारकों को देखिए, वार-वार विफल होकर भी वे हार नहीं मानते। विजली का आविष्कार करते समय एडिसन को ९०० प्रयोगों में असफलता ही मिली थी, परन्तु वह धैर्य-च्युत नहीं हुआ। अन्त में उसने विजली का आविष्कार कर ही लिया। राजनीति के क्षेत्र में गांधीजी के प्रयासों को देखिए। वार-वार हारकर भी वे मैदान में धैर्यपूर्वक खड़े ही मिलते थे। अन्त में वे विजयी हुए। इग्लैंड के प्रसिद्ध भूतपूर्व प्रधानमंत्री विलियम पिट ने एक बार कई विद्वानों से पूछा कि प्रधानमंत्री के लिए सबसे आवश्यक गुण कौन-सा होना चाहिए। किसीने कहा परिश्रम, किसीने उत्साह, किसीने वाक्-पटुता। पिट ने कहा कि धीरता से बढ़कर शासक के लिए अन्य गुण नही हो सकता। उस अनुभवी प्रधानमंत्री का कथन सत्य था। हम भारतीय राजनीति में प्रत्यक्ष देख रहे है कि धीरता और बुद्धिमत्ता से सरदार

वल्लभभाई पटेल ने धीरे-धीरे लगभग ६०० ऐसे महाराजाओं के राजमुकुट उतरवा लिए जिनमें से प्रत्येक महीपाल, धर्मावतार, नरेश, अन्नदाता और न जाने क्या-क्या बना हुआ था। वह शासक की बुद्धि-धीरता का ही प्रभाव है। जिस धीरता से कृष्ण ने (हिंसात्मक ढंग से कुरुक्षेत्र में हजारो राजाओं के सिर उतरवाकर) भारतीय एकता की स्थापना की थी, जिस धीरता से चाणक्य ने (कूटनीति और शत्रु-वध का आश्रय लेकर) अखड मौर्य-साम्राज्य की नींव डाली थी, उसी धीरता से पटेल ने (अहिंसात्मक रीति से अनेक सत्ताधिकारियों का नैतिक वध करके) भारतीय एकता को दृढ बनाया।

यही कुछ मानसिक विभूतिया है जिनके सचय से पौरुष दृढ होता है, पराक्रम सिद्ध होता है। मर्यादापुरुषोत्तम राम के भी यही विशेष गुण थे। सीता ने लका मे उनके इन्ही गुणों का स्मरण करके हनुमान से कहा था कि उत्साह, पौरुष, बल, अक्रूरता, कृतज्ञता, विक्रम, प्रभाव—ये सब गुण राम के है :

> **उत्साहः पौरुषं सत्त्वमानृशंस्यं कृतज्ञता।**
> **विक्रमश्च प्रभावश्च, सन्ति वानरराघवे॥** (रामायण)

इस स्थान पर हम फिर यही कहेंगे कि 'महाजनो येन गतः स पंथा।' चित्त-सयम द्वारा अपनी सामर्थ्य-शक्ति को संगठित एव प्रतीव्र बनाकर ही मनुष्य जीवन में विजय की आशा कर सकता है। आत्म-सयम से अपने स्वास्थ्य, चरित्र, स्वभाव तथा ज्ञान—इन चारों का संस्कार करना चाहिए। इनके संयमित होने से इच्छा-शक्ति स्वभावतः बलवती होती है।

संकल्प

अपनी इच्छाओं को जगाकर देखना चाहिए कि उनमे सबसे प्रबल इच्छा कौन-सी है? सबके मन मे एक न एक इच्छा प्रधान होती है

और उसीकी ओर उनके मस्तिष्क का स्वाभाविक झुकाव होता है। साधारण मनोयोग से अपनी रुचि का पता चल जाता है। सामान्य इच्छाओं को त्यागकर एक विशिष्ट इच्छा को पकड़ना चाहिए। साहित्य, व्यापार, राजनीति, विज्ञान या कला-कौशल जो भी स्वभाव के अनुकूल जान पड़े उसीको अपना प्रमुख विषय मानना चाहिए, उसीके पीछे मनोरथ को दौड़ाना चाहिए।

प्रबल तरंग को पकड़कर तब निश्चयात्मक बुद्धि से विचार करना चाहिए कि क्या बनना है, कैसे बनना है? इसका दृढ संकल्प करना चाहिए कि अपनी मनोकामना को पूर्ण करके हमें ऐश्वर्यवान् बनना है। जीवन का एक आदर्श बनाकर उसकी पूर्ति का संकल्प करने से जीवन का राजमार्ग सामने दिखलाई पडने लगता है, भीतर से उद्योग करने की आत्म-प्रेरणा होती है। लक्ष्य का निश्चय करके कल्पना को दौड़ाना चाहिए। मस्तिष्क का कल्पना-तत्त्व ही उसका प्रधान शिल्पी या चित्रकार है। वह जीवन के भविष्य का सुन्दर से सुन्दर मानचित्र बना सकता है। उसीके अनुसार बुद्धि उपाय सोचती है, विचारों को साकार बनाने की चेष्टा करती है और जो कमी होती है उसकी पूर्ति बाहरी ज्ञान या शक्ति से करती है। अतएव कल्पना को दूर तक दौड़ाना चाहिए, दूरदर्शी बनना चाहिए।

उद्योग

निश्चित कार्यक्रम बनाकर उसके अनुसार उद्यम करने से ही सफलता मिलती है। उद्योग के बिना मनोरथ कभी सफल नही होते, इसको स्मरण रखना चाहिए। उद्योग ही सच्चा पुरुषार्थ है। उद्योग आत्म-विकास का मूलमंत्र है। नेपोलियन ने एक बार कहा था कि मैंने कर्मोद्योग से ही अपने को बहुगुणित किया है।[1]

---

१ I multiplied myself by my activity —Napoleon

इस सम्बन्ध में विद्वान् कार्लाइल के इस मत को ग्रहण करना चाहिए : जीवन का एक लक्ष्य बनाओ और उसके बाद ईश्वर ने तुम्हें जितना शारीरिक सम्बल और मनोबल दिया है उसको कार्यपूर्ति के निमित्त लगा दो।[१]

महाप्रतिभाशाली और महोद्योगी जार्ज बर्नार्ड शॉ ने थोड़े ही दिनों पहले अपना नब्बेवां जन्मदिन मनाते हुए सफलता का एक मुष्टियोग बताया था। शॉ के कथनानुसार आनन्दमय जीवन बिताने का उपाय यही है कि मनुष्य तन्मय होकर अपने को मनोनुकूल कार्य मे व्यस्त रखे और सुख-दु ख की चिन्ता के लिए अपना कुछ भी समय न दे।[२]

स्वपुत्र संजय से कहा हुआ विदुला का यह वचन भी कण्ठस्थ रखने योग्य है : उठो, आलस्य को त्यागो, कल्याण-कर्म में अपने को लगाओ। इस भाति मन को चिन्तामुक्त करके कार्य करोगे तो अवश्य सफल होगे :

उत्थातव्यं जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु।
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथैः॥ (महाभारत)

अनन्य अनुभवी विद्वान् व्यास का कथन भी ध्यान में रखने योग्य है—बुद्धि, प्रभाव, तेज, बल, उठने की इच्छा, उद्योग—ये सब जिस मनुष्य में हों उसको जीविका का क्या भय हो सकता है :

---

१. Have a purpose in life and having it throw into your work such strength of mind and muscle as God has given you.

—Carlyle

२ The way to have a happy life is to be busy doing what you like all the time, having no time left to consider whether you are happy or not. —G B. Shaw

बुद्धिः प्रभावस्तेजश्च सत्वमुत्थानमेव च ।
व्यवसायश्च यस्य स्यात्तस्याऽवृत्तिभयं कुतः ।। (महाभारत)

अध्यवसाय

उद्योगारंभ करके उसको एक लगन के साथ अन्त तक निभाने से ही कार्यसिद्धि मिलती है। कर्मयोजना के अनुसार निरन्तर परिश्रम करने को अध्यवसाय कहते है। कौटिल्य के मत से इसीको व्यायाम कहते हैः 'कर्मारम्भाणां योगाराधनो व्यायामः।' सावधानी के साथ एक दिशा में एकाग्रचित्त से चिन्तन, सम्पूर्ण पुरुषार्थ से कार्याभ्यास और लक्ष्य का अनुशीलन करना अध्यवसाय या व्यायाम है। यही कर्म-साधन है। यह साधना प्रतिदिन प्रत्येक क्षण करनी पड़ती है।

कर्मोपासना में अनेक दैनिक बाधाए, विवशताएं, विफलताएं पग-पग पर मिलती है। उनपर विजय प्राप्त करने से ही मनोरथ सफल होता है। अतएव कर्म-मार्ग मे सकटों को झेलने के लिए तैयार रहना चाहिए। क्रिया-मंदता और क्रीमहीनता से कर्मघात न करना चाहिए। साधारण प्रलोभन में पड़कर मुख्य व्यवसाय को न भूलना चाहिए। एक रूसी कहावत है कि जब हल जोतने चलो तो अगल-बगल कोई चुहिया देखकर उसको पकड़ने मे समय न गंवाओ। अपनी स्मृति को ठीक रखना चाहिए क्योंकि स्मृति-नाश से पीछे के अनुभव आगे सहायक नही होते और योजना-क्रम ठीक नही चलता। आत्म-विस्मृति से भी बचना चाहिए। परिश्रम से थोड़ी सफलता पाकर कार्य-गति को शिथिल बनाने से लक्ष्य-देवता दूर भाग जाते है। आत्म-विस्मृति से मनुष्य को समय का ज्ञान नही रहता। दुःख के बाद जब एकाएक सुख मिलता है तो कालज्ञ मुनि तक अपने को तथा अपने कर्तव्य को भूल जाते है और समय को नही पहचानते। तपस्वी विश्वामित्र को मेनका के साथ व्यतीत किए हुए दस वर्ष एक दिन के समान

प्रतीत हुए थे। ऐसे ही विष्णुपुराण-वर्णित एक कण्डु ऋषि थे जो प्रम्लोचा नामक अप्सरा पर मुग्ध होकर जप-तप को भूल गए थे। ६०७ वर्ष, ६ महीने, ३ दिन उसके साथ गोमती तट पर रहकर वे अपने को भूले रहे। जब वह जाने लगी तो महर्षि कमण्डलु लेकर सन्ध्योपासना करने चले। इसपर अप्सरा ने पूछा कि आज इतने दिन बाद आपको सन्ध्या-वन्दन का ध्यान कैसे आया? तब मुनि ने कहा कि क्या कहती हो, अभी कल शाम को उपासना कर चुका हूं, आज फिर जा रहा हूं। सुख के इतने दिन उनको एक दिन ही प्रतीत हुए!

कहने का तात्पर्य यह है कि सजग होकर, समय की गति और अपने मूल प्रयोजन को ध्यान में रखकर अथक परिश्रम करना चाहिए। कही मार्ग भूलकर पथ-भ्रांत न होना चाहिए। उससे अध्यवसाय खडित होता है। साथ ही, आकस्मिक घटनाओं और विपदाओं से विचलित न होना चाहिए। इग्लैंड के एक सुप्रसिद्ध भूतपूर्व प्रधानमत्री के इस कथन को याद रखना चाहिए कि बहुत-सी और बड़ी गलतिया किए बिना कोई व्यक्ति महान नही बनता।[1]

अपनी गलतियों से आगे की शिक्षा लेते हुए और अपने को सुधारते हुए सतत उद्योग करने मे बुद्धिमानी है। आत्मिक विकास करनेवाले को यह समझ रखना चाहिए कि कर्म-त्याग प्राण-त्याग से कम भयंकर नही होता। इस लोक को कर्म-लोक कहते है: 'कर्मभूमिरिय ब्रह्मन्।' (महाभारत)। इसमे कर्म की ही प्रधानता है: 'कर्म-प्रधान विश्व करि राखा।' (तुलसी)। अतएव कर्म-नाश से आत्म-नाश

---

१. No man ever becomes great or good except through many and great mistakes —Gladstone

होना स्वाभाविक है। आत्मिक विकास के सम्बन्ध में यही मुख्य-मुख्य बाते है। जीवन-क्षेत्र में इन्हीं आत्म-साधनों से सर्वत्र सफलता मिलती है। इनके अतिरिक्त और भी अनेक साधन है जिनका उपयोग आत्मोत्थान के लिए करना पड़ता है। उनका भी सक्षिप्त परिचय हम आगे देते हैं।

ज्ञान का विकास

ज्ञान आत्मोन्नति में परम सहायक होता है। उससे ही बुद्धि का सशोधन होता है। ज्ञान के साथ विवाह करके बुद्धि योग्यता, प्रगल्भता व सफलता की जननी बनती है। ज्ञानोपार्जन से बुद्धिमान व्यक्ति सहस्रधी एवं सहस्राक्ष बनता है। ईश्वर की सर्वप्रधानता का एक कारण यह भी है कि वह सर्वज्ञ है। मनुष्य छोटे-से जीवन मे सम्भवत: सर्वज्ञ तो नहीं हो सकता, परन्तु बहुज्ञ अवश्य हो सकता है। जो जितना अधिक जानता है, वह उतना ही स्वतत्र एव सामान्य होता है; उसका क्षेत्र उतना ही व्यापक होता है।

ज्ञान की कोई सीमा नही है। प्राकृतिक ज्ञान का समुद्र इतना अगाध है कि हजारो वर्षों के परिश्रम से भी मनुष्य अभी तक उसकी गहराई नही नाप सका है। साधारण परमाणु की शक्ति तक का उसको पूरा पता नही था। कौन जानता था कि वे यम के दूत भी है। ज्ञान की असीमता को देखते हुए कोई यह नहीं कह सकता कि अब हमें कुछ सीखने को नहीं है। जीवन को विकासशील बनाने के लिए सदैव कुछ न कुछ ज्ञानोपार्जन करना आवश्यक है। कुछ न कुछ का अर्थ यह नहीं कि जो भी सामने मिले उसीको हृदयगम कर लिया जाए।

इस सम्बन्ध में चाणक्य का यह मत है कि शास्त्र असख्य हैं, विद्याए भी बहुसंख्यक हैं, समय कम है, बाधाएं अनेक है, अतएव

हंस जिस प्रकार पानी में मिले दूध को अलग करके ग्रहण करता है, उसी प्रकार जो साररूप हो उसीको ग्रहण करना चाहिए :

अनन्तशास्त्रं बहुलाश्च विद्या,
अल्पश्च कालो बहु विघ्नता च ।
यत्सारभूतं तदुपासनीयं,
हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् ।। (चाणक्य)

उसी ज्ञान का सचय करना चाहिए जो उपयोगी हो, भ्रम-शून्य अर्थात् यथार्थ हो, जिससे मस्तिष्क का भरण ही नहीं, मुख्यतः उसका पोषण हो, जिससे जानकारी ही न बढे, बल्कि आत्म-निर्माण भी हो। मस्तिष्क के भीतर पर्याप्त स्थान होता है, उसमें कौतुकालय न बनाकर कार्यालय बनाना चाहिए, जिससे लोकोपयोगी कर्म हो सके और अपना लाभ भी।

ज्ञान के विषय को ठीक से समझकर तब देखना चाहिए कि किन साधनों से उसका सचय हो सकता है। ज्ञान के दो भेद है : (१) ज्ञान और (२) विज्ञान। शास्त्रीय ज्ञान को 'ज्ञान' कहते है। प्रयोगात्मक, रचनात्मक या व्यवसायात्मक अनुभव-सिद्ध एवं अभ्यास-साध्य ज्ञान को 'विज्ञान' कहते हैं। शुक्राचार्य के मत से वाणी-सम्बन्धी कर्मो को विद्या और ऐसा कर्म जो बिना वाणी के सहयोग के भी किया जा सके, कला कहते है। विद्या और कला को हम क्रमशः ज्ञान और विज्ञान कह सकते है। सक्षेप में ज्ञान-विज्ञान, विद्या-कला का यही परिचय है। इनकी प्राप्ति के मुख्य साधन ये है—स्वानुभूति, जिज्ञासा, स्वाध्याय, शिक्षा और अनुभव तथा अभ्यास।

स्वानुभूति

बहुत-सा ज्ञान बुद्धि की चैतन्यता, एकाग्रता एवं जागरूकता से स्वय प्रस्फुरित होता है। आत्म-तत्त्व और मानवता का मर्म सहानु-

भूति से ही ज्ञात होता है। मस्तिष्क की खिड़कियों को खोल देने से आत्म-ज्ञान तो प्रकाशित होता ही है, साथ ही बाहर के ज्ञान-प्रकाश की किरणे भी अपने-आप मानस-मन्दिर में प्रवेश करती है। मानस-पट स्वच्छ रहने पर उसपर दूसरों के चरित्र की छाप चुपचाप अंकित होती है, और उसके अनुसार मनुष्य को कर्तव्य-ज्ञान की स्वानुभूति होती है। बुद्धि को सक्रिय रखने से बहुत-सा ज्ञान आत्मा द्वारा ही सुलभ हो जाता है क्योंकि वह (आत्मा) स्वयं कई घाट का पानी पिए रहती है।

जिज्ञासा

यदि मनुष्य अपनी बुद्धि-जिज्ञासा को सचेत रखे, अपनी प्राकृतिक ज्ञान-पिपासा को शान्त न होने दे और प्रत्येक समझ मे न आनेवाले रहस्य को कौतूहल की दृष्टि से देखकर समझने का सहज प्रयत्न करे, तो मस्तिष्क ज्ञान-समृद्ध हो जाता है। प्रसिद्ध अंग्रेजी राजकवि रडयर्ड किप्लिग ने लिखा है कि मै जो कुछ जानता हूं वह मेरे छः स्वामिभक्त सेवकों का बताया हुआ है ; उनके नाम ये है—कहां, क्या, कब, क्यों, कैसे और कौन।[1]

स्वाध्याय

स्वाध्याय का तात्पर्य वेद-शास्त्र पढ़ना नही है। उसका अर्थ है स्वयं अध्ययन करना। वह अध्ययन पुस्तक का भी हो सकता है, परिस्थिति का भी और देश-काल या मानव-स्वभाव का भी। सस्कृत मे वेदपाठी के अतिरिक्त नगर-व्यापारी को भी स्वाध्यायी कहते है क्योंकि वह बाजार का अध्ययन करता है, भाव के चढ़ाव-उतार को

१. 'I had six honest serving-men They taught me all, I know. Their names are where and what, and when and why and how and who'

समझता है, उसको पढ़ता है और तोलता है।

बिना पढे-लिखे मनुष्य यदि स्वाध्यायी हो तो वह व्यावहारिक ज्ञान का पडित हो सकता है। आत्मोन्नति के लिए शास्त्रीय ज्ञान की अपेक्षा व्यावहारिक ज्ञान कहीं अधिक उपयोगी होता है। सुप्रसिद्ध पत्रकार लुई फिशर ने हाल ही में स्टैलिन पर एक लेख-माला प्रकाशित की है। उसमे एक स्थान पर लिखा है कि मनुष्यों और परिस्थितियों को समझने की योग्यता ही स्टैलिन की ज्ञान-पूजी है; वह बहुत विद्या-सम्पन्न नहीं है, परन्तु जो एक शासक को जानना आवश्यक है अर्थात् अधिकार लेकर उसको कैसे सुरक्षित रखना चाहिए—इसको उसने सीख लिया है।[१]

जीवन-सग्राम में खडे और पड़े रहने से, देखने-सुनने से, मिलने-जुलने से, देश-भ्रमरण करने से और सामाजिक कार्यों मे भाग लेने से निश्चय ही स्वाध्याय होता है। कम से कम काल-प्रगति का ज्ञान, लोक-विचारधारा का ज्ञान उसीसे सुलभ होता है। कभी-कभी मनुष्य परिस्थितियों का धक्का खाकर और कभी-कभी कुछ खोकर सीखता है या सचेत होता है। गाधीजी ने एक स्थान पर लिखा है कि घोर संकटपूर्ण परिस्थिति (या मर्मविदारक घटना) ही महापुरुषों का विद्यालय है।[२] प्राय. मनस्वी लोग अपनी पराजय से भी शिक्षा लेते है। इन सबको हम स्वाध्याय ही मानेंगे।

स्वाध्याय के इन समस्त साधनों की अपेक्षा पुस्तक द्वारा स्वाध्याय करना निश्चय ही अधिक सरल होता है। पुस्तकों द्वारा अनुभूत ज्ञान

१ But his great asset is the ability to read men and events He possesses no rich fund of knowledge But he has learnt what every political boss must know, how to get and keep power.

—Louis Fischer

२. Deep tragedy is the school of great men.

एक ही स्थान पर सचित मिल जाता है, इसलिए उनको स्वाध्याय का मुख्य साधन बनाना चाहिए। सामान्य ज्ञान[1] और विशिष्ट ज्ञान[2] दोनों की उपलब्धि पुस्तकों से होती है। सामान्य ज्ञान के लिए ऐसे ग्रन्थों को पढना चाहिए जिनसे जीवन-शिक्षा, चरित्र-शिक्षा, लोक-शिक्षा मिले। महर्षि पतंजलि ने तीन विषयों का ज्ञान मनुष्य-मात्र के लिए उपयोगी माना है—मानस-सम्बन्धी ज्ञान, वाणी-सम्बन्धी ज्ञान तथा शरीर-सम्बन्धी ज्ञान। इसलिए उन्होने मन, वचन और काया के सुधार के लिए तीनों विषयों पर एक-एक ग्रन्थ लिखा है—योग-दर्शन, व्याकरण महाभाष्य और वैद्यक-शास्त्र। प्रत्येक व्यक्ति को कम से कम साधारण मनोविज्ञान, भाषा-व्यवहार और शरीर-विज्ञान का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। इनके अतिरिक्त साहित्य, इतिहास, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और राजनीति को भी अपने अध्ययन का विषय बनाना चाहिए। सभी विषयों में पारगत होना आवश्यक नही, परन्तु प्रवेश तो अनेक विषयों में होना ही चाहिए। बहुज्ञता से व्यक्तित्व व्यापक बनता है, यह हम कह चुके है।

पुस्तक पढने की एक कला होती है। विशेषज्ञो का कथन है कि धीरे-धीरे नहीं बल्कि तेजी के साथ पढ़ना चाहिए, क्योकि गति और ज्ञान का परस्पर गहरा सम्बन्ध होता है। तेज पढने से विचारों की धारा खडित नही होती और एक-एक वाक्य का सम्पूर्ण विचार मस्तिष्क में यथास्थान बैठता जाता है। एक-एक शब्द को घोटनेवाला व्यक्ति वाक्यगर्भित विचार को एकसाथ ग्रहण नही करता, इसलिए वह उसको ठीक-ठीक याद नही कर पाता। यह स्मरण रखना चाहिए कि पूरा भाव एक शब्द या दो-चार शब्दों मे नही समाया रहता

१ General knowledge

२ Specialised knowledge.

बल्कि वह उनके द्वारा सयोजित वाक्य में मिलता है। अतएव शब्दार्थ पर अधिक ध्यान न देकर वाक्यार्थ पर ध्यान देना चाहिए क्योकि अभिप्राय समझने के लिए ही ग्रन्थ-पाठ किया जाता है। शैली, कथा-क्रम और शब्द-जाल में न उलझकर ग्रन्थ के मर्म को समझना चाहिए। पढते समय कल्पना और स्मृति दोनों को सचेत रखना चाहिए। कल्पना से वर्णित विषय को साकार करके देखना चाहिए। तब वह अधिक स्पष्ट हो जाता है। स्मृति को चैतन्य रखने से ज्ञान ठीक-ठीक गृहीत होता है। यदि स्मरण-शक्ति ठीक न हो तो पुस्तक पढने से कोई लाभ नही होता ; केवल क्षण-भर का मनोविनोद होता है। स्मृतिहीन व्यक्ति की दशा जर्मनी के भूतपूर्व नाजी-सचिव 'हरहेस' जैसी हो जाती है। न्यूरेम्बर्ग के सुप्रसिद्ध 'ट्रायल' के दिनों में 'हेस' की स्मरण-शक्ति लुप्त हो गई थी। वह एक ही ग्रथ को सात-आठ बार पढता था और प्रत्येक बार उसको यही ज्ञात होता था कि वह उसको प्रथम बार पढ रहा है।

पढना और विचार करना जब साथ-साथ चलता है, तभी ग्रन्थ-पठन का प्रभाव पड़ता है। तोताराम बनने के लिए पढ़ना व्यर्थ होता है। हमारे पुरखे विमान पर चढ़ चुके है, इसको जानकर आत्म-सन्तोष कर लेने से भी पठन-परिश्रम सफल नही होता। सफल तब होता है जबकि इस जानकारी से हमे आत्म-प्रेरणा और आत्म-स्फूर्ति मिले। मर्म को समझकर चिन्तन करना चाहिए कि कहां तक लेखक का मत संग्रहणीय है। उसको तोलना चाहिए, तर्क-बुद्धि से व्यावहारिकता की कसौटी पर कसकर देखना चाहिए और यथार्थता के आधार पर अपना स्वतन्त्र मत निश्चित करना चाहिए ; जो मानने योग्य हो, उपयोगी हो, उसीको धारित करना चाहिए। कठस्थ ज्ञान अपना हो जाता है, पुस्तकगत ज्ञान अपने किसी काम का नही होता। विवाहिता होने पर

ही कोई स्त्री पत्नी होती है अन्यथा वह अपने बाप की बेटी ही बनी रहती है। सुगमता से यदि कोई विषय कठस्थ न हो तो उसको उच्च स्वर से पढकर ध्यानस्थ करना चाहिए। उच्चारण से बुद्धि जागती है, तभी तो मास्टर की गर्जना से विद्यार्थी की बुद्धि ठिकाने आ जाती है। स्वय उच्चारण करके पढ़ने से ज्ञान कान के द्वारा भी बुद्धि मे पहुचता है। प्राचीन आर्यो का मत था कि श्रवण से ज्ञान अधिक धारित होता है। पहले विद्यार्थी को आखों के सहारे नही बल्कि कानो के सहारे ही पढाया जाता था। बुद्धिमान व्यक्ति स्वभाव से ही कर्णरसिक होता है। अतएव कान की सुरग से बुद्धि तक पहुचना सुगम है। यह तभी हो सकता है जब ज्ञान ध्वनिमय हो। ध्वनित मगलस्तोत्रों से प्रातःकाल भगवान भी जग जाते है, इसलिए अपने महत् को भी ध्वनित वाणी से जगाना चाहिए। जिस तरह भी हो, ज्ञान को हृदयस्थ करना चाहिए। हां, ध्यान रखना चाहिए कि उसके साथ निस्सार बाते भी स्मृति-देश मे कुहरे की तरह छाई न रहे। बहुत तीव्र स्मरण-शक्ति हानिकारक भी होती है क्योकि वह अनावश्यक बातो को भी बटोरे रहती है जिनके कारण मस्तिष्क भारी हो जाता है।

साधारण ज्ञान के लिए अपने प्रिय विषयों को लेना चाहिए और प्रिय लेखकों को चुनना चाहिए। लेखको की शैली में भिन्नता होती है, अतएव एक ही विषय पर बहुत-से लेखको की पुस्तके एक-सा प्रभाव नही डाल सकती। ऐसे लेखकों के ऐसे ग्रथों का अवलोकन लाभकर होता है जो अपने विचारों को उत्तेजित एव सवेदनाओ को तीव्र बना सके। अतएव ऐसी पुस्तको को ही स्वाध्याय के लिए लेना चाहिए जो मनोरजन के साथ ज्ञान-वृद्धि कर सके। ज्ञान के लिए ही सदैव न पढना चाहिए। पुस्तके पढने का एक उद्देश्य मन की थकावट को मिटाना भी होता है। मनोरजक उपन्यासों और कहानियो तथा कविताओ से

मस्तिष्क के कल्पना-खंड का पोषण होता है, विश्राम मिलता है। इसलिए रात में 'स्वान्तःसुखाय' मनोरजक साहित्य पढ़ने से नीद आती है। मस्तिष्क को सरस बनाने के लिए सरस साहित्य पढना भी उतना ही आवश्यक है जितना कि जीवन-साहित्य। स्वाध्याय के लिए उपयोगी ग्रंथों के साथ मनोरजक ग्रथो को भी लेना चाहिए।

आजकल स्वाध्याय का सर्वोत्तम साधन है—समाचारपत्र। समाचारपत्रो और पत्र-पत्रिकाओं से लोक-प्रगति का सामयिक ज्ञान मिलता है। लोकमत का विज्ञापन ही नही, बहुत कुछ निर्माण भी पत्रों द्वारा होता है। एक अमेरिकन पडित ने लिखा है कि हम लोग एक ऐसी गवर्नमेट द्वारा शासित होते है जो मनुष्यों और दैनिक पत्रो द्वारा सचालित होती है।[१] अपने को राष्ट्र और समाज के अनुकूल बनाए रखने के लिए आधुनिक समय में एक न एक अच्छे समाचारपत्र को पढ़ना आवश्यक है। उनको न पढने से मनुष्य नवयुग के साथ नही चलता; उसका पुस्तक-सुलभ ज्ञान बासी हो जाता है और वह स्वय कई पीढियों पीछे का जीव या प्रेत हो जाता है।

विशिष्ट ज्ञान के लिए अपनी मूल प्रवृत्ति को पहचानकर और भावी वृत्ति का निश्चय करके तब किसी एक विषय का अध्ययन करना चाहिए और उसमे पारगत बनना चाहिए। एक न एक विषय का विशेषज्ञ होना मनुष्य के महत्त्व को बढाता है, उसके जीविकोपार्जन और यशोपार्जन मे सहायक होता है, अतएव सतर्कतापूर्वक एक उपयोगी विषय का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन करना चाहिए और उस विषय के मूल सिद्धान्त को समझकर उसके आधार पर अपने ज्ञान को मौलिक बनाना चाहिए। इसी प्रकार मनुष्य उस विषय का अधिकारी बन

१. We live under a Government of men and morning newspapers —Wendell Phillips

सकता है। विचार-स्वतन्त्रता के लिए दूसरों के विचारों का उपयोग करना चाहिए क्योकि ज्ञान का वही प्रयोजन है।

जो भी पढे और जैसे भी पढे या सीखे, पाठक को इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि ज्ञान का अजीर्ण न हो। जो ज्ञान अभ्यास में नहीं आता वह विष हो जाता है: 'अनभ्यासे विष शास्त्रम्' लोक-दृष्टि मे ज्ञान-विलासी नही, बल्कि कर्मशील व्यक्ति पण्डित माना जाता है: 'यः क्रियावान् स पण्डितः।' सुप्रसिद्ध विचारक हर्बर्ट स्पेन्सर ने लिखा है कि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ज्ञान नही, बल्कि कर्म है।[१]

अतएव सर्वप्रथम क्रियात्मक रचनात्मक ज्ञान का ही सग्रह करना चाहिए और सग्रह के साथ उसका प्रयोग करके तथा उसकी परीक्षा करके भी देखना चाहिए कि वह कहां तक उपयोगी है। शिक्षा और स्वाध्याय का प्रयोजन तभी सफल होता है। अभ्यास में आने पर सिद्धान्तों की उपयोगिता-अनुपयोगिता का पता चलता है। कर्म से ही ज्ञान सार्थक होता है; अन्यथा निरर्थक।

कला-सम्बन्धी ज्ञान का स्वाध्याय सीखने और काम करने से होता है। पुस्तकों से उनकी पूरी जानकारी नही होती। काम करने से अभ्यस्त ज्ञान प्राप्त होता है और वही परिपक्व ज्ञान माना जाता है। इसलिए कम से कम व्यावसायिक ज्ञान के उपार्जन के लिए किसी विषय का दैनिक अभ्यास करना चाहिए—काम करते हुए सीखना चाहिए और सीखते हुए काम करना चाहिए। सीखना और विचार करना जब साथ-साथ चलता है तभी ज्ञान की वृद्धि होती है।

शिक्षा-अनुभव-अभ्यास

शिक्षा, अनुभव और अभ्यास के सम्बन्ध में बहुत कुछ ऊपर प्रसंग-

---

१. The great aim of Education is not knowledge but action. —Herbert Spencer

वश लिखा जा चुका है। इनके सम्बन्ध में इतना और जानना चाहिए कि मनुष्य स्वय सभी बाते नही सीख सकता। वह एक ऐसा जीव है जो दूसरो द्वारा शिक्षित बनाए जाने पर शिक्षित बनता है; अतएव निरभिमान होकर अपने से योग्य व्यक्तियो द्वारा शिक्षा लेनी चाहिए। योग्य अध्यापको द्वारा और सत्पुरुषो की शिक्षा से जो ज्ञान एक घटे में मिल सकता है वह सौ ग्रन्थों के पढने से भी नही आ सकता। अनुभव से भी यही बात होती है। अनुभव से एक मुख्य बात यह होती है कि आवश्यकता का पता चलता है और आवश्यकता ही आविष्कारों की जननी होती है। अभ्यास से ज्ञान सक्रिय होता है, यह हम कह चुके हैं।

इस सम्बन्ध मे हम, अन्त मे, फिर यही कहेगे कि शिक्षा पा लेने मात्र से अथवा निष्प्रयोजन ढेर की ढेर पुस्तकों को पढ लेने से कोई ज्ञानी नहीं बनता। यह स्मरण रखना चाहिए कि गीता-पाठ सुनकर अर्जुन लड़ाई नही जीते थे; गीता-धर्म के अनुसार आचरण करने से उनको सफलता मिली थी। 'बम-बम' का उच्चारण करने ही से शिव प्रसन्न नही होते। गत युद्ध के दिनो मे प्रायः सभी दिन में दस-पांच बार बम-बम वोलते थे, परन्तु किसीको दैव अनुग्रह प्राप्त होता नही दिखाई पड़ा। सप्रयोजन ज्ञानोपार्जन करके कर्मोपार्जन करना सिद्धि देता है। दान करने से ज्ञान वहुत बढता है—चाहे वह किसी व्यक्ति को दिया जाए या किसी कर्म को।

सर्वप्रकार से विद्या द्वारा अपने स्वभाव, सुपात्रत्व, धन और सुख की वृद्धि करनी चाहिए। विद्या का प्रयोजन यही है कि उससे विनय, विनय से सुपात्रता, सुपात्रता से धन, धन से धर्म और धर्म से सुख की प्राप्ति होती है:

> विद्या ददाति विनयं, विनयाद्याति पात्रताम्।
> पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्॥ (हितोपदेश)

सामाजिक जीवन का विकास

मनुष्य एक शुद्ध सामाजिक जीव है। समाज ही उसका कर्म-क्षेत्र, साधन-क्षेत्र और जीवन-क्षेत्र होता है। अतएव उसको अपने सामाजिक जीवन का पूर्ण ध्यान रखना पड़ता है, समाज की रीति-नीति, मर्यादा का ध्यान रखना पडता है और अपने को समाज के उपयुक्त बनाना पड़ता है। समाज कितना प्रबल है, इसको इन बातों से समझिए—लोक-धर्म ही सर्वमान्य धर्म है; लोक-बल ही सर्वप्रधान बल है ; लोक-प्रतिष्ठा ही मनुष्य की सबसे बड़ी निधि मानी जाती है ; लोक-सम्मत कार्य ही कर्तव्य है ; लोक-सेवा सर्वाधिक महत्त्व-प्रदायक साधन है ; लोक-मत ही मनुष्य के लिए ईश्वरीय मत और ईश्वरीय शक्ति है; लोक-प्रथा सबसे बड़ा बन्धन है; लोक-लज्जा ही उच्छृ खलता को रोकने-वाली 'पुलिस' है; लोक-दृष्टि ही मनुष्योचित कर्म की कसौटी है और लोक-हित का सम्पादन मानवता है। पंच-परमेश्वर के बल को कौन अस्वीकार करेगा ? कौन ऐसा बुद्धिमान है जो अपना अप्रिय करके भी लोकप्रिय होने का आकांक्षी न हो !

सार्वजनिक जीवन में सफल बनने के लिए मनुष्य अपने स्वर्ग का भी त्याग कर देता है। वास्तव में त्याग और सहानुभूति पर ही समाज स्थापित है। सब अपने-अपने स्वार्थ का थोड़ा-बहुत त्याग करके एक अश तक अपना कृत्रिम रूप बनाकर समाज मे रहते हैं। यदि ऐसा न हो तो सबकी आवश्यकताओं की पूर्ति नही हो सकती। अतएव सब अपनी स्वच्छन्द मनोवृत्तियों को दबाते है, अपने स्वार्थ के साथ दूसरों का स्वार्थ भी देखते हैं, सहयोग पाने के लिए दूसरो के साथ सहयोग करते है और समाज के नैतिक आदर्शो के सामने सिर झुकाते है। सामाजिक जीवन अब मानव-स्वभाव का अग बन गया है।

सार्वजनिक जीवन के विकास के लिए निम्नलिखित बातों को

ध्यान मे रखना चाहिए :

लोक-धर्म का पालन

धर्म से हमारा अभिप्राय किसी साम्प्रदायिक धर्म से नही है। मीमासा के शब्दो में जो मगलजनक हो, जिससे सुख हो, वही धर्म है : 'य एव श्रेयस्कर स एव धर्मशब्देनोच्यते।' मगल ही जीवन का परम पुरुषार्थ है। देश, काल और समाज के अनुकूल नैतिक आचरण ही धर्म है। उसीसे समाज धारित होता है। इसलिए समाज मे, शुक्राचार्य के मत से, जो स्वार्थ मे निरत रहता है, वही तेजस्वी होता है : 'यो हि स्वधर्मनिरत. स तेजस्वी भवेदिह।'

सत्य, अहिंसा, न्याय, विश्वास, शील, सौजन्य और सच्चरित्रता आदि ही मुख्य लोक-धर्म है। इन्हीसे मानव-चरित्र बनता है, कर्तव्य की रूपरेखा बनती है और लोक-कल्याण होता है। सक्षेप मे, नैतिकता को लोक-धर्म मानना चाहिए। उसीसे लोक-मर्यादा स्थापित होती है। अनैतिकता, निर्लज्जता या कामुकता आदि लोक-व्यवस्था को तोड़ती है, इसलिए समाज में इनका मान नहीं है।

लोक-सेवा से समाज मे प्रधानता प्राप्त होती है। जो निःस्वार्थ भाव से जनता की, मुख्यतः पीड़ितों की सेवा करता है, वही धीरे-धीरे 'जन-गण-मन-अधिनायक' बन जाता है। ईसा ने कहा है कि जो तुममें सबसे बड़ा होगा, वह तुम्हारा सेवक होगा।[1]

इसमे सन्देह नही कि जो महापुरुष होता है, वह जनता का सेवक होता है और जो जनता का सेवक होता है, वह महापुरुष। लोक की प्रवृत्ति ऐसी है कि यदि आप सबकी सेवा करे तो सब आपकी सेवा को तैयार मिलेगे। यदि आप उसके लिए आत्मबलिदान कर दे तो समाज

---

१. He that is the greatest among you shall be your servant
—Christ

भी आपके स्थान को ससार में चिरस्थायी बना देना चाहता है। लोक-सेवा से मनुष्य की एक सर्वप्रमुख आकाक्षा की पूर्ति होती है : वह है यशोपार्जन की। सच्ची कीर्ति इसीसे मिलती है और विद्वानों के मत से जो कीर्तिवान् होता है, वही जीवित होता है : 'कीर्तिर्यस्य स जीवति।'

लोक-सेवा के अनेक रूप हैं, जैसे—देश-सेवा, समाज-सेवा, साहित्य-सेवा आदि। कोई भी रचनात्मक कार्य जिससे सार्वजनिक हित हो, वह लोक-सेवा है। आत्म-विकास के लिए मनुष्य को ऐसा ही कर्म करना चाहिए जिससे अन्त मे यश और सुख मिले :

तत्कर्म पुरुषः कुर्याद् येनान्ते सुखमेधते। (नैषध)

गुण-कर्म का मान

समाज मे गुण और कर्म से ही सम्मान मिलता है और आत्मोत्थान होता है। कारण यह है कि जगत् मे सब कुछ गुणमय एव कर्ममय है। सभी वस्तुए अपने गुणों का विज्ञापन करती हुई एक न एक कर्म मे लगी हुई हैं। गुण एव कर्म से मनुष्य की उपयोगिता सिद्ध होती है। विष्णु-पुराण मे लिखा है कि गुणहीन पुरुष में बल, शौर्य आदि सभीका अभाव हो जाता है और निर्बल तथा अशक्त पुरुष सभीसे अपमानित होता है :

बलशौर्याद्यभावश्च पुरुषाणां गुणैर्विना।
लङ्घनीयः समस्तस्य बल-शौर्य-विवर्जितः॥

व्यास ने लिखा है कि ससार मे मनुष्य कर्म से ही प्रधान बनता है, धन या विद्या से नही : 'वृत्तेन हि भवत्यार्यो न धनेन न विद्यया।'

शौर्य-पराक्रम का मान

वीरो का ससार में सदा से ही मान होता आया है। कहा भी है : 'वीरभोग्या वसुन्धरा।' शुक्राचार्य ने लिखा है कि शौर्य और पराक्रम से मनुष्य को जैसा सम्मान मिलता है, वैसा कुल से नहीं : 'न कुले

पूज्यते यादृग् बल-शौर्य-पराक्रम.।' लोग स्वभाव से ही वीर को अपना नायक बना लेते है। दबनेवाले को सज्जन भी नहीं पूछते। वेदकालीन ऋषि भी इन्द्र को प्रभु बनाते समय कहते थे कि तू किसीसे न दबता हुआ हमारा नेता बन : 'अदब्ध. सुपुरएता भवानः' (ऋग्वेद)।

संगठन का महत्त्व

जिसमें लोक-सग्रह या लोक-मत के सगठन की शक्ति होती है, वह समाज मे सवल माना जाता है। दुर्गासप्तशती में लिखा है कि संघ में ही शक्ति है : 'सघे शक्ति ।' सघ-शक्ति की दृढता से एक मनुष्य बहुतो की सम्मिलित शक्तियों को एक कार्य मे जोड़ सकता है। सहयोग या एकसूत्रता से असाध्य भी साध्य हो जाता है। सघ-शक्ति दृढ़ करने के लिए योग्यता, चातुर्य, विश्वासपात्रता और आत्म-वीरता की आवश्यकता होती है।

सघ-शक्ति का यही अर्थ नही है कि मनुष्य कोई सेना खड़ी करे या सघ स्थापित करे। राष्ट्रीय जीवन का सबसे बड़ा सघ तो गवर्नमेण्ट है, जिसको दृढ बनाने से जन-शक्ति दृढ होती है। व्यक्तिगत जीवन का सबसे बड़ा सघ मित्र-मडल है। यह स्मरण रखना चाहिए कि मित्र-बल मनुष्य का एक बड़ा भारी बल है, जो उसके जीवन को विकासशील बनाता है।

धन और पद का मान

सम्पत्ति और पद-प्रतिष्ठा से भी समाज में गौरव बढ़ता है। धन से इच्छाओ की पूर्ति नही होती, बल्कि सम्पूर्ण जीवन की पूर्ति होती है। रिक्त होने से सर्वत्र लघुता मिलती है और पूर्णता से गौरव मिलता है, ऐसा महाकवि कालिदास ने मेघदूत मे लिखा है। 'रिक्त सर्वो भवति हि लघु पूर्णता गौरवाय।' पुरुष को धन-काम-धाम कहते ही हैं। धन न रहने से पुरुषार्थ खंडित हो जाता है।

पद से मनुष्य का स्थान उच्च होता है और वह अपने अधिकारी नाम को सार्थक करता है।

पारिवारिक जीवन का विकास

पारिवारिक जीवन का विकास करना भी आत्म-विकास का एक अंग है। समाज तो मनुष्य के जीवन का संग्राम-क्षेत्र होता है, घर या परिवार शिविर होता है। जीवन-सग्राम के थके सैनिक का वह रैनबसेरा होता है। घर वही स्थान है जहां मनुष्य के स्वार्थ की पूर्ति होती है, जहां वह पूर्णतया मुक्त होकर अपनी स्वाभाविक इच्छाओं की पूर्ति करता है। समाज मे मनुष्य की बहुत-सी प्रवृत्तिया दबी रहती है क्योंकि वहां उसको दूसरों के अनुकूल बनकर रहना पड़ता है। परिवार में उन प्रवृत्तियों को तृप्त होने का अवसर मिलता है।

इसमें सन्देह नहीं कि सर्वसाधारण के लिए अपने पारिवारिक जीवन का विकास करना नितान्त आवश्यक है। गृह की सुख-समृद्धि से आत्म-समृद्धि होती है, अपनी नीव मजबूत होती है। इसलिए सफल गृहस्थ बनना सबके लिए कल्याणकारी है। गार्हस्थ्य-जीवन का आरम्भ विवाह से होता है। विवाह मानव-जीवन का एक मधुरतम प्रसग है। दो अपरिचित परिचित बनते है। लोक-जीवन मे एकात्मता होती है। मनुष्य की एक हार्दिक कामना रहती है कि कोई वस्तु ऐसी हो जिसको वह अपनी कह सके, कोई वस्तु ऐसी हो जिसका उपभोग वह, और केवल वही, स्वच्छन्दतापूर्वक कर सके। पति को पत्नी के रूप मे और पत्नी को पति के रूप में वह वस्तु प्राप्त होती है। पत्नी पति के पुरुषार्थ और पति पत्नी की मोहिनी शक्ति से, जो स्त्रियों में स्वाभाविक होती है, परस्पर प्रभावित होते है। इस प्रकार सघर्षमय जीवन-क्षेत्र में सरसता की धारा बहती है। इसका प्रभाव चरित्र पर और सम्पूर्ण

जीवन के विकास पर पड़ता है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनसे पता चलता है कि बहुत-से पुरुष स्त्रियों की प्रेरणा से उद्यमशील बनकर महापुरुष या सफल व्यवसायी बने है। स्त्री के सामने पुरुष को अपना पुरुषार्थ स्वभावत प्रमाणित करना पडता है, इसलिए इसमें आश्चर्य की कोई बात नही। स्त्रियो की प्रेरणा से ही नहीं उनके लात मारने से भी कालिदास मूर्ख से महाकवि हो गए थे। स्त्री के दुर्व्यवहार से तंग होकर कितनो ही ने परमार्थ के बड़े-बड़े काम किए है।

विवाह से ही जीवन का विकास होता है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। सुप्रसिद्ध भारत-भक्त फ्रेंच लेखक रोम्या रोलां का मत था कि विवाहित व्यक्ति अर्द्ध-पुरुष या खण्डित पुरुष है।[१] अंग्रेजी में पत्नी को अपना उत्तम अर्द्ध-भाग (बैटर हाफ) कहते हैं। इस प्रकार पुरुष बेचारा तो हीनाग हो ही जाता है। खैर, हम रोम्यां रोला के मत की पुष्टि के लिए यह सब नही लिख रहे है। हमारा अभिप्राय यह है कि स्वतन्त्र रहकर भी मेधावी मनुष्य आत्मोत्थान कर सकता है। विलायती पडितो का यह मत सर्वमान्य नही है कि पत्नियां ही पति को काम के मैदान मे खड़ा करती हैं। हमारे यहा राम को सीता से, कृष्ण को राधा से और बुद्ध को यशोधरा से क्या प्रेरणा मिली, पता नहीं। चाणक्य और पटेल को निश्चय ही कोई प्रेरणा नहीं मिली। ऋषि-मुनियो के तो हजारों उदाहरण इस प्रकार के है।

सत्य बात यह है, सयमित और आनन्दमय सांसारिक जीवन बिताने के लिए विवाहित जीवन परमावश्यक है। जो लोक-सेवा के पीछे अपने जीवन को लगाना चाहता है, उसके लिए यह उतना आवश्यक नही है। परन्तु सुन्दर पारिवारिक जीवन से उसको सहायता अवश्य

---

१. A married man is no more than a half.

मिलती है। यदि स्त्री दुर्मुखा मिली तो आत्म-विकास तो दूर रहा, वहां आत्मनाश होने लगता है। एक संस्कृत कवि ने कहा कि दुर्विनीता स्त्री से वेश्या पत्नी ही अच्छी है : 'वरं वेश्या पत्नी न पुनरविनीता कुलवधूः।' पारिवारिक जीवन आनन्दमय हो सकता है और घोर विपत्तिमय भी। प्रयत्न यही करना चाहिए कि वह सुखमय हो क्योंकि उससे आत्म-सुख के अतिरिक्त समाज का संगठन होता है। अंग्रेजी की इस कहावत को ध्यान में रखना चाहिए कि प्रसन्न परिवार तात्कालिक स्वर्ग है।[1]

व्यक्तित्व का विकास

अपने संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना ही सच्चा आत्म-विकास है। समाज या परिवार का एक अंग होकर भी प्रत्येक व्यक्ति अपना एक स्वतन्त्र रूप, एक स्वतन्त्र स्थान रखता है, उसीको उसका व्यक्तित्व या अपनापन कहते हैं। व्यक्तित्व का साधारण अर्थ है—व्यक्ति-विशेष का सहज रूप, स्वत्व, स्वास्थ्य, स्वाभाविक रूप। परन्तु इसका व्यावहारिक अर्थ अधिक व्यापक है। शारीरिक या स्वाभाविक भिन्नता तो सबमें जन्म से होती है। उनके ही आधार पर सबके व्यक्तित्व का निर्णय नहीं होता। शरीर एवं स्वभाव की भिन्नता होते हुए भी जिनमें कोई विशेषता नहीं होती, उनकी गणना सर्वसाधारण में होती हैं। वे मुण्ड-मण्डली या भीड की संख्या बढानेवाले, समाज, जाति या किसी कुल के अंग-मात्र गिने जाते है। समाज, जाति या कुल के नाम से परिचित होनेवालों का स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं माना जाता।

व्यक्तित्व वह है जिससे किसीकी स्वतन्त्र सत्ता, आत्म-योग्यता, प्रभावता, श्रेष्ठता और असाधारणता प्रकट हो। व्यक्ति-विशेष की

---

१ A happy family is an earlier heaven.

व्यक्तिता में जब मौलिकता होती है, निरालापन होता है, तभी उसका स्वरूप जनसाधारण से भिन्न माना जाता है। दूसरे शब्दो में, लौकिक जीवन मे किसीकी अलौकिकता की व्यक्तता या विलक्षणता अथवा विशिष्टता ही उसको स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रदान करती है। इस सम्बन्ध मे दर्शनशास्त्र का यह सिद्धान्त ध्यान रखने योग्य है कि किसी वस्तु की महानता ही उसके प्रत्यक्ष या व्यक्त होने का कारण होती है। अणु-परमाणु सूक्ष्म होने के कारण ही अव्यक्त रहते है। मनुष्य के सम्बन्ध मे भी यही बात लागू होती है। किसीका असाधारण विकास उसको व्यक्तित्व और स्वतन्त्र व्यक्तित्व देता है। तुच्छ बने रहने से मनुष्य अव्यक्त, अप्रसिद्ध एव सत्ता-महत्ता-विहीन होता है। जिस व्यक्ति के जीवन मे प्रभाव, आकर्षण, तेज, आत्मबल और गुण-चरित्र का विकास होता है उसीके व्यक्तित्व की रजिस्ट्री समाज मे होती है।

अतएव हमे यह मानना चाहिए कि जिस रूप मे मनुष्य अपने नाम से पहचाना जाए, समाज-जाति या वर्ग-विशेष के नाम से नही, वही उसका व्यक्तित्व है। यह रूप कुछ अशों मे जन्म से प्राप्त होता है और विशेष अशों मे अपने बनाने से बनता है। बहुत-से लोग जन्म से ही विशेप लक्षण-सम्पन्न होते है, उनकी आकृति से तेज झलकता है, उनके आचार-विचार से उनकी प्रतिभा, स्वभावज सद्गुणों की आभा टपकती है और वे सर्वसाधारण से अधिक निर्मुक्त एव ऊचे लगते है। जन्मजात व्यक्तित्व का आगे के विकास पर बड़ा प्रभाव पडता है। बहुत-से लोग जन्म से विलक्षण न होते हुए भी स्वाध्याय, गुणों के सचय और कर्म से सस्कारित करके अपने को दूसरों की दृष्टि में महान् बना लेते है। बहुत-से लोग ऐसे है जो जन्म से सतेज, प्रभाव-शाली होते हुए भी अपने को बिगाड़ लेते है। इसलिए स्थायी व्यक्तित्व उसीको मानना चाहिए जो अपने बनाने से बनता है। सक्षेप मे उन

बातों को जान लीजिए जिनसे व्यक्तित्व बनता या बिगड़ता है।

स्वभाव

स्वभाव से मनुष्य के आत्म-स्वरूप का सच्चा विज्ञापन होता है। स्वभाव से मनुष्य प्रिय-अप्रिय, मान्य या हेय बनता है। स्वभाव से दूसरे लोग ही नही, अपना शरीर भी प्रभावित होता है। आकृति, व्यवहार, वाणी, अग-चेष्टा—सभीपर उसकी छाप पडती है। प्राचीन काल से विद्वान् लोग इसको मानते आए है। भारतीय विद्वानों के अतिरिक्त यूनानी विद्वान् भी इसको मानते थे कि शारीरिक बनावट मे स्वभाव की झलक मिलती है और उसके अनुसार मनुष्य का व्यक्तित्व-निरूपण हो सकता है। प्रसिद्ध कवि होमर इसका समर्थक और विशेषज्ञ था। दार्शनिक पडित सुकरात भी इस रहस्य को मानता था और महत्त्व देता था। अद्वितीय पाश्चात्य दर्शनशास्त्री अरस्तू ने अपने एक प्रसिद्ध ग्रन्थ मे आकृति, वर्ण, अग, प्रत्यग, वाणी आदि के आधार पर मानव-स्वभाव की परीक्षा का वर्णन छः अध्यायो मे किया है। बाद के अनार्य द्विजो में हर्बर्ट स्पेन्सर, डार्विन आदि ने इस विषय का वैज्ञानिक विश्लेषण करके इसकी सत्यता को सिद्ध किया है। सबका यही मत है कि प्रत्येक मनोभाव का विशेष लक्षण होता है, जो शरीर पर प्रकट होता है। और उसके अनुकूल अंग-चेष्टाए होती है। जब कोई मनोभाव स्वभाव के रूप मे स्थायी हो जाता है तो उसके स्थायी लक्षण शरीर पर और शारीरिक चेष्टाओ में मिलते है।

प्रत्येक दशा मे स्वभाव आकृति से प्रतिबिम्बित होता है। इस विषय मे प्राचीन यूनानी ग्रन्थो मे एक घटना का उल्लेख है। एक बार एक मनोवैज्ञानिक ने सुकरात को देखकर कहा कि यह आकृति और लक्षणो से विषयी, मूढ़ और आलसी प्रकट होता है। सुननेवालों

ने मनोवैज्ञानिक की बातों पर विश्वास नहीं किया, परन्तु सुकरात ने कहा, "इसका कथन सत्य है—ये बाते मेरे स्वभाव में जन्मगत थीं। मैंने दर्शनशास्त्र के अध्ययन से अपने को सस्कारित कर लिया है।"

सारांश यह है कि स्वभाव की सरलता, कुटिलता या जटिलता से मनुष्य के आकार-प्रकार, पारस्परिक व्यवहार और सम्पूर्ण व्यक्तित्व में भेद पड़ता है। अतएव स्वभाव को सरल एव उन्नत बनाना चाहिए। उससे व्यक्तित्व का स्वाभाविक आकर्षण बढता है। मनस्विता से पुरुषार्थ प्रदीप्त होता है। सरल स्वभाव से ही सरल व्यक्तित्व प्रकट होगा, अन्यथा मनुष्य गोरख-धन्धा जैसा लगता है। जब तक व्यक्तित्व सरल न हो, तब तक वह स्पष्ट कैसे होगा ! कुटिल व्यक्तियों को कोई नही पूछता है। खारे समुद्र के पास चिडिया अपनी प्यास बुझाने नही जातीं।

गुण और चरित्र

गुण और चरित्र से व्यक्ति को विशेष प्रधानता मिलती है। गुणों से वह गुणित, गण्यमान्य होता है। गुणवान् एव चरित्रवान् व्यक्ति कुरूप, निर्धन, अकुलीन होकर भी प्रभावशाली तथा लोकमान्य होता है। जाति और कुल की महत्ता इनके आगे क्षीण हो जाती है। जाति-कुल व्यक्तित्व को बनाने मे सहायक अवश्य होते है, परन्तु इतने नही। जाति-कुल के कारण ही किसीका बड़प्पन या छोटापन सिद्ध नही होता। चीनी का मान इसलिए नही होता कि वह गुड़ की बेटी है। अग्निजात होने पर भी राख राख ही रहती है। गुण-चरित्र के प्रभाव से हीनजात व्यास पण्डित-समाज मे वन्दित होते हैं। व्यास अविवाहित मत्स्यगधा की पाप-सन्तान थे। पराशर ऋषि ने उसको योजन-गंधा (अर्थात् जिसके शरीर की सुगन्धि एक योजन तक जाए) बनाकर उसके द्वारा व्यास को पैदा किया था। व्यास ने अपनी

विद्वत्ता, तपस्या और श्रेष्ठ आचरण से कुल-कलंक को धोकर अपने व्यक्तित्व को ऊंचा उठाया। साधारण लोक-जीवन में देखिए तो यही ज्ञात होगा कि गुणी और चरित्रवान् की ही लोक मे प्रतिष्ठा है। किसी चित्र मे जिस प्रकार हम उसके रगों के मेल को नही बल्कि उसकी कला को महत्त्व देते है; किसी कविता में जैसे शब्द-योजना को नही उसके भाव को महत्त्व देते है और पुष्प मे उसके आकार और बाह्य-सौंदर्य को नहीं उसके प्राकृतिक रूप-गन्ध को मान देते है; उसी प्रकार मनुष्य के सम्बन्ध मे उसके शारीरिक रूप को नही, बल्कि उसके गुण, चरित्र को विशेष स्थान दिया जाता है। वेश्या शरीर से रूपवती हो सकती है, परन्तु समाज उसके व्यक्तित्व को स्वीकार नही करता, यद्यपि उसमें कुछ गुण होते है, परन्तु चरित्र नही होता ! गुण के साथ नैतिकता होने से ही मान बढता है। उन्हीसे मनुष्य का लोकरजक रूप बनता है। नैतिकता-नाश से वह पतित बन जाता है। नेपोलियन ने कहा कि बड़े-बडे लोग भी अपनी चारित्रिक दुर्बलता के कारण पथभ्रष्ट, मानभ्रष्ट हो जाते है। स्त्रियो के पीछे कितने ही लोग अपने को नष्ट कर देते है।

कार्य-दक्षता

किसी भी विषय मे कार्य-पटु, प्रवीण, सिद्धहस्त, विशेषज्ञ होने से मनुष्य की आत्म-समर्थता, उपयोगिता व्यक्त होती है और उसके कार्यक्षेत्र मे उसकी सत्ता स्वीकार की जाती है। कोई भी रचनात्मक कार्य सुचारु रूप से करके मनुष्य अपने को ऊचा उठा देता है, इसमें सशय नही।

वाणी-बल

वाणी-बल के विकास से व्यक्तित्व का अत्यधिक विकास होता है। वाणी की सिद्धि से मनुष्य लोकनायक बन जाता है। उसीमें

मनुष्य का अन्तर्बल, प्रभाव-बल प्रकट होता है। अतएव आत्मोत्थान के लिए इस श्रेष्ठ साधन का आश्रय लेना चाहिए। जीवित होने का लक्षण है, बोलना। वाणी बन्द होने पर प्राणी मृतक या मृत-तुल्य माना जाता है। मनुष्य होकर जीवित होने का लक्षण है सार्थक वाणी बोलना; क्योकि जीवो मे मनुष्य ही एक ऐसा जीव है जो भावों को भाषामय बनाकर सार्थक कर सकता है। अतएव अपनी इस विलक्षण शक्ति के विकास से विलक्षणता प्राप्त करनी चाहिए।

वाणी-प्रयोग के कई रूप है। सबसे प्रभावक रूप है—भाषण। अपने भाषणो से लोग जनता को वश में कर लेते है। अच्छा भाषण वह होता है जो विचारोत्तेजक हो, मर्मस्पर्शी हो और जिससे सार्वजनिक हित का सम्पादन हो। भाषण का प्रयोजन देर तक जोर से चिल्लाना नहीं होता। एक योजना पर, धैर्य-विश्वास के साथ, सप्रमाण और सक्षिप्त दिया हुआ भाषण ही प्रभावोत्पादक होता है। वक्ता बनने के लिए व्यापक दृष्टिकोण रखना चाहिए, एक लक्ष्य रखना चाहिए, एक सिद्धान्त और नैतिक मत व्यजित करना चाहिए। सक्षेप मे सप्रभाव कहा हुआ छोटा-सा सारगर्भित भाषण लम्बे-चौड़े व्याख्यान से कही अधिक हृदय-आन्दोलक होता है। अफ्रीका की कुछ जातियों मे एक विचित्र प्रथा है। वहां वक्ता को एक पैर पर खड़े होकर ही व्याख्यान देना होता है। उठे हुए पैर के गिरते ही उसको अपना भाषण समाप्त कर देना होता है। इस प्रथा के आविष्कारकों का प्रयोजन यह लगता है कि कम से कम समय मे अधिक सारयुक्त बात कहनी चाहिए; श्रोता के समय का अपव्यय न करना चाहिए। दूसरी बात यह होती है कि 'विचलित हुए तो गए'। अतएव दृढ होकर भाषण करना चाहिए, निश्चयात्मक बुद्धि से आशा-धैर्य-विश्वास का देवदूत बनकर बोलना चाहिए, मूर्ख जनता हो तो उसको हाकना चाहिए, भीरु हो तो उसका

हाथ पकड़कर खींचना चाहिए, समझदार हो तो उसको आगे का मार्ग बतलाना चाहिए—नेतृत्व करना चाहिए ; संकट से पूर्व सचेत करके उज्ज्वल भविष्य की ओर संकेत करना चाहिए। तर्क-सम्मत न्याययुक्त वाणी बोलने से लोकमत अपने पक्ष में होता है और इस प्रकार कुशल वक्ता का व्यक्तित्व लोक-दृष्टि मे ऊंचा उठता है।

वाणी-बल का दूसरा उपयोग लिखने में होता है। लेखन-शक्ति से मनुष्य महाशक्तिशाली बन जाता है। उससे वह देश-समाज में क्रान्ति-शान्ति कुछ भी कर सकता है। सुन्दर सारगर्भित शैली में जीवन साहित्य, आदर्श साहित्य एव मौलिक साहित्य प्रस्तुत करनेवाले व्यक्ति अपनी रचनाओं से लोक मे अपना एक विशेष स्थान बना लेते हैं। उनकी आर्थिक, पारिवारिक, शारीरिक और चारित्रिक विवशताएं भी उनकी साहित्यिक कीर्ति के पीछे छिप जाती है। बर्नार्ड शॉ कुरूप थे, परन्तु अपने ग्रंथो में महारूपवान् लगते है; उनकी प्रतिभा साकार होने पर उनकी कुरूपता को ढक देती है। उनके जीवन की एक घटना है कि एक बार उनके एक नाटक के अभिनय के उपरान्त उसकी प्रधान-पात्री, एक अनिन्द्य सुन्दरी, शॉ की योग्यता के कारण उनपर मुग्ध हो गई। उसने कहा कि यदि हमारा-आपका विवाह-सम्बन्ध हो जाए तो उसके फलस्वरूप जो सन्तान होगी वह अभूतपूर्व होगी क्योंकि उसमें आप जैसी विलक्षण प्रतिभा और मेरे जैसा आकर्षक रूप होगा। बर्नार्ड शॉ ने कहा कि ठीक है, परन्तु दैवयोग से यदि उलटा हुआ तो क्या होगा, अर्थात् मेरे जैसा कुरूप हुआ और तुम्हारी जैसी दुर्बुद्धि हुई तो वह सन्तान कैसी होगी ?

तात्पर्य यह है कि लेखन-शक्ति से व्यक्तित्व का आकर्षण बढ़ जाता है। आकर्षण ही नही, बल भी बढ जाता है। आजकल पत्रकार होने में एक बड़ा लाभ यही है कि लोकमत हाथ में आ जाता है। अच्छे पत्र-

कार से सभी डरते है। नेपोलियन जैसा महावीर भी समाचारपत्रों से डरता था। उसने एक बार कहा था कि मैं एक लाख सगीनों की अपेक्षा तीन समाचारपत्रो से अधिक डरता हूं।[1]

लेखक या पत्रकार होकर भी अपनी महिमा निश्चय ही प्रकट की जा सकती है। दिग्गज विद्वान् को सब दिग्गज जैसा ही महान् मानते है। आलोचक को छोटा कौन मानता है? गवर्नमेण्ट भी उससे शकित रहती है।

वाणी-व्यवहार में इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि कही सत्य की हत्या न हो। सत्य को दबाने से वाणी का प्रभाव कम हो जाता है। निर्भीकता, विचार-स्वतन्त्रता और सतर्कता से उसके शरीर मे आत्मा, बुद्धि और मन की स्थापना होती है, वाणी जीवित हो जाती है।

गम्भीरता

विचार, वाणी, कर्म तीनों की गम्भीरता से व्यक्तित्व का मान बढता है। चचलता से हलकापन प्रकट होता है। गम्भीर रहने से मनुष्य सबसे घुलता-मिलता नही, यह सत्य है, परन्तु वह औरो से अधिक ठोस प्रतीत होता है। लोग उसका सम्मान करते है, समझते है कि इस अगाध समुद्र मे न जाने कितने रत्न और मगरमच्छ हो सकते हैं! कोई लोक-नेता या उच्च-पदाधिकारी जब तक गम्भीर रहता है, तभी तक उसके नीचेवाले उसका सम्मान करते हैं। सर्वसुलभ होते ही उसका व्यक्तित्व पानी मे चीनी की तरह गल जाता है। गम्भीर और शान्त-चित्त होना शासको और लोकनायको का एक असाधारण गुण माना गया है। फ्रास के बहुप्रसिद्ध भूतपूर्व मन्त्री कार्डिनल रिचलू का कथन

१. I fear three newspapers more than a hundred thousand bayonets. —Napoleon

है कि उचित रीति से राष्ट्र-शासन करनेवाले के लिए अधिक सुनना और कम बोलना नितान्त आवश्यक है।[1]

एक सुप्रसिद्ध लेखक ने लिखा है कि शासक के लिए अव्यग्रता सबसे आवश्यक गुण है।[2]

अस्थिरता, असहनशीलता और क्रोध से चित्त की शान्ति और गम्भीरता नष्ट हो जाती है। और कम से कम क्रोध का यह परिणाम होता है कि अधिकारी व्यक्ति मर्यादाभ्रष्ट होकर अपने आश्रितो के अधीन हो जाता है। इसीलिए विद्वानो का मत है कि क्रोध आने पर गम्भीर हो जाना चाहिए, क्योंकि क्रोध को व्यक्त करने मे विलम्ब करना ही उसके नाश की एकमात्र अमोघ औषधि है।

अलौकिकता

लौकिक जगत् मे अलौकिक लगने से मनुष्य का व्यक्तित्व विलक्षण बनता है, यह हम कह चुके हैं। इस अलौकिकता का तात्पर्य यह नही है कि अप्राकृतिक कार्य करो। इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य सर्व-साधारण की पहुंच मे बाहर रहे। सर्वसाधारण स्वार्थग्रस्त रहते हैं, अतएव स्वार्थ-त्याग अलौकिक गुण है। सर्वसाधारण वासनाओं मे फसे रहते हैं, अतएव वासनामुक्त होना अलौकिकता है; प्रलोभनमुक्त होना तथा मोहमुक्त होना अलौकिकता है। जब किसीके चरित्र मे साधारण मानवीय दुर्बलताओं का आभास नही मिलता तभी हम उसको अलौकिक प्राणी मानकर उसके व्यक्तित्व का सम्मान करते हैं। ऐसे अनेक वृत्तान्त है, जिनसे प्रकट होता है कि मनुष्य जब तक असाधारण बना रहता

---

१. One must listen a great deal and speak little to govern a nation properly. —Richeleu

२. Coolness is the most important quality for a man destined to rule —Andre Mauris

है तव तक लोग उसको देवता की तरह पूजते है । यदि वह किसी स्त्री के प्रेम से फसकर आचरणभ्रष्ट हो जाता है अथवा कोई अन्य चारित्रिक दुर्वलता दिखलाता है तो लोग समझते है कि यह तो हमारी ही कोटि का दुर्वल प्राणी है । वही उसके प्रति आदर-श्रद्धा समाप्त हो जाती है। इसलिए साधारण व्यक्तियो जैसी कोई भूल न करनी चाहिए। उच्च-पद पर रहकर किसीको यह समझने का अवसर न देना चाहिए कि आप केवल लौकिक प्राणी हैं—अर्थात् वही हैं जो दूसरे भी है । इसके लिए कुछ अंशों तक अपने व्यक्तित्व को रहस्यमय बनाना पडता है। अपना एक रूप रखना चाहिए जो बार-बार देखने पर भी वैसा ही लगे, जो दूर से भी उतना ही प्रभावशाली हो, जितना निकट से। 'नाम वडे और दर्शन छोटे' की उक्ति चरितार्थ नही होनी चाहिए। व्यक्तित्व को सरल रखकर भी उसको गम्भीरता से, चतुराई से, रहस्य-मय वनाया जा सकता है। आकाश निर्मल होने पर भी रहस्यपूर्ण है ।

संगति

सगति का प्रभाव भी व्यक्तित्व के निर्माण पर पड़ता है। तुलसी के शब्दो मे 'सत्सगति महिमा नहि गोई।' अर्थात् सत्सगति की महिमा छिपी नही है। और उन्हीके शब्दों मे 'को न कुसगत पाइ नसाई।' कुसगति से कौन नहीं नष्ट होता ! यह प्रभाव तो अपने चरित्र पर पड़ता है, अपने व्यक्तित्व के विकास पर और भी अधिक पड़ता है। इसको इन पक्तियो से समझिए · 'गगन चढ़इ रज पवन प्रसगू।' (तुलसी) तथा 'गो गर्देराह है मगर आंधी के साथ है।' (अकबर)। वड़ों की सगति से छोटे भी वड़े वन जाते हैं या बडों जैसे लगते हैं। वड़ों के नाम ही मे वडी सिद्धि होती है। उनके दर्शन-मात्र से हृदय में सत्प्रेरणाए उठती है। मनुष्य प्रत्यक्ष जीवन का एक आदर्श देखता है। सव दृष्टियों से सत्पुरुषो के सम्पर्क में रहना आत्म-विकासक होता है। महात्मा

व्यास ने लिखा है कि महापुरुषों का दर्शन कभी निष्फल नही जाता। द्वेष, अज्ञान, प्रमाद या प्रसंगवश भी लोहा यदि पारसमणि से छू जाए तो वह सोना ही हो जाता है :

महता दर्शनं ब्रह्मन् जायते नहि निष्फलम्।
द्वेषादज्ञानतो वापि प्रसङ्गाद्वा प्रमादतः।
अयस. स्पर्शसंस्पर्शो रुक्मत्वायैव जायते। (महाभारत)

स्वावलम्बन

व्यक्तित्व के विकास के लिए सर्वदा स्वावलम्बन का ही आश्रय लेना चाहिए। सहायकों की प्रतीक्षा मे बैठने से अपनी प्रगति रुकी रहती है। इस विषय मे टैगोर का 'एकला चलो रे' उपदेश मान्य है। कर्तव्य का निश्चय करके और आत्म-शक्ति को सतुलित करके एक मार्ग पर चल निकलना चाहिए। जो अपनी रुचि का विषय हो उसको मौलिक बनाकर उसकी साधना में अपने को लगाना चाहिए। जहां कठिनाइया मिले वहां 'त्राहि माम्, त्राहि माम्' न चिल्लाकर पूर्ण मनोबल और पुरुषार्थ के साथ अपनी परीक्षा देनी चाहिए। अग्नि-परीक्षा के बाद ही स्वर्ण कुन्दन होता है। हीरा खरादे जाने के बाद ही मूल्यवान् होता है। यह ,सोचकर साहस के साथ कठिनाइयों में कूद पड़ना चाहिए। सकट को पार कर जानेवाला लोक-पूज्य होता है।

क्रमशः विकास

व्यक्तित्व का जब क्रमशः विकास होता है तभी वह स्थायी रहता है। विकास तब होता है जब सफलता के बाद सफलता की शृङ्खला बधी रहे, जब कीर्ति अखण्डित रहे। अंग्रेजी के किसी विचारक ने कहा है कि प्रसिद्ध होने का यह एक दण्ड है कि मनुष्य को निरन्तर

उन्नतिवान् बने रहना पडता है।[1]

क्रम खण्डित होने पर उसको पुनः जोड़ना कठिन होता है। साख उखड़ने पर फिर नहीं बैठती। इसलिए अपने प्रभाव को प्रतिदिन बढ़ाते रहना चाहिए। यह तभी सम्भव है जबकि कहने से अधिक करके दिखाया जाए। कहने-मात्र या बडप्पन का अभिनय करने-मात्र से धाक नहीं जमती। सिनेमा मे राम का अभिनय करनेवाले महा-पात्र की प्रतिष्ठा कभी नही हो सकती जितनी मर्यादा-पुरुषोत्तम राम की। वास्तविकता का ही मान होता है। आत्मोत्थान करनेवाले का ध्येय सदैव यह होना चाहिए कि वह साधिकार अनुपम, अनन्य, सर्वाग्रणी बनकर दिखला देगा। 'मनसा वाचा कर्मणा' एक होकर उसको आत्म-विज्ञापन करना चाहिए और यथाशक्ति कीर्ति, धन और स्वास्थ्य का सचय करना चाहिए।

सारांश

मनुष्य एक घड़ी की तरह है, जिसका सचालन-यत्र गुप्त रहता है, काम करनेवाले हाथ वाहर रहते हैं। दोनों जब ठीक रहते हैं तो मनुष्य घड़ी की तरह समय के साथ चलता हुआ विकास करता है। अतएव मनोबल और पुरुषार्थ को सयुक्त करके निश्चित गति से बढना चाहिए।

---

१. It is the penalty of fame that a man must ever keep rising

२. मनुष्य का मस्तिष्क

मस्तिष्क-बल मनुष्य का प्रधान बल है

अथर्ववेद के शब्दों में मनुष्य का मस्तिष्क एक 'हिरण्यमय कोष' अर्थात् स्वर्ण से भरा हुआ कोष है। इसका स्पष्ट प्रमाण एक तो यही है कि शुद्ध शारीरिक परिश्रम करनेवाला व्यक्ति (मज़दूर) दिन-भर में अधिक से अधिक एक रुपया कमाता है, परन्तु एक बुद्धि-व्यवसायी उतने ही समय में लाखों-करोड़ों रुपये कमा सकता है और कमानेवाले कमाते ही हैं। दूसरा प्रमाण यह है कि शरीर के हड्डी-मांस एवं रासायनिक तत्त्वों का मूल्य चार या पांच रुपये तक हो सकता है, परन्तु मानव-मस्तिष्क से निकली हुई एक तत्त्व की बात कभी-कभी लाखों रुपये की हो जाती है।

'हिरण्य-कोष' का अर्थ यह नहीं है कि मस्तिष्क एक रुपया बनाने का यन्त्र है। उसका व्यापक अर्थ यह है कि मस्तिष्क मानवजीवन की प्रधान सम्पदा है। मनुष्य की सभी सम्पत्तियों एवं विलक्षणताओं का वही उत्पादक है। वही उसकी प्रधानता का मूल आधार है। कहा भी है कि 'सर्वेषु गात्रेषु शिरः प्रधानम्'—सब अंगों में सिर प्रधान है। मस्तिष्क-बल का विकास ही मनुष्यता का प्रथम लक्षण माना जाता है।

शरीर से मनुष्य एक बहुत साधारण कोटि का जीव है। शरीर-सम्बन्धी कोई भी ऐसा बल और कर्म नहीं है जिसमें कोई न कोई पशु उससे श्रेष्ठ न हो। सिंह जैसा पराक्रम और नाद, हाथी जैसा आकार-प्रकार, गृद्ध जैसी दृष्टि, पक्षियों जैसी गमन-शक्ति, घोड़े-गधे जैसी भार वहन करने की शक्ति मनुष्य को कहां सुलभ है! वह तो

जन्म से ही शारीरिक असमर्थता लेकर, जकडा हुआ, रोता-चिल्लाता, अर्द्ध-विक्षिप्त-सा पृथ्वी पर आता है, बिना सिखाए अपने पैरों पर न तो खडा हो सकता है और न कोई काम ही कर सकता है। पशु-पक्षियो के बच्चे जन्म से ही समर्थ और शारीरिक क्रियाओं में स्वावलम्बी होते है। इन असमर्थताओ के होते हुए भी मनुष्य केवल अपने मानसिक बल की श्रेष्ठता से सर्वसमर्थ एव सर्वप्रधान प्राणी बन जाता है। ईश्वर के बाद सर्वशक्तिसम्पन्न वही माना जाता है। मस्तिष्क-बल से साधनो का आविष्कार करके वह पशुवर्ग पर विजय प्राप्त करता है, प्रकृति से अतिरिक्त शक्ति लेता है और ससार के भीतर अपने एक नये ससार का निर्माण करता है। वायुयानों पर बैठकर वह सैकड़ो-हजारों पक्षियो की सम्मिलित गति से आकाश में गमन करता है। ध्वनि-विस्तारक यन्त्र से वह ऐसी आकाशवाणी सुनाता है कि वह पृथ्वी के एक कोने से दूसरे कोने तक गूज जाती है। मनुष्य-निर्मित यन्त्रों मे सहस्रो घोडो की शक्ति समाई रहती है। उसकी एक मालगाडी पर लाखो गधो का भार ढोया जाता है। दूरदर्शक यन्त्रो से वह दूर के ग्रहो के भीतर भी झाक लेता है। जो उनसे भी नही दिखलाई देते, उनको ज्योतिष-गणित से देख लेता है। अपनी ज्ञान-दृष्टि से वह भूत-भविष्यत्-वर्तमान सबको देखने की क्षमता रखता है। उससे वह प्रत्यक्ष को ही नही, अप्रत्यक्ष को भी देखता है। ससार-व्याप्त अनन्त शक्ति-तरगो का अनुभव करता है और उनको पकडता है।

शारीरिक सम्बल की सीमा है, मानस-सम्बल की कोई सीमा आज तक देखी नही गई। पैरों से मनुष्य एक सीमा तक ही दौडकर जा सकता है, और शरीर से मृत्यु तक दौड़ सकता है, परन्तु मस्तिष्क के विचार जहा तक दौड़कर जा सकते है, वह सीमा आज

तक निर्धारित नहीं हो सकी। शरीर-नाश के बाद भी मस्तिष्क भविष्य की शताब्दियो मे समाया रहता है और कई युगो तक उसके विचार सजीव रहते है। मस्तिष्क-बल से मनुष्य जितना ऊंचा उठ सकता है, उसकी नाप भी नही हो सकती। एक से एक बढकर कवि, विचारक, आविष्कारक, राजनीतिज्ञ और कूटनीतिज्ञ पैदा होते ही रहते है। उनकी विशालता का अनुमान भी नही लगाया जा सकता। एक छोटा-सा प्राणी भी एक विशाल जगत् को अपने मस्तिष्क के एक कोने में डाले रहता है। यही नही, वह तो विराट्‌रूपधारी परमेश्वर को भी अपने अन्तस्थल में बैठने के लिए निमन्त्रण देता रहता है। उसका पेट सेर, दो सेर भोजन से भर जाता है, जेब, तिजोरिया कुछ लाख रुपयो से भर जाती है, परन्तु चित्त तो ससार की समस्त सम्पत्तियों से भी नही भरता और कभी-कभी दो-चार बातो से ही भर जाता है।

वास्तव मे मस्तिष्क-बल असीम है। उसकी असीमता के कारण मानव-शक्ति भी असीम है। लोग भ्रमवश अपने मन मे अपनी समर्थता की एक कल्पित सीमा बना लेते है। वह उनकी व्यक्तिगत सीमा होती है। मस्तिष्क के विकास की कोई सीमा नही बांधी जा सकती, यह असंख्य प्रमाणों से प्रसिद्ध है। सारी बातो से यह स्पष्ट है कि मनुष्यों का मस्तिष्क ही उसका कल्पतरु, सर्वसिद्धिदायक कवच, महत्त्व का महत्तत्त्व और अपना सर्वस्व है। जिस प्रकार एक हजार की सख्या में से यदि एक को निकाल लिया जाए तो उसके आगे के शून्य, शून्य—अर्थात् मूल्यरहित हो जाते है, उसी प्रकार मानवजीवन से उसके मस्तिष्क को अलग कर देने से उसकी 'एकता' या महत्ता और सारी मनुष्यता ही समाप्त हो जाती है। किसी पागल की दशा को देखकर यह बात ठीक से समझी जा सकती है। जीवित रहते हुए और शरीर

के सबल होते हुए भी ऐसा व्यक्ति पशु से भी अधिक निर्बल, निस्सहाय और बेकार हो जाता है। मानसिक बल की महत्ता पर एक दृष्टि से और विचार कीजिए। शरीर से निर्बल होकर भी बुद्धिमान् व्यक्ति करोडों बलवानों पर अपना आधिपत्य स्थापित करता हुआ देखा जाता है। शरीर-बल पर मस्तिष्क-प्रसूत उपाय-बल की सर्वदा विजय होती आई है। मनुष्य को संसार में ऐश्वर्य अर्थात् देवत्व देनेवाला उसका मस्तिष्क ही है। भीतर से नही, बाहर से भी वह मानव की महिमा का प्रतीक है। सिर उठाने से मनुष्य की मनुष्यता उठती है, उसके झुकाने से दीनता प्रकट होती है। वैभवसूचक वस्तुए मस्तक पर ही रखी जाती हैं—जैसे पगडी, टोपी। मस्तक पर पुरुषों का विजय-तिलक और स्त्रियों का सौभाग्य-बिन्दु लगता है। महान् की महत्ता कहां नही पूजी जाती !

मस्तिष्क का साधारण परिचय

मानव-बल के प्रभाव को समझते हुए भी स्वयं मस्तिष्क के स्वरूप को समझना कठिन है। सत्य बात यह है कि कोई भी ठीक-ठीक यह नही बता सकता कि वह (मस्तिष्क) क्या है और कैसा है। स्थूल रूप से वह कपाल के भीतर सुरक्षित एक छोटा-सा चेतना-यत्र है, जो संपूर्ण शरीर के चेतना-चक्र[1] से सयुक्त होकर इन्द्रियों को चेतनता देता है और उनके द्वारा विषयों का ज्ञान प्राप्त करता है। यह उसका अग-रूप है। उसका एक अनगरूप भी है, जो अधिक शक्तिशाली एव स्वतन्त्र रहता है। अंग-अनग दोनो मस्तिष्क के पर्यायवाची हैं। मस्तिष्क का अगरूप तो वही है जिसको सभी शरीरशास्त्री जानते हैं और जिससे शरीर का समस्त चेतना-कर्म सम्पादित होता है।

१. Nervous system.

अनगम्य भावनामय है, तत्त्वगम्य और अनुभवगम्य है, परन्तु प्रत्यक्ष नही। वह शरीररहित और भाव-शरीरधारी है। उस रूप मे वह कैसा है, कितना बड़ा है, इसको कोई नही बता सकता। अतएव मस्तिष्क के विषय मे इतना ही ज्ञात है कि वह क्या करता है और कैसे करता है तथा किस प्रकार व्यक्त होता है। उसकी जिन शक्तियों या प्रवृत्तियों से स्वयं उसका चेतना-भाव सचालित होता है, उनकी अनुभूतिमान होती है। एक बात का अनुभव और होता है कि मस्तिष्क का शारीरिक रूप ही उनके क्रिया-तत्त्वो का धारक होता है। वह विकृत हो जाता है तो चेतना-शक्ति स्वयं शरीर को प्रभावित नही कर सकती।

मनोवैज्ञानिकों ने मस्तिष्क की क्रिया-प्रणाली का अध्ययन करके उनको दो भागों मे विभाजित किया है। सामने के उन्नत भाग को वृहत् मस्तिष्क या चेतन मन कहते हैं और पीछे के भाग को लघु मस्तिष्क या अन्तर्मन। इन्ही दोनो से भाव, विचार या सज्ञा-सम्बन्धी शारीरिक कार्य होते हैं। ज्ञान-तन्तुओ के यही केन्द्र-स्थान होते हैं। दूसरे शब्दो मे चित्त-प्रवृत्तियों और सवेदनाओ के यही चेतना-स्थान होते है। मन नामक तत्त्व से ये दोनो अग संचालित होते हैं। 'मन', चित्त, अन्त करण, हृदय और मस्तिष्क के अर्थ मे भी व्यवहृत होता है। प्राचीन तत्त्वज्ञो ने हृदय के भावना-सम्बन्धी जो गुण-धर्म बताए हैं, उनसे उनका अभिप्राय मस्तिष्क है। इस तथ्य को स्वर्गीय विद्वान् महामहोपाध्याय डाक्टर गणनाथ सेन ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'प्रत्यक्ष शरीर' मे तर्कसहित प्रमाणित किया है। अतएव हमें मन को मस्तिष्क का क्रियातत्त्व मानकर उसके दोनो अगो के सम्बन्ध मे कुछ जान लेना चाहिए।

चेतन मानस ज्ञान एव विचार का स्रोत होता है। यही अग कल्पना

करता है, मनन करता है, चिन्तन, विवेचन और विवेक करता है। इस खण्ड पर मनुष्य का पूर्ण अधिकार रहता है। विद्या, अभ्यास, ज्ञान, व्यायाम और पौष्टिक तत्त्वो से इसको विशेष सक्रिय, कुशाग्र तथा प्रबुद्ध बनाया जा सकता है। इसको इच्छानुसार केन्द्रित और नियन्त्रित किया जा सकता है। इसी भाग के विकास से ज्ञान और सम्पूर्ण मनुष्यत्व का विकास होता है। यही मनुष्य का भविष्य-निर्माता या भाग्य-विधाता होता है। तभी लोग कहते है कि ललाट में मनुष्य का भाग्य लिखा रहता है। यह अनुभवी होने के साथ-साथ विचारक और आविष्कारक भी होता है।

चेतन मन स्वभाव से स्वच्छन्द, चंचल और शीघ्रगामी होता है। ससार की अन्य कोई वस्तु इतनी स्वेच्छाचारिणी और तीव्रगामिनी नही होती। यह स्वर्ग तक दौड़ता है और पल-मात्र मे शरीर खाट पर पड़ा रहे, तो भी मन हजार दो हजार मील की दूरी पर किसीके बन्द शयनागार मे पहुच सकता है। उसके आने-जाने की कहीं रुकावट नहीं; वह अपने ही रथ पर चलता है, जिसको मनोरथ कहते है। ब्रह्म के विषय मे कही हुई तुलसी की यह उक्ति उसके विषय में भी चरितार्थ होती है :

> **पग बिनु चलै सुनै बिनु काना।**
> **कर बिनु कर्म करै विधि नाना॥** (मानस)

यह मन कभी खो जाता है, कभी चोरी हो जाता है, कभी जल-भुनकर राख हो जाता है, कभी फूल जाता है, कभी छोटा होता है और कभी किसी रस में मग्न होकर डूब जाता है। कभी यह कटाक्ष-मात्र से घायल हो जाता है, कभी केवल बातों से, और कभी गालियों को भी बड़े प्रेम से सुनता है—जैसे विवाह में। जिसमें यह रम जाता है, वही मनुष्य के लिए मनोरम हो जाता है, चाहे वह कितना ही कुरूप

क्यों न हो ! जहां से यह टूट जाता है, वहा से जीवन का सम्बन्ध टूट जाता है। चेतन मन का यह वर्णन कवित्वपूर्ण नहीं बल्कि यथार्थ है। जब यह मन मनमोदक खाता है, तो मुख से अनायास लार टपकती है। मानसिक दुराचार की अवस्था मे इन्द्रिया अकारण चचल हो जाती है। कल्पित कोप से शरीर उत्तप्त हो जाता है। शरीर पर ही नही, सम्पूर्ण जीवन पर कल्पना-क्रिया का प्रभाव पडता है।

सक्षेप में यही समझना चाहिए कि चेतन मानस का क्षेत्र अत्यन्त उर्वर है। उसमें प्रत्येक क्षण विचारो को सृष्टि होती रहती है। वह केवल इन्द्रियो की सहायता ही विषयोपलब्धि नही करता, बल्कि स्वतन्त्र रूप मे भी कार्य करता है। किसी कार्य मे लगे रहने पर वह उसीके सम्बन्ध में विचार करता है, परन्तु कार्य न होने पर वह स्वभाव-वश बाहर दौड़ने लगता है और यह समझ लेना चाहिए कि किसी कार्य मे चेतन मन के लग जाने का अर्थ है, उस कार्य में सम्पूर्ण शारीरिक शक्ति का एकसाथ लग जाना, क्योंकि वही शरीर का चेतनाधार होता है।

अन्तर्मन

अन्तर्मन चेतन मन का ज्ञानकोष होता है। अंगरूप मे यह गोलाकार होता है और इसको काटने पर इसमें पुस्तक के पन्नों जैसे छोटे-छोटे दल मिलते है। इस खण्ड मे ज्ञान-विचार के तन्तु नही होते। चेतन मानस की तरह न तो यह स्वतन्त्र होता है और न बाह्य-जगत् से सम्बद्ध। बाहर से चेतन मन द्वारा जो अनुभूति होती है, वही यहा पर स्मृति-रूप सचित रहती है। देखी, सुनी अथवा विचार की हुई प्रत्येक बात यहां बैठती है और आगे विचारो की आवश्यकता के अनुसार उनसे सयुक्त होती है। एक ही बात को बार-बार देखने-सुनने या सोचने से उसकी गहरी छाप इस मन पर पड़ जाती है और समय

पड़ने पर चेतन मन उन आकृतियों, ध्वनियो आदि के अनुरूप व्यक्ति को तत्काल पहचान लेता है। प्रायः ऐसा होता है कि किसीको देख-कर आप उसको पहचान लेते है परन्तु उसका नाम, पूर्व-परिचय का स्थान ध्यान मे नही आता। बहुत-सी बाते मन में रहती है परन्तु वे ठीक-ठीक याद नही आती या जीभ पर नही आती। इसका कारण यह है कि उनकी छाप अन्तर्मन पर गहरी नही रहती, पर रहती अवश्य है। होता यह है कि अन्तर्मन में बहुत-सी बाते बैठती हैं और खो जाती है। कभी-कभी वे अनायास प्रकट हो जाती है और कभी-कभी बहुत-सी बातो के साथ उलझी हुई। स्वप्नावस्था मे कभी-कभी जो विचित्र दृश्य दिखलाई पडते है, उसका मुख्य कारण एक यह भी है कि मनुष्य के अन्तर्मन में कल्पित, पठित या प्रत्यक्ष घटित घटनाओं के क्रम उलझकर एक विचित्र रूप में प्रकट होते हैं। उन स्वप्नो से मनुष्य की आन्तरिक स्थिति का पता चल जाता है। स्वप्नों से यह पता चलता है कि चेतन मन किस प्रकार के विचारों से अपने घर को भर रहा है और मनुष्य की भीतरी स्थिति कैसी है।

अन्तस्तल विचारों का सरक्षक या धारक ही नही, उनका सचा-लक एव उत्पादक भी होता है। जीवन की इच्छाए, प्रवृत्तियां यही उत्पन्न होती है और वे चेतन मानस की विचारधारा को चुपचाप प्रभा-वित करती हैं। असख्य चित्त-प्रवृत्तिया, भावनाए, वासनाए जो स्वभाव के रूप मे होती है, इसी खड में सोती रहती है। आशा, विश्वास, मान, मद, श्रद्धा-भक्ति, प्रेम, भय, ईर्ष्या-द्वेष, लोभ, क्रोध और मोह आदि के भाव-दुर्भाव यहीं उत्पन्न होते है। मनोज का तो वह पिता ही होता है। इन वासनाओं का या भावो का विचारों पर प्रबल प्रभाव पड़ता है। मन में भूत रहने से भी झाड़ी में भूत दिखाई पड़ता है, स्वभाव में वासना रहने से सती की आकृति मे भी कामिनी का रूप प्रतीत होता

है और सद्भाव रहने से वेश्या मे भी वहन की छाया दिखाई पड़ती है। अन्तर्मन मे कपट की भावना होती है तो कल्पनाकार मन हाथ को माला पकड़ाकर बैठा देता है और दान-दक्षिणा की कामना करता है। उसमे ग्लानि होती है, तो वह विचारक मन आत्महत्या का विचार करता है। उसमे वैराग्य होता है, तो मनुष्य लाखो-करोड़ों की सम्पत्ति को कौड़ी वरावर समझता है। वास्तव में अन्त करण मे जैसी भावना रहती है, उसीके अनुसार हमारा वाहरी दृष्टिकोण वनता है। किसी मन्दिर की मूर्ति मे एक व्यक्ति देवता का आभास देखता है, दूसरा व्यक्ति उसीको एक निर्जीव पत्थर का टुकडा मानता है। क्यो ?—क्योंकि पहले व्यक्ति के हृदय में देवता की भावना-मूर्ति रहती है, जिसके अनुसार उसीकी छाया वह पत्थर की मूर्ति मे देखता है। देवता पत्थर मे नही रहते, हृदय मे रहते है। दूसरे के हृदय में वह भावना नहीं रहती, इसलिए वह बाहर देवता को कहा से देखेगा! किसीको एक व्यक्ति परम आदर-श्रद्धा की दृष्टि से देखता है, दूसरा व्यक्ति उसी-को घृणा और तिरस्कार की दृष्टि से देखता है। इसका भी कारण वही है—प्रद्वेष या अतिसम्मान की भावना मन के सकल्पो के अनु-सार ही उत्पन्न होती है· 'प्रद्वेपो बहुमानो वा सकल्पादुपजायते।'—(स्वप्नवासवदत्ता)। तुलसी के शब्दो मे :

जाकी रही भावना जैसी।
प्रभु-मूरति देखी तिन्ह तैसी॥ (मानस)

एक पाश्चात्य विचारक ने भी लिखा है कि हम किसी वस्तु को उसके यथार्थ रूप मे नही बलिक उस रूप मे देखते है जिस रूप मे हम स्वय होते है।[1] अग्रेजी मे कहा भी है कि सौन्दर्य देखनेवाले की आख

[1] We see things not as they are but as we are.

में (पहले से ही) रहता है।[१] यह सर्व-अनुभूत सत्य है कि विचारों को सरस या नीरस, आशामय या निराशामय बनानेवाला हमारा अन्तर्मन ही होता है, जिसमे हमारे स्वाभाविक एव उपार्जित गुण सचित होकर हमारे दृष्टिकोण को बनाते है। वही हमारे सपूर्ण चरित्र और व्यक्तित्व का आधार होता है। वही हमारा साधन-क्षेत्र है।

इस प्रसग मे यह स्मरण रखना चाहिए कि अन्तःकरण बाह्य जगत् के सम्पर्क में नही रहता। उसमे मनुष्य की कुछ सहजात वृत्तियां रहती है, जो चेतन मन को प्रेरित करती है। सद्भाव और दुर्भाव दोनों उसमे रहते है। प्रत्येक व्यक्ति मे इनमें से एक की प्रबलता होती है। उनका पोषण या निराकरण मनुष्य स्वेच्छा से नहीं कर सकता। यदि दुर्भाव है, तो वे आसानी से हृदय-प्रदेश से निर्मूल नही किए जा सकते। उनको निर्मूल करने का एक ही उपाय है। यदि चेतन मन द्वारा हम लम्बे अर्से तक सद्विचार करे तो अन्तर्मन की सद्भावनाए पोषित होगी। उनके प्रबल होने से दूषित मनोवृत्तियां दब जाती हैं। कल्याण के विचार करने से, सद्गुणो का अभ्यास करने से तथा शिक्षा द्वारा अन्तर्मन सस्कारित हो जाता है। अन्य किसी उपाय से अन्तस्थल मे सद्वृत्तियो की सृष्टि नही हो सकती। यदि इसके प्रतिकूल किया जाए तो धीरे-धीरे भीतर दुर्भावनाओं का विकास होता है, मनुष्य व्यसनी, विपयी और आदतो का गुलाम हो जाता है। सार रूप मे यही समझना चाहिए कि सद्विचारो, दुर्विचारों तथा सत्कर्मो दुष्कर्मो से हमारी आदते बनती है, स्वभाव बनता है, मनोदशा बनती है और मनोदशा के अनुसार सम्पूर्ण जीवन बनता है। स्वभाव या मनोदशा के दुष्ट होने पर विचार निर्वल हो जाते है

१. Beauty lies in the eye of the beholder

और इन्द्रियां दुराचारिणी हो जाती है। यदि मनुष्य मन से क्लीव होता है, तो उसका सारा पुरुषार्थ निष्फल हो जाता है। उपनिषद्कारों ने सत्य ही लिखा है कि मन ही मनुष्य के बन्धन एव मोक्ष का कारण होता है: 'मन एव मनुष्याणां कारण वन्धमोक्षयो:'। मनोयोग से कोई तो मनोवल सचित करके अधिक समर्थ एव स्वतन्त्र बन जाता है और कोई अपनी आदतो की गुलामी से बन्धन-ग्रस्त हो जाता है। एक बार जो स्वभाव वन जाता है, वह कठिनाई से बदलता है, इसलिए नीति का वचन है कि 'स्वभावो दुरतिक्रम.'।

अन्तर्मन के सम्बन्ध मे दो-चार अन्य बातें भी जानने योग्य है:

१. शरीर के अगो की जो स्वाभाविक चेष्टाए होती है, उनका सचालक अन्तर्मन ही है। कोई विचार मस्तिष्क मे आते ही यह मन शरीर के अगों को तत्काल सचालित कर देता है। इसमे जैसी दुर्भावनाए जगती है या उठती है, उनका प्रभाव शारीरिक चेष्टा और मुख-मुद्रा से तत्काल लक्षित होता है।

२. सबके मस्तिष्क का भावना-अग चेतना-अग से अधिक सवल होता है। सब विचारक भले ही न हों परन्तु एक अंग तक भावुक अवश्य होते है। सबमे कुछ प्राकृतिक भावनाए होती है इसलिए हृदयस्पर्शी या मर्मस्पर्शी वातों का प्रभाव अधिक पड़ता है। भावो को आन्दोलित करने से किसीकी विचारधारा उनके अनुकूल चल पड़ती है, परन्तु शुद्ध ज्ञान-क्षेत्र में भावुकता का प्रदर्शन सूर्योदय मे चन्द्र जैसा होता है। दोनो के अलग-अलग अवसर होते है। जहां ज्ञान-प्रयोग निष्फल होता है, वहां भाव की सजगता कार्य कर जाती है।

३. अन्तर्मन की दो प्रवृत्तियां सबमें प्रबल होती है—एक आर्थिक, दूसरी मनोवैज्ञानिक। पहली के अन्तर्गत क्षुधा या जीविकोपार्जन-सम्बन्धी वृत्तिया होती है; दूसरी के अन्तर्गत प्रेम-प्रतिष्ठा आदि की

प्राप्ति की भावनाए। इनको विचारो के वेग से उखाड़ा नही जा सकता। अतएव विचारो को इस रूप मे ढालना पडता है, जिससे क्षुधा और मान आदि की तृप्ति हो सके।

४. विचारो या सवेदनाओं की अधिक उत्तेजना से पहला आघात अन्तर्मन पर पडता है। वह निर्बल हो जाता है। इस स्मृति-अग के निर्वल होने से वुद्धि नष्ट हो जाती है। क्योकि धारक यन्त्र ही निर्बल होगा तो विचार ठहरेगे कहां, विचार-श्रृ खला कैसे वधेगी! पागलो की पहले स्मृति ही नष्ट होती है। क्रोध में भी पहले स्मृति-नाश होता है, जिससे मनुष्य भला-बुरा कुछ नही पहचान सकता और वेसिर-पैर के काम करता है। वहुत-से लोगो के व्यक्तित्व मे जो विभिन्नता दिखलाई पड़ती है, उसका मुख्य कारण उनकी स्मृति-दुर्बलता है। विचारो या सवेदनाओ की शिथिलता अथवा अकर्मण्यता से मस्तिष्क मे जडता आ जाती है। अतएव छोटे-बड़े मन का कार्यक्रम तभी ठीक रह सकता है, जबकि दोनो मे परस्पर आदान-प्रदान होता रहे। मनुष्य उन्नति तव करता है, जव उसके विचार उसकी भावुकता पर शासन करते है। इसलिए चेतन मन को गृहपति और अन्तर्मन को गृह-स्वामिनी मानकर उनको उनकी मर्यादा मे रखने से सफलता मिलती है।

मस्तिष्क का प्रधान तत्त्व

मस्तिष्क की क्रिया-प्रणाली के आधार पर उसका साधारण परि-चय ऊपर दिया जा चुका है और इसका भी सकेत किया जा चुका है कि उसका सचालक मन नामक तत्त्व है। उसके अतिरिक्त मस्तिष्क का एक और अंग है, जिसको वुद्धि कहते है। वुद्धि वह तत्त्व है जो मानस को प्रकाशित करता है। वह मानस से सयुक्त रहता है। ज्ञान, विवेक और स्मृति-सम्वन्धी जिन कार्यों का उल्लेख ऊपर हुआ है, वे

बुद्धि के सहयोग से ही होते है। या यो कहिए कि मानस-खण्डो की सहायता से बुद्धि ही कल्पना, मनन आदि करती है। बुद्धि का हम अलग से वर्णन केवल उसकी कुछ विशेषताओं को व्यक्त करने के लिए कर रहे है।

बुद्धि मस्तिष्क की प्रधान शक्ति है, जिसका अधिकाश सबको जन्म से ही सुलभ होता है। उसका केवल एक विशेष रूप है, जो सर्वसुलभ नहीं होता, वह है प्रतिभा। प्रतिभा उस बुद्धि को कहते है जिसमे मौलिक विचारो की सृष्टि करने की क्षमता हो। ऐसी विलक्षण बौद्धिक शक्ति विलक्षण व्यक्तियो को जन्म से प्राप्त होती है, वह बनाने से नही बनती। बुद्धि-प्रयोग से कोई भी व्यक्ति बुद्धिमान और विद्या-अभ्यास से विद्वान हो सकता है, परन्तु सब प्रतिभाशाली नही हो सकते।

न्यायशास्त्र के मत से साधारण बुद्धि के दो भेद होते है—अनुभूति और स्मृति। इनका विवरण चेतन और अन्तर्मन के अन्तर्गत आ चुका है। उपयोग के अनुसार शास्त्रकारो ने उसके कुछ और भी भेद किए है। उनका भी सक्षिप्त परिचय जान लेना आवश्यक है। एक प्रकार की बुद्धि को आसक्त बुद्धि कहते है। वह किसी विषय मे आसक्त होकर, तब स्वार्थ-भावना से उसपर विचार करती है। इसलिए वह अपने प्रधान धर्म—न्याय या विवेक—को भूल जाती है और विषय के यथार्थ रूप का निरूपण नही कर पाती। उत्तम बुद्धि निरासक्त होती है, जो न्यायपूर्वक किसी वस्तु का यथातथ्य निरूपण करती है। निरासक्त और आसक्त बुद्धि के आधार पर ही ज्ञानी-अज्ञानी का भेद किया जाता है।

एक प्रकार की बुद्धि सशयात्मक होती है, जो भ्रमपूर्ण, मलिन और द्विविधाग्रस्त रहती है। अल्पज्ञ, अपराधी और चचल स्वभाव

के मनुष्यों की बुद्धि सशयात्मक अतएव अस्थिर होती है। दूसरे प्रकार की बुद्धि निश्चयात्मक होती है, जो स्थिर, गम्भीर, स्वच्छ और ज्ञान से प्रकाशित रहती है।

इसी प्रकार बुद्धि के सदुपयोग, दुरुपयोग, और अनुपयोग के आधार पर उसके अनेक भेद किए जाते हैं। मर्मज्ञता, कुशाग्रता, दूरदर्शिता, सूक्ष्मदर्शिता, प्रत्युत्पन्नता आदि उसके विशेष गुण माने जाते है और दीर्घसूत्रता, जडता, मुग्धता आदि आत्मनाशी अवगुण। सरलता, विचारो की स्पष्टता, सुव्यवस्थित ढग से भावो की अभिव्यजना, प्रगल्भता, सक्रियता, एकाग्रता और परिणामदर्शिता—ये उत्तम बुद्धि के गुण है। जो बुद्धि क्रियात्मक होती है, सप्रयोजन विचार करती है और विचारो को कार्यरूप मे परिणत करने के लिए मनुष्य को प्रेरित करती है, वही बुद्धि विशेष गुणवती कही जाती है। सबसे निकृष्ट बुद्धि वह हैं जो मन्द होती है और शृगाल की तरह भीरु रहती है। ऐसे बुद्धिवालो या बुद्धिहीनों को क्रमशः मन्दबुद्धि और शृगालबुद्धि कहते है।

बुद्धि की महत्ता

विस्तार-भय से हमने सूक्ष्म रूप मे ऊपर बुद्धि का साधारण विवरण दे दिया है। उसके सदुपयोग के सम्बन्ध में हमे सर्वप्रथम यही कहना चाहिए कि बुद्धि की उपयोगिता से ही मनुष्यता की प्रतिष्ठा होती है। इस अध्याय के आरम्भ में हम मस्तिष्क-वल की प्रधानता के सम्बन्ध मे जो कुछ लिख चुके हैं वह वस्तुतः बुद्धि-वल की श्रेष्ठता का वर्णन हैं। बुद्धि-प्रधान जीव होने के कारण मनुष्य सर्वप्रधान जीव है। हितोपदेश मे सत्य ही कहा है कि जिसके पास बुद्धि है, वही वलवान है. 'बुद्धिर्यस्य वल तस्य'। मानव-जगत् में हम प्रत्यक्ष ही देखते हैं कि जो बुद्धिमान हैं, वे ही स्वतन्त्र, समृद्ध एव शक्तिमान है। बौद्धिक

स्वतन्त्रता से मनुष्य बन्दीगृह मे भी स्वतन्त्र रहता है। गांधीजी उस समय भी सर्वस्वतन्त्र थे, जब सारा देश पराधीन था, क्योकि वे बुद्धि से स्वतन्त्र थे। गाधीजी निःशस्त्र होते हुए भी सर्वशक्तिमान थे और कौन नहीं जानता कि उस क्षीणकाय मनुष्य ने केवल बुद्धि-साधना से अकेले खड़े होकर दिग्विजेता अंग्रेजों को सात समुन्दर पार खदेड़ दिया। अपने साधारण जीवन मे देखिए—किसी कर्म के सम्पादन मे एक बुद्धिमान और एक मूर्ख की शारीरिक क्रियाओ में कोई अन्तर नहीं होता, केवल बुद्धि का अन्तर होता है, जिसके कारण बुद्धिमान का कार्य सफल होता है और मूर्ख का विफल :

प्राज्ञस्य मूर्खस्य च कार्य्ययोगे समत्वमभ्येति तनुर्न बुद्धिः। (भास)

बुद्धिमान से कही अधिक कठोर परिश्रमी होकर भी मूर्ख केवल इसलिए नही सफल होता कि वह कार्य-कुशल नहीं होता। अपनी बुद्धि-हीनता और विचारो की दासता के कारण वह परतन्त्र तथा बुद्धिमानों का आश्रित बना रहता है। हितोपदेश मे लिखा है कि बुद्धिहीनों से बुद्धिमानो की जीविका चलती है : 'विदुषां जीवनं मूर्खः'।

बुद्धि की उपयोगिता पर एक दृष्टि से और विचार कीजिए—समय सबके लिए एक-सा रहता है, परन्तु बुद्धिमान व्यक्ति उसीको कामधेनु बनाकर दुहता है और बुद्धि-रंक उसको व्यर्थ गवा देता है। ऐसे व्यक्ति के हाथ से समय जब तीर की तरह निकल जाता है, तब वह सचेत होकर खोए हुए अवसर के पीछे किंकर्तव्यविमूढ होकर दौड़ता है। वही अवस्था नरक है। एक अंग्रेजी विचारक ने लिखा है कि अवसर का हाथ से निकल जाना और समय बीतने के बाद यथार्थता का ज्ञान होना ही नरक है।[1]

---

१ Hell is opportunity missed and truth seen too late.

इस नरक से बचने के लिए बुद्धि का समयानुकूल उपयोग आवश्यक होता है। विदुर की जिह्वा पर बैठकर व्यास की सरस्वती ने ठीक कहा है कि सद्बुद्धि द्वारा ही देवताओं का अनुग्रह प्रकट होता है। देवता लोग चरवाहे की तरह डण्डा लेकर किसीकी रक्षा नहीं करते, वे जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसको बुद्धि-बल से सयुक्त कर देते है।[1]

इसके विपरीत, बुद्धि का दुरुपयोग होने से मनुष्य की मनुष्यता का नाश हो जाता है : 'विनाशकाले विपरीतबुद्धि.'—इसका प्रत्यक्ष प्राकृतिक प्रमाण यह है कि मृत्यु-काल के निकट होने पर मनुष्य की बुद्धि एकाएक परिवर्तित या विपरीत हो जाती है और वह अपने हित-अहित को पहचानने मे असमर्थ हो जाता है। तुलसी की यह उक्ति उल्लेखनीय है :

जा कहँ प्रभु दारुन दुख देहीं।
ताकर मति पहिलेहिं हर लेहीं॥ (मानस)

जिस दृष्टि से भी हम देखे, यही सत्य प्रतीत होता है कि मनुष्य के उत्थान-पतन का कारण उसकी बुद्धि होती है। बौद्धिक विकास से मानव-शक्ति का विकास होता है और उसके ह्रास से शक्ति-विनाश। यही नही. बुद्धि के दुरुपयोग से मनुष्यता का दुरुपयोग होता है। बुद्धि इतनी प्रभावशालिनी शक्ति है कि वह कुटिल होकर अपना ही नही, बहुतों का सर्वनाश कर देती है। अतएव उसके उपयोग में उतनी ही सावधानी की आवश्यकता होती है जितनी बन्दूक या पिस्तौल के उपयोग मे।

बुद्धि का सदुपयोग क्या है?—वाल्मीकि के अनुसार उसके ये गुण है, जिनसे उसके उपयोग का पता लग सकता है : सुनने की

---

१. न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।
यन्तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या सविभजन्ति तम्॥ (महाभारत)

इच्छा, सुनना, ग्रहण करना, धारण करना, तर्क द्वारा सिद्धान्त का निश्चय करना, विज्ञान और तत्त्व-ज्ञान ।[1]

सार रूप में इसमें सभी कुछ आ गया, परन्तु इसपर विस्तारपूर्वक भी विचार करना चाहिए। बुद्धि का प्रधान कार्य है—सत्य को खोजना, उसको प्रकाशित करना। जीवन के रहस्यों और प्रकृति के रहस्यों को जानना उसका विशेष धर्म है। वह एक दीपक है, जिसको लेकर मन घोर अंधकार में अपना मार्ग देखता है। बुद्धि जीवन का नेतृत्व करती है, अतएव जब वह सत्य को देखने में प्रवीण होती है, तभी नेतृत्व कर सकती है।

बुद्धि-चक्षु से बुद्धिमान प्राणी पहले जीवन-सत्य को देखता है, जिसको आत्मज्ञान कहते हैं। वह अपने को पहचानता है, अपनी आत्मशक्तियों को देखता है, वह अपनी स्वभावज प्रवृत्तियों को समझता है और अपनी सर्वप्रधान मूल प्रवृत्तियों को पकड़ता है। वह देखता है कि उसके मस्तिष्क का स्वाभाविक झुकाव किधर है। वह यह देखता है कि उसकी पशु-प्रवृत्तियां कितनी प्रबल हैं और आत्म-संयम द्वारा इनके संस्कार का उपाय सोचता है। बुद्धि द्वारा ही वह आत्मज्ञान प्राप्त करता है और आत्मज्ञान ही परम ज्ञान है, ऐसा प्राचीन पण्डितों का मत है : 'आत्मज्ञानं परं ज्ञानम्'। पाश्चात्य दार्शनिक भी आत्मज्ञान को दर्शनशास्त्र का मूल सिद्धान्त मानते हैं और कहते हैं कि अपने को पहचानो।[2] यह ज्ञान बुद्धि के उपयोग से ही सुलभ होता है। आत्मज्ञान के अतिरिक्त दूसरों को पहचानना बुद्धि का ही कर्तव्य है। अपने को तथा दूसरोंको पहचानकर ही मनुष्य अपने

---

१. शुश्रूषाश्रवणञ्चैव ग्रहणं धारणं तथा।
ऊहोऽपोहोऽर्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः ॥ (रामायण)

२ Know thyself

कर्तव्य का निश्चय कर सकता है। इस प्रकार बुद्धि का कार्य कर्तव्य-अकर्तव्य, उचित-अनुचित को जानना और जीवन के सत्य को, प्रयोजन को समझकर उसका विकास करना है।

बुद्धि का दूसरा प्रधान उपयोग है—सृष्टि के सत्य को समझकर, मानव-जीवन को उसके अनुरूप बनाना। सृष्टि का सत्य क्या है? 'शतपथब्राह्मण' मे लिखा है कि यह सभी विश्व एक छन्द है: 'छन्दासि वै विश्वरूपाणि'। छन्द उस गति को कहते है जो ताल-ताल मे नृत्य करती है। किसी छन्दोबद्ध रचना में जिस प्रकार बहुत-से शब्द यथास्थान सयुक्त होकर एक भाव को अभिव्यक्त करते हैं, उसी प्रकार इस विश्व-रचना के सभी साधन अलग-अलग रहते हुए और परस्पर सघर्ष करते हुए भी एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील प्रतीत होते है। जिस प्रकार शब्दो को यथास्थान सयुक्त करके कोई कवि उनको काव्य का रूप दे देता है, उसी प्रकार समस्त प्राकृतिक शक्तियो को किसी 'कविर्मनीषी' ने क्रम से सयोजित किया है, तभी सृष्टि का कार्यक्रम नियमपूर्वक चलता है। काव्य के पीछे कवि की प्रतिभा और किसी चित्र के पीछे चित्रकार की कला की तरह सृष्टि-रचना के पीछे किसी कुशल रचनाकार की रचनात्मक बुद्धि और उसके अस्तित्व का आभास मिलता है। उसकी भावना अथवा योजना के अनुसार सब सत्त्व सप्रयोजन अपनी-अपनी मर्यादा मे सीमित होकर, अपने-अपने निश्चित धर्म के अनुसार ही चलते हैं और इस व्यवस्था से सम्पूर्ण सृष्टि नियमित गति से चलती रहती है। उसके भावुक कलाकार या नियामक को ईश्वर, परमात्मा आदि नामों से पुकारते हैं। यही सांसारिक जीवन का सबसे बड़ा सत्य है, जिसको बुद्धि से ही समझा जा सकता है। इस सत्य के आधार पर ही मानव-जीवन की समस्त रूपरेखा बनती है, मनुष्य के चरित्र का

निर्माण होता है और मनुष्यता की एक मर्यादा बधती है। मनुष्य समझता है कि वह संसार में अकेला नही है, उसका एक साथी भी है जो उसको प्रेरित करता है। वह उसको जीवन का पथ-प्रदर्शक और जीवन-सन्ध्या का अन्तिम दीपक मानकर धैर्यपूर्वक आगे बढ़ता है। और सबसे प्रमुख बात यह है कि इसी सत्य-विश्वास के आधार पर मानव-जीवन की नैतिकता की प्रतिष्ठा होती है, जिसके द्वारा जीवन में सफलता मिलती है। समाज मे जो अनेकता में एकता दिखलाई पड़ती है, वह जीवन के इसी नैतिक पक्ष की प्रबलता के कारण है।

लोक-जीवन का एक और प्रधान सत्य है, जिसको समझने के लिए बुद्धि की आवश्यकता होती है। उपनिषद् के शब्दों मे वह यह है : 'आनद ही ब्रह्म है, यह जान ; आनन्द से ही सब प्राणी उत्पन्न होते हैं ; उत्पन्न होने पर आनन्द से ही जीवित रहते है और मृत्यु से आनन्द ही में समा जाते है।'[1]

इसको जानने की आवश्यकता इसलिए है कि जीव-मात्र सुख का इच्छुक होता है, या दूसरे शब्दों मे, आनन्द-कुमार होता है। ससार आनन्दमय तभी हो सकता है जब सभी सृष्टि के नियमानुसार आचरण करे। यह तथ्य बुद्धि ही से जाना जा सकता है।

सक्षेप में यह समझना चाहिए कि बुद्धि द्वारा चित्त की भ्रमण-शील वृत्तियों को रोका जाता है अर्थात् चित्त को एकाग्र किया जाता है, उसीको योग कहते है। उससे कुप्रवृत्तियों का दमन करके मानसिक विभूतियों को उद्दीप्त किया जाता है, जीवन के मर्म को समझा जाता है और आवश्यकतानुसार बाहर से ज्ञान का संचय करके चारो का निर्माण

१. आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्‌ आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते'''आनन्देन जातानि जीवन्ति ''आनन्द प्रयन्त्यभिसविशन्तीति।

किया जाता है। सुकरात के मत से ज्ञान ही धर्म है।[1] और पाश्चात्य दर्शन के अनुसार ज्ञान ही शक्ति है।[2] भारतीय दर्शन के मत से ज्ञान द्वारा किया हुआ कर्म ही प्रधान बल है। क्रियात्मक ज्ञान ही बुद्धि का असली धन है। महाकवि गेटे के शब्दो मे विचारो का कार्यरूप मे परिणत करना ससार मे सबसे कठिन कार्य है।[3] अतएव बुद्धि का काम किसी ज्ञान को प्राप्त करना ही नही, बल्कि उसका उपयोग करना है; और उपयोग भी इस तरह करना कि उससे मानव-चरित्र की मर्यादा बनी रहे। गाधीजी ने लिखा है कि चरित्र के बिना ज्ञान एक नाशकारी बल है, जैसाकि ससार के बहुसख्यक सिद्धहस्त चोरों और धूर्त भलेमानसों के उदाहरण से प्रकट होता है। चरित्र के लिए बाहर की अपेक्षा बुद्धि को अपनी आत्मा का आश्रय लेना पडता है।

आत्मा

मानस तत्त्वो के इस विवरण को समाप्त करने से पूर्व आत्मा के विषय में भी कुछ लिख देना आवश्यक है क्योकि वही प्राण-प्रदायक तत्त्व है और तत्त्वज्ञो के मत से, उसीसे उसके स्वभाव का 'महत्' (बुद्धि) उत्पन्न होता है, जिससे मनुष्यता का विकास होता है। बहुत-से लोग आत्मा के अस्तित्व मे विश्वास नही करते और जीवन के भौतिक पक्ष को ही सर्वस्व समझते है। वे लोग आत्मिक शक्ति को इतना महत्त्व नही देते, जितना ऐटम की शक्ति[4] को। यद्यपि इसी युग मे गांधीजी

---

१ Knowledge is virtue

२. Knowledge is power

३ To put one's thought into action is the most difficult thing in the world

४ Atomic energy.

सिद्ध कर चुके है कि आत्मिक शक्ति ही ससार मे प्रधान शक्ति है। जो लोग आत्मा के अस्तित्व में विश्वास नही करते, वे अपनी चेतना की अपेक्षा अपनी जडता में अधिक विश्वास करते है।

आत्मा के होने मे इससे बढकर कोई क्या प्रमाण होगा कि वही एक तत्त्व है जिसके सयोग से पार्थिव शरीर मे चेतनता आ जाती है और उसीके वियोग से मिट्टी का शरीर फिर मिट्टी में मिल जाता है। मरने पर भी शरीर ज्यो का त्यों बना रहता है, पर उसमे कोई एक अज्ञात वस्तु नही रही, जिसके कारण वह निर्जीव हो जाता है। दूसरा प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह सकटग्रस्त, महारोगी या अबोध बालक ही क्यो न हों, मृत्यु से डरता है, अपने को बचाने की चेष्टा करता है। जीवन के अन्तिम क्षण तक जर्जरकाय वृद्ध भी मृत्यु-यत्रणा से बचना चाहते है, यद्यपि सभी मानते है कि मृत्यु से शारीरिक व्यथा का अन्त हो जाता है। इस स्वाभाविक भय का कारण यह है कि यद्यपि कोई मनुष्य मृत्युकालीन वेदना का अनुभवी नहीं होता, परन्तु कोई ऐसी वस्तु शरीर मे रहती है, जो उस घोर वेदना से परिचित रहती है और पुन. उसको भोगने से घबराती है। वह वस्तु या तत्त्व आत्मा ही है। वह वस्तु बुद्धि नही हो सकती क्योकि जीवात्मा से बुद्धि की भिन्नता अनुभूति ही नहीं, प्रत्यक्ष प्रमाणित भी होती है। पागलपन में पूर्णतया बुद्धि नष्ट हो जाती है, फिर भी शरीर जीवित रहता है। योग की मनोलया अवस्था मे अथवा मूर्च्छितावस्था में सम्पूर्ण मानसिक क्रियाएं स्थगित हो जाती है, परन्तु प्राणी जीवित रहता है। इससे उस अतिरिक्त शक्ति का आभास मिलता है।

कभी-कभी कोई अनैतिक आचरण करने पर मनुष्य को आत्म-ग्लानि होती है और कभी-कभी अकेले में भी कोई अपकर्म करते समय उसको अपने से ही भय लगता है। ये बाते आत्मा के अस्तित्व को

प्रमाणित करती है। ये बौद्धिक क्रियाएं नहीं हो सकतीं क्योंकि बुद्धि के सहयोग से ही कर्म होता है और अपराधी स्वय न्यायाधीश नही बन सकता। कोई और है जिससे मन, बुद्धि दोनो डरते है। और मन जब उच्छृंखल होने लगता है, तो सावधान बुद्धि उसको सचेत कर देती है कि भीतर कोई बाहरी देखनेवाला झांक रहा है। मनुष्य को अनुभूति होती है कि भीतर एक द्रष्टा है, साक्षी है। सबके साथ ईश्वर का एक गुप्तचर लगा है। बड़े से बडा आततायी भी निरपराध व्यक्ति को सताते समय भीतर से निर्बल हो जाता है; क्योकि ईश्वर का वह राजदूत अनैतिक कार्यो में सहयोग नही देता। नैतिक कार्यो में आत्मशक्ति स्वभावत. बढ जाती है क्योकि समस्त शरीर को जीवन-पर्यन्त सतेज रखनेवाली महाशक्ति का तेज स्फुटित होता है। यह वही प्रकाश है जिसको नोआखली में महात्मा गाधी अपने भीतर ढूढते थे। स्वानुभूति से उस तेजोमय तत्त्व का आभास मिलता है। बीज के बिना वृक्ष की तरह, आत्महीन जीवन की कल्पना नही हो सकती।

आत्मा का स्वरूप

जीवात्मा के अस्तित्व को मान लेने पर भी उसके स्वरूप का ठीक-ठीक निर्णय करना कठिन है। उसका स्वरूप जैसा भी हो, इतना निश्चित है कि वह परम चैतन्य, आनन्दमय, तेजस्वी, ज्ञानमय, निर्विकार और अक्षय है। आत्मशक्ति की दृढ़ता से उसकी इन विषमताओ की अनुभूति होती है। मानव-जीवन के आदर्श और ध्येय इन्ही गुणो के आधार पर बने हुए प्रतीत होते है। यदि आत्मतत्त्व में ये बाते न होतीं, तो स्वभाव और विचारो में ये बाते कैसी आती! प्रकृति मे ईश्वरीय कार्यो को देखकर मनुष्य ईश्वर में भी इन्ही गुणों की कल्पना करता है। आत्मसयम से वह स्वयं अपने भीतर विशेष चेतनता, आनन्द, स्फूर्ति, ज्ञान-प्रकाश, शुद्धता और अमरता का अनुभव करता है। निश्चय ही

आत्मा का वही स्वरूप है जो सर्वभूतान्तरात्मा ब्रह्म का है। तभी तो शास्त्रकारो ने निर्णय किया कि आत्मा ही ब्रह्म है या आत्मा परमात्मा का अंश है, अथवा महाकवि तुलसीदास के शब्दो में: 'ईश्वर अश जीव अविनाशी'। वही कर्ता है, जो चरित्र, स्वभाव, कर्तव्य और जिज्ञासा की उत्पत्ति करता है। वह क्षेत्रज्ञ है, जो भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के क्षेत्र मे भावों का आरोपण करता है।

आत्मा ब्रह्ममयी है, इसको दो-एक अन्य प्रमाणो से भी समझना चाहिए। वेद में लिखा है कि आदि मे केवल ब्रह्म था, उसने सकल्प किया कि मै एक से अनेक हो जाऊ। सकल्प के बाद उसने सृष्टि-रचना आरम्भ की और स्वय उसीमें समा गया। ईश्वर ने सचमुच ऐसा सकल्प किया या नहीं, इसपर तर्क करने की अपेक्षा इसके सत्य को इस रूप मे देखना चाहिए कि एक ही प्राण सर्वभूतो मे समाया है, तभी सब शक्तिया एक धुन मे काम कर रही है। बिना सकल्प या योजना के ईश्वर योही गिरकर चकनाचूर हो गया होगा। 'एकोऽह बहु स्याम्' की भावना को दृढ करके उसने आत्मविकास किया होगा। ध्यान से देखने पर एक से अनेक होने की यह भावना मानव-स्वभाव मे भी दिखलाई पडती है। कर्म से, सहानुभूति से, प्रतिष्ठा-प्राप्ति से मनुष्य अपने को व्यापक बना देना चाहता है और हम प्रत्यक्ष देखते है कि जो व्यक्ति अपने को जितना व्यापक बना लेता है, वह उतना ही ऐश्वर्य-वान बन जाता है। विश्व-कवि रवीन्द्र ने सत्य लिखा है कि 'देश और काल मे, जो मनुष्य जितने अधिक मनुष्यो के अन्दर अपने को मिला-कर देख सका है और प्रकाशित कर सका है, वह उतना ही महान पुरुष है।' आत्मविकास की ईश्वरीय भावना प्रत्येक मनुष्य के हृदय मे रहती है।

दूसरी बात यह है कि साधारण से साधारण प्राणी स्वभाव से

महत्त्वाकाक्षी होता है। वह प्रभु होना चाहता है, अधिकारी एव ऐश्वर्य-वान होना चाहता है। धनोपार्जन तथा यशोपार्जन से मनुष्य दूसरों पर ईश्वरता प्राप्त करना चाहता है; जो बाहर सफल नही होता, वह घर मे स्त्री-बच्चो का ही प्रभु बनकर रहना चाहता है। जो किसीपर अधिकार प्राप्त नही कर पाता, वह घर के पशुओ पर ही अपना प्रभुत्व दिखाकर आत्मसतोप करता है। प्रभु होने की यह सार्वजनिक आकाक्षा मनुष्य के हृदय मे किसी प्रभु के अश से ही आती है। इसीके साथ यह भी समझ लेना चाहिए कि सभी स्वभावतः स्वाधिकार-प्रेमी है, इसीलिए कोई किसीके अधिकार को छीनकर उसकी सहानुभूति नही प्राप्त कर सकता। ईश्वर का एक और विचित्र गुण मानव-मनोवृत्ति मे समाया हुआ है। वह यह कि शक्ति या धन को बटोरने से नही बल्कि उनका वितरण करने से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। ईश्वर ने प्रकृति मे अपनी विभूतियो को फैला दिया है, इसीसे उसकी ईश्वरता का भान होता है। मानव-समाज मे भी देखिए तो यही बात मिलेगी। जो दूसरो को दे सकता है—चाहे अधिकार या धन या पद—और जो दूसरो के लिए त्याग कर सकता है, उसीको लोग स्वभाववश (बुद्धि-वश नही) सामर्थ्यवान या महान मानते है। सेवा, त्याग, और परोप-कार से ही ऐश्वर्य या अधिकार की प्राप्ति होती देखी जाती है। इसको देखते हुए स्कदपुराण की ईश्वर द्वारा कथित यह उक्ति ठीक समझ मे आ सकती है. 'ददामि च सदैश्वर्यमीश्वरस्तेन कीर्तित'। अर्थात् मै सदैव ऐश्वर्य प्रदान करता हूं, इसलिए ईश्वर माना जाता हूं। कुबेर धनाधीश कहे जाते है, परन्तु लोक मे उनको कोई नही पूजता। लक्ष्मी की पूजा सर्वत्र होती है; उनकी पूजा के लिए त्योहार है, उनकी मूर्तिया है और उपासको मे उनके प्रति श्रद्धा मिलती है। कारण यह है कि लक्ष्मी दूसरो को समृद्ध बनाने मे प्रसिद्ध है; कुबेर की तरह

बटोरती नहीं। इस प्रवृत्ति को धारण करनेवाली शक्ति आत्मा ही है, जो ब्रह्मस्वरूपिणी है। जो ऐश्वर्य नहीं प्रदान करता, उसके प्रति मानव-आत्मा विद्रोह करती है। जनता की इसी प्रवृत्ति ने उन देशी नरेशों को नीचे गिरा दिया जो दूसरों को ऐश्वर्य न देकर, उनका ऐश्वर्य छीन-कर स्वय ऐश्वर्यशाली बने रहना चाहते थे। उनकी ईशता कृत्रिम थी, अतएव असह्य थी। उन्होंने ईश्वर की पदवी तो ले ली थी पर कभी यह चेष्टा नही की कि वे एक से अनेक हो जाएं अर्थात् प्रजातन्त्र स्थापित करके अपने को प्रजा में व्यापक बना दे।

ब्रह्म और आत्मा समानधर्मी है। इसका एक प्रबल प्रमाण और भी है। लौकिक दृष्टि से मनुष्य अपने से अधिक अन्य किसीको नही चाहता; वह स्वार्थी होता है और उसके अधिकाश काम स्वार्थ की प्रेरणा से होते है परन्तु स्वार्थ पर ही उसका सारा ससार नही बनता। मनुष्य के भीतर एक और प्रबल भावना रहती है, जो स्वार्थ को दबा लेती है। यह भावना प्रबल होती है तो मनुष्य उस जीवन तक को सहर्ष बलिदान कर देता है जिसके लिए वह स्वार्थ-सचय करता है और जिसकी रक्षा के लिए वह अपना सर्वस्व लुटाने को तैयार रहता है, वह नैतिक भावना है। मनुष्य अपने आदर्शो की रक्षा के लिए जीवन का मोह नही करता। देश-प्रेम, जाति-प्रेम, धर्म-प्रेम के लिए वह सहर्ष आत्म-त्याग करता देखा जाता है और उसकी आत्मा तभी उद्दीप्त होती है जब नैतिक जीवन की रक्षा मानवता की मान-रक्षा का प्रश्न उपस्थित होता है। उस दशा में लोक-सेवा के लिए वह अपने को भूल जाता है। तभी प्रकट होता है कि मनुष्य अपने लिए ही नही, दूसरों के लिए भी जीता है। वह समाज में अपना नाम, अपनी कीर्ति छोड़ जाना चाहता है—शरीर चाहे रहे या न रहे, आदर्शो के पालन की यह भावना और अमरता की आकाक्षा ही प्रकट करती है कि

आत्मा मे ईश्वर रूपी अग्नि की चिनगारी है। और यह बात सत्य मालूम होती है कि मनुष्य को ईश्वर ने अपने जैसा ही बनाया है, उसको अपनी जैसी रचनात्मक एव महत्त्वाकाक्षी बुद्धि दी है। आत्मा द्वारा ही ये ईश्वरीय तत्त्व शरीर मे आते हैं।

आत्मा की कुछ विशेषताएं

आत्मा के रूप में मनुष्य को दैवी तत्त्व सुलभ होता है, इसमे सन्देह नही। भौतिक शरीर मे ज्ञान, चेतना और समस्त मूल वृत्तियो का बीजारोपण वही करती है, इसमे भी सशय नही हो सकता। वह शक्तिशालिनी है, इसको कौन न मानेगा? जिसमे जीवन देने की और जीवन लेने की क्षमता है, उसकी शक्ति-सत्ता को न मानना मूर्खता है। उसका स्वरूप जैसा भी हो, इतना निश्चित है कि वह ब्रह्ममयी है। इन बातों को ध्यान मे रखते हुए हमे आत्मा-सम्बन्धी कुछ अन्य बातो को भी समझ लेना चाहिए।

पुनर्जन्म

पुनर्जन्म भारतीय तत्त्व-ज्ञान का मौलिक सिद्धान्त है। इससे आत्मा का अस्तित्व ही नही सिद्ध होता, बल्कि जीवन की बहुत-सी पहेलियां भी सुलझ जाती है। जीवन की बहुत-सी विचित्रताओं को आजकल के बड़े-बड़े पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक नही समझ पाते; जहा बुद्धि से कार्य-कारण समझ मे नहीं आता, वहां वे प्रकृति या स्वभाव का आश्रय लेकर छुट्टी पा जाते है। पुनर्जन्म के सिद्धान्त से सब प्रश्नो का उत्तर मिल जाता है।

संक्षेप मे पुनर्जन्म की व्याख्या यह है। शरीर के विनाश के साथ उसमे धारित आत्मा का विनाश नही होता। एक शरीर से निकलकर वह दूसरे शरीर मे धारित होती है। एक शरीर मे रहते हुए वह निर्लिप्त रहती है। शरीर-नाश के बाद वह उस जीवन के अर्जित

कर्मों को लेकर दूसरे शरीर मे प्रवेश करती है। उन कर्मों को ही सस्कार कहते है। यह क्रिया वैसी ही है, जैसे वायु का एक कुज की गन्ध लेकर दूसरे कुज या स्थान मे जाना।

इस रहस्य को समझने के लिए मनुष्य के जन्म-मरण पर ध्यान दीजिए। पुरुष के मस्तिष्क-सस्थान[1] की उत्तेजना से कामोत्तेजना होती है, कामाग्नि प्रदीप्त होती है। कामाग्नि से प्रेरित प्राण-वायु के वेग मे शरीर का तेज शुक्राणु रूप मे उग्र एव गतिमान होकर स्त्री-रज से सयुक्त होता है। उस प्राण-वायु मे, जिसकी प्रेरणा से शरीर का तेज गमन करता है, वाहर से जीवात्मा धारित होकर शुक्र के साथ जाती है। वह उसी प्रकार धारित होती है, जैसे वायु में गन्ध। इस प्रकार रज-वीर्य के साथ आत्मा के सयोग से नये शरीर की नीव पडती है।

शिशु की आत्मा उसके पिता की आत्मा नही होती, इसके प्रमाण है। यदि एक ही आत्मा होती तो दोनो के आचार-विचार, रूप-रग मे भी समानता होती। पर ऐसा नही होता। एक ही माता-पिता के दो पुत्र भिन्न-भिन्न स्वभाव के होते है—कोई बुद्धिमान एव आनन्दप्रिय स्वभाव का होता है, कोई घोंघावसन्त या मूर्खराज। वहुतों मे ऐसी रुचियां दिखाई पड़ती है, जिनका लेश-मात्र भी उनके पूर्वजो मे नही होता। कोई जन्म से ही साहित्य की रुचि लेकर आता है और कोई प्रपच-रचना की। इन सवसे पिता की आत्मा से सन्तान की आत्मा की भिन्नता प्रकट होती है और यह भी पता चलता है कि प्रत्येक आत्मा अपने साथ भिन्न-भिन्न जन्मगत सस्कार लेकर आती है। तभी तो लोगों में रुचि-विभिन्नता और बुद्धि-विभिन्नता होती है। इसके अनेक उदाहरण है कि वहुत-सी सन्ताने कुछ वयस्क

१. Nervous system.

होने पर अपने पूर्वजन्म के वृत्तान्त बता देती हैं और खोज से उनकी बताई बाते सत्य निकलती हैं। अतः यही मानना पड़ता है कि पुत्र की आत्मा एक सर्वथा स्वतन्त्र आत्मा होती है, उधार ली हुई नही।

हां, इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि आत्मा अपने पूर्व-जीवन के सस्कार ही नही, बल्कि माता-पिता के संस्कार भी लेकर नवजीवन मे पदार्पण करती है। पिता के प्राण-मार्ग से जाने के कारण वह उसके वातावरण से अवश्य ही प्रभावित होती होगी। इसके अतिरिक्त शुक्राणु भी कुलज प्रवृत्ति-वाहक होते है, जिनका प्रभाव आत्मा पर पड़ता है। माता के गर्भ मे शरीर के नौ महीने निवास के कारण आत्मा मुख्यतः माता के सस्कारों-विचारों से प्रभावित होती है। उन सस्कारों का प्रभाव इतना रहता है कि पुत्र के कष्ट से माता-पिता को स्वाभाविक कष्ट होता है। वह कष्ट शरीर द्वारा नही आत्मा द्वारा अनुभूत होता है। एक के शारीरिक कष्ट से दूसरे को शारीरिक कष्ट नही होता। इस आत्मीयता को देखकर ही 'आत्मा वै जायते पुत्र.' कहा जाता है। यह आत्मीयता सस्कारों के कारण या आत्मा के समान-धर्मी होने के कारण ही नही उत्पन्न होती। आत्मा जिस शरीर में जाती है, उसकी प्रकृति के अनुसार आचरण करने को बाध्य होती है। शरीर की प्रकृति माता-पिता द्वारा प्राप्त होती है। शरीर की बनावट पर उनके अगो का प्रभाव पड़ता है। सुश्रुत के मत से शरीर के स्थिर तत्त्व अर्थात् केश, श्मश्रु, रोम, अस्थि, नख, दांत, सिर, धमनी, स्नायु तथा रेत पितृज होते है और मृदु तत्त्व अर्थात् मांस, रक्त, मेद-मज्जा, हृदय, नाभि, यकृत, प्लीहा तथा आन्त्र मातृज होते हैं। (पुष्टि, बल, वर्ण, स्वास्थ्य, अस्वास्थ्य को उन्होने रज-जन्य और इन्द्रिय, ज्ञान, विज्ञान आयुर्मान, सुख-दुःख को आत्मज माना है।) इस बनावट का प्रभाव आत्मा पर पड़ता है और मुख्यतः रक्त का प्रबल आकर्षण होता है।

रज-वीर्य के रक्तसार से ही शरीर बनता है; अतएव समान गुणधारी रक्त में स्वाभाविक एकता होती है। अनेक परम्परागत बीमारियां रक्त-सम्बन्ध की सत्यता को प्रमाणित करती है। आत्मा पर रक्त-सम्बन्ध की दृढता का प्रभाव प्रायः अन्य जन्मों मे भी दिखलाई पड़ता है। यही कारण है कि कुछ लोग किसीके प्रति स्वाभाविक प्रीति रखते हैं. 'प्रीति पुरातन लखै न कोई' (तुलसी)।

आत्मा पर जीवनगत सस्कारो का प्रभाव कैसे पडता है ? इसका उत्तर यह है—किसी विचार या कर्म का लक्षण हमारे अगो पर तत्काल प्रकट होता है। दैनिक चरित्र का वेसा ही प्रभाव आत्मा पर पड़ता है। सद्‌गुणो-दुर्गुणो का प्रभाव जैसे शरीर पर पडता है वैसे ही आत्मा पर भी। जिस प्रकार आज के कर्मों का परिणाम कल या दस साल बाद मिलता हे, अथवा युवावस्था की भूलों का फल वृद्धावस्था में भोगना पड़ता है, उसी प्रकार आत्मा के साथ लगे हुए गुणो या कर्मो का परिणाम एक जीवन में या उसके बाद भोगना पडता है। यह गुण-परम्परा शरीर-नाश के बाद भी चलती रहती हे। पूर्व-जन्म या इसी जन्म का सुकृतफल हमे जब आगे प्राप्त होता है, तो हम उसीको पुण्य या भाग्य का उदय कहते है। बुद्धिमान व्यक्ति उन गुणो का आभास पाकर उनको और विकसित करता है। पूर्ववत् या इसी जीवन के विकार आत्मा की आग को धूमाच्छादित रखते है। तब आत्मा का प्रकाश नही फैलता और वे विकार समय पाकर फोडे की तरह फूट निकलते है। उसी अवस्था को हम पाप का दुर्भाग्य कहते हैं। मूर्ख व्यक्ति उसी धुए मे सांस लेता रहता है। चतुर व्यक्ति उन कुसस्कारो को पहचानकर उनसे आत्मा को मुक्त करता है और तप-सयम से शुद्धात्मा बन जाता है। आकस्मिक घटनाओ और पाप-पुण्य का बहुत कुछ भेद आत्मा के पुनर्जन्म के सिद्धान्तों से खुल जाता है। और यह

भी पता चल जाता है कि बहुत-से लोग स्वभाव से ही क्यो प्रतिभा-शाली, विलक्षण, भाग्यवान या सरल लगते है और दूसरे लोग क्यों मन्द, चिडचिडे या चोर होते है। यह सस्कारों का प्रभाव है। जिस प्रकार कुञ्ज की वायु पुष्पों का सौरभ लुटाती हुई आती है और श्मशान की वायु शव-गन्ध, वैसे ही आत्मा पूर्व-जीवन के गुणो का विस्तार करती आती है। सस्कारों का प्रभाव न होता तो सब बालक एक-से बुद्धि-मान होते। एक ही गुरु पचास शिष्यों को पढाता है परन्तु सबका विकास एक-सा नही होता क्योकि सस्कारों का प्रभाव अलग-अलग होता है।

सस्कारो का यह परिचय हमने इस प्रयोजन से दिया है कि पाठक यह जान जाए कि भाग्य-दुर्भाग्य कोई दैवी घटना नहीं है। संस्कार आत्मा के स्थायी गुण नही है, वे बदले जा सकते हैं, या प्रबल न हों तो और प्रबल बनाए जा सकते है। आत्मा को आप पारे की तरह एक वस्तु मान लीजिए। पारा भी निर्लिप्त रहता है, परन्तु उसके साथ अनेक दोष लगे रहते है। योग्य वैद्य उस पारद को सस्कारित, सशोधित करके शुद्ध एव कल्याणकारी बना लेता है। योग्य व्यक्ति भी ठीक उसी तरह आत्मा को शुद्ध करके उसको उपयोगी बना सकता है और इच्छानुसार उससे लाभ ले सकता है।

आत्मा का धर्म

आत्मा शरीर मे रहकर स्वयं इन्द्रिय-संचालन नही करती। उसकी बहुसख्यक वृत्तिया मूर्च्छितावस्था मे रहती है। बुद्धि द्वारा वे जगती है। जब बुद्धि आत्मा से सयुक्त होती है, तभी उसको आत्मा की स्फूर्ति या प्रेरणा मिलती है। घोर विपत्ति मे या साधना से जब आत्मा उद्दीप्त होती है, तो वह अपने महातत्त्व से अतिरिक्त शक्ति लेकर अधिक सबल हो जाती है। वह सहानुभूति के लिए अपने सजातीय तत्त्व की ओर

सहज रीति से दौड़ती है। इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि पुत्रोत्पत्ति के समय जब स्त्री को असह्य वेदना होती है और बुद्धि तथा मन व्याकुल हो जाते है, तो स्त्री की आत्मा मा-बाप या राम को पुकारती है। वह प्राणपति या प्राणाचार्य (वैद्य) को सकट-निवारण के लिए नहीं भजती। पाप और कष्ट मे इसीलिए शुद्ध आत्मा की पुकार सुनाई पड़ती है।

आत्मा का दूसरा मुख्य धर्म यह है कि वह प्राणि-वर्ग में बधुत्व-भावना, सत्य-अहिसा की भावना जगाती है। वही प्रेरित करती है कि सब एकही वृक्ष के फल हैं। एकात्मता वही जगाती है। 'वसुधैव कुटु-म्बकम्' तथा 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना वही पैदा करती है। इस मर्म को समझकर लोग पराये को भी अपना बना लेते है, हिंसक पशुओं तक को वश मे कर लेते हैं। जो इस मर्म को नही पहचानते, वे मिथ्या व्यवहार और क्रूरता से कुटुम्बियो तक को पराया बना लेते हैं।

आचरण-शुद्धता से आत्मा पुष्ट होती है

आत्मा की तीसरी विशेषता यह है कि वह ब्रह्मचर्य, शारीरिक शुद्धता, सद्विचार से निश्चय ही अधिक कान्तिमयी होती है। बच्चो में जो स्वाभाविक सरलता, शुद्धता, निष्कपटता मिलती है, उसका रहस्य यह है कि उस अवस्था तक उनका आचरण शुद्ध रहता है, आत्मा जग-मगाती है और मन-बुद्धि इतने बलवान नही रहते कि वे उसकी स्वाभा-विक आभा को रोककर खडे हो सकें। बालको के भोलेपन में उनको शुद्ध आत्मा प्रतिबिम्बित होती है।

आत्मा के सम्बन्ध में यही कुछ मुख्य बाते है। उनमें महाशक्ति है, इसमें सन्देह नहीं परन्तु वह लारी की तरह वरदानों की धूलि उड़ाती हुई नही चलती। वह मागने से ही वरदान देती है और मागनेवाली

भी जब उसकी आत्मजा (कन्या) बुद्धि हो। रत्न जिस प्रकार पहाडो पर नही, बल्कि समुद्र के अन्तराल मे मिलता है, उसी प्रकार जीवन का रत्न अन्तस्तल मे मिलता है।

सारांश

१. मनुष्य भ्रमवश अपने को जितना साधारण समझता है, वह उतना साधारण नही होता। असख्य अलौकिक शक्तियां उसको प्रत्येक क्षण घेरे रहती है। उन शक्तियो को सयोजित करके मनुष्य महाशक्तिशाली बन सकता है, यह अनेक महापुरुषो के अलौकिक चरित्रों से प्रमाणित होता है। अंग्रेजी में एक बहुप्रसिद्ध लोकोक्ति है, जिसका अर्थ यह है कि मनुष्य अपने अनुमान से अधिक शक्तिसम्पन्न होता है।[1] मानस-बल की असीमता इसकी सत्यता को सार्थक करती है।

२. जहा इतनी शक्तियों का मेला लगा होता है, वहां यदि ठीक शासन-व्यवस्था न हो, एकता और क्रमबद्धता न हो तो 'हिन्दू-मुसलमान दगा' हो ही सकता है। उसीके लिए आत्म-सयम की आवश्यकता होती है। यह तभी सभव है जब बुद्धि आत्मा के प्रकाश मे विवेक करे, उपाय या चतुराई से कार्य-सचालन करे। आत्मायुक्त बुद्धि-बल को दैव-बल कहते है और सफलता तभी मिल सकती है जबकि दैव-बल और पुरुषकार (पुरुषार्थ) साथ-साथ रहते है। पुरुषार्थ के न होने से दैव-बल व्यर्थ जाता है और बेकारी से मन भयाक्रान्त हो जाता है। उसी तरह दैव-बल के बिना पुरुषार्थ निष्फल होता है।

३ बुद्धि-प्रधान प्राणी होने के कारण मस्तिष्क का विकास करना मनुष्य का पहला कर्तव्य है। वह विकास ज्ञानोपार्जन से होता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि ज्ञान की कोई सीमा और आयु नहीं होती।

---

१ Man is stronger than he knows.

किसीकी आयु से उसकी मानसिक वृद्धता की नाप नहीं होती। कभी-कभी शरीर से मनुष्य तीस-चालीस वर्ष का हो जाता है किन्तु उसका मस्तिष्क उसी अवस्था मे रहता है, जैसा वह दस-बारह वर्ष की आयु में रहा होगा। उसको अपरिपक्वमस्तिष्क[1] कहते है। प्रायः थोड़ी आयु मे ही कुछ लोगों का मस्तिष्क शरीर की आयु के अनुपात से अधिक बढ जाता है। मस्तिष्क के घटने-बढ़ने से लोग वैसा ही आचरण करते है। खैर, ये तो प्राकृतिक विषमताए है। यहां हमारा कहने का अभिप्राय यह है कि अल्पायु मे भी मनुष्य ज्ञानी हो सकता है, जैसाकि राम के अनुसार भरत थे : 'ज्ञानवृद्धवयो बाल.।' कालिदास ने भी लिखा है कि तेजस्वियों की आयु नही देखी जाती : 'तेजसां हि न वयःसमीक्ष्यते' (रघुवश)।

बौद्ध ग्रन्थो में इस सम्बन्ध में एक छोटी-सी कथा है : जीवक नाम का एक दरिद्र बालक था, जिसको धनाभाव के कारण बचपन मे बड़े कष्ट भोगने पड़े थे। एक बार बीमार पड़ने पर वह पैसे की कमी से अपनी चिकित्सा भी न करा सका। उसने सोचा, ऐसे ही निर्धन कष्टभोगी लाखो होगे। अतएव लोगो को मुक्त करने का सकल्प करके उसने तक्षशिला मे जाकर चार वर्ष तक चिकित्साशास्त्र का अध्ययन किया और वहा से उत्तीर्ण होकर वह लोक-यात्रा को चला। अयोध्या में उसको एक विधवा मिली, जिसको वर्षो से भयकर शिरो-रोग था। जीवक जब उसकी चिकित्सा करने चला, तो बुढ़िया ने कहा कि तुम अभी बालक हो, क्या करोगे ; बड़े-बड़े वृद्ध और अनुभवी वैद्य भी मेरे रोग का इलाज नही कर सके है। इसपर युवक ने उत्तर दिया कि 'विज्ञान बालक भी नहीं और न वृद्ध ही है।' उसने उसके

१. Undeveloped mind.

रोग पर विजय प्राप्त की। एक बार जब बुद्ध बीमार पड़े और अन्य चिकित्सक कोई उपचार न कर सके, तो उनके सर्वप्रिय शिष्य आनन्द ने इस नवयुवक की प्रसिद्धि सुनकर इनको बुलाया। निर्धनपुत्र जीवक ने भव-व्याधिहर्ता के व्याधि-हर्ता होने का गौरव प्राप्त किया! इस कथा से और अपने ही समय के सैकड़ों उदाहरणों से जाना जा सकता है कि ज्ञान की कोई आयु नहीं है। संकल्प के साथ अभ्यास करने से थोड़े समय में भी मस्तिष्क को प्रखर एवं ज्ञान-वृद्ध बनाया जा सकता है।

करत-करत अभ्यास के जड़मत होत सुजान

सबका सार यह है—गागर में सागर की तरह मस्तिष्क एक छोटी-सी खोपड़ी में भरा हुआ ब्रह्माण्ड है। एक प्रकार से हमारे शरीर-शैल पर महावरदानी शिव का मन्दिर जन्म से ही बना रहता है। वरदान के लिए केवल साधन की आवश्यकता होती है।

३. स्वास्थ्य, व्यायाम, विश्राम

स्वास्थ्य

अन्न ही प्रजापति है

शास्त्रो ने अन्न अर्थात् आहार को ही विधाता कहा है। 'अन्न वै प्रजापति.' (प्रश्नोपनिषद्)। अन्न से ही रस बनता है, रस से रक्त, रक्त से वीर्य और वीर्य से जीवन। इस प्रकार आहार से ही शरीर का धारण, पोषण और नवनिर्माण होता है। चरक ने भी लिखा है कि देह अन्न से ही बनती है: 'देहो ह्याहारसभव।' यह तो एक साधारण समझ की बात है कि शरीर की उत्पत्ति, स्थिति और वृद्धि मनुष्य के भोजन पर अवलम्बित रहती है। शरीर के जीवन और स्वास्थ्य का सर्वप्रमुख साधन आहार ही होता है। स्थूल शरीर को दार्शनिक भाषा में अन्नमय कोष कहते ही है। कोई इस तथ्य को अस्वीकार न करेगा कि शरीर में जो बल, तेज और वर्ण का विकास होता है, उसका उत्पादक आहार ही होता है। आहार ही आरोग्य और आयुर्बल देता है, जिसको स्वास्थ्य कहते है। वैद्यक के मत से अन्न तत्काल चैतन्य देनेवाला, इन्द्रियो का पोषक, बुद्धि, स्मृति एवं ओज-तेजवर्द्धक होता है।

आहार के महत्त्व को मानकर हमे सक्षेप में इस बात पर विचार करना चाहिए कि किस प्रकार के आहार से शारीरिक स्वास्थ्य का विकास होता है। यह सर्वज्ञात है कि भोजन का उद्देश्य पेट भरना ही नहीं, मुख्यत: शरीर का पोषण करना है। पेट भरने से ही आहार का प्रयोजन सफल नही होता है। वही भोजन स्वास्थ्यवर्द्धक होता है, जो

शरीर के अनुकूल होता है। प्रतिकूल होने पर वह प्रजापति नहीं बल्कि शरीर के लिए प्राणपति (यमराज) अर्थात् भारस्वरूप एवं नाशक होता है। कौन-सा आहार शरीर के अनुकूल पड़ता है, इसको समझने के लिए हमे सर्वप्रथम शरीर की रचना-सम्बन्धी निम्नलिखित बातों को ध्यानपूर्वक समझ लेना चाहिए।

१ एक-एक ईट से बने हुए मकान की तरह शरीर असंख्य सूक्ष्म परमाणुओं[1] से निर्मित होता है। ये भिन्न-भिन्न आकार-प्रकार के होते है और भिन्न-भिन्न समूहो में सगठित होकर धातु[2] के नाम से पुकारे जाते है। भिन्न-भिन्न जाति की इन्ही धातुओं से मांस, रक्त, अस्थि और नाड़ियों आदि का निर्माण और सचालन होता है।

२. धातुओसहित सम्पूर्ण शरीर का सगठन पांच मूल तत्त्वों से होता है अर्थात् पाच मुख्य तत्त्व है, जिनके आधार पर शरीर की रचना होती है। वही परमाणुओ या धातुओ अथवा उनके द्वारा सयोजित शरीर के मूलाधार माने जाते है। आयुर्वेद के मत से ये पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु है। आधुनिक रसायनशास्त्रियों की वैज्ञानिक भाषा मे वे पांच मूल पदार्थ ये है (क) प्रोटीन अर्थात् मांसजातीय (पौष्टिक) पदार्थ, (ख) चरबी, (ग) खनिज या पार्थिव पदार्थ, (घ) कार्बोहाइड्रेट अर्थात् शर्कराजातीय पदार्थ, (ङ) जल। इन्हीके अन्तर्गत सम्पूर्ण शरीर मे कुल तेईस तत्त्व मिलते है, जिनमें से ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, कार्बन, फासफोरस, चूना, गंधक, क्लोरीन, सोडियम, लोहा और पोटेशियम मुख्य है। ऑक्सीजन के अतिरिक्त अन्य सभी यौगिक[3] रूप मे मिलते है और तत्त्वों

---

१ Cells

२. Tissues

३. Compounds

उक्त पांच श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। वैज्ञानिक परीक्षा से ज्ञात होता है कि शरीर में जल का अंश सत्तावन प्रतिशत, खनिज पदार्थों का अश वीस प्रतिशत, चरवी, प्रोटीन और कार्वोहाइड्रेट का अश तेईस प्रतिशत होता है। इसका अर्थ यह है जब ये मूल तत्त्व इन्ही परिमाणो मे शरीर में रहते हैं तभी धातुए सक्रिय होती है और शरीर अपनी प्राकृतिक अवस्था में अर्थात् स्वस्थ रहता है। आयुर्वेदोक्त पच महातत्त्वो का सम्मिश्रण भी जव उनकी उचित मात्रा में रहता है, तभी शारीरिक क्रियाए ठीक चलती हैं। दोनों में से जिस मत को भी मानिए, इतना निश्चित है कि शरीर पचतत्त्वात्मक है। इस विषय को सामयिक दृष्टि से समझाने के लिए हम इस स्थान पर आधुनिक मत के अनुसार विचार करेंगे।

३. ये रासायनिक द्रव्य सदैव उपर्युक्त परिमाणो मे नही रहते क्योकि शारीरिक क्रियाओ से प्रत्येक क्षण लाखों परमाणु नष्ट होते रहते हैं। रक्त ही के स्वास्थ्यधारक लाल परमाणु प्रतिदिन १०,००,००,००,००,००० की सख्या मे नष्ट होते है। शरीर स्वतः इस क्षति की पूर्ति नही कर सकता, और जव नही कर सकता तो धातुओं का स्वय परिमाण मे रहना सभव नही है। इसके लिए यह आवश्यक है कि बाहर से कुछ ऐसे पदार्थ लिए जाए, जो नष्ट हुए परमाणुओं के स्थान में नये परमाणुओं का उत्पादन कर सके और इस प्रकार धातुओं को संतुलित रखकर शारीरिक क्रिया को स्थिर एव संचालित रखे। ये पदार्थ आहार के रूप मे ही लिए जा सकते है।

ऊपर के विवरण से एक बात स्पष्ट होती है; वह यह कि आहार का सगठन वैसा ही होना चाहिए जैसाकि स्वय शरीर का सगठन है। दूसरे शब्दों मे—भक्ष्य पदार्थों के चुनाव में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उनसे शरीर के मूल तत्त्वों के लिए उचित मात्रा में

आवश्यक सार-सामग्री मिलती रहे। पचतत्त्वात्मक शरीर के लिए पंच-तत्त्वात्मक आहार ही उपयुक्त हो सकता है। इनकी प्रचुरता अथवा न्यूनता से धातुओ का संगठन नष्ट हो जाता है। शरीर मे वे क्या कार्य करते हैं और किन पदार्थो से उपलब्ध होते है, इनपर भी हम सक्षेप मे विचार करेगे।

प्रोटीन

प्रोटीन शरीर के परमाणुओ के जीवन का मुख्य तत्त्व होता है। धातु-वृद्धि और धातु की स्वाभाविक क्षति की पूर्ति इसीसे होती है। प्रोटीन के अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ से धातु-तन्तुओं का उत्पादन नही हो सकता। यह नाइट्रोजन-प्रधान द्रव्य—मास, दाल, अंडा और फल तथा वनस्पतियो के यौगिक पदार्थों से पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है। यदि ये पदार्थ आवश्यकता से अधिक मात्रा मे लिए जाते है, तो सार रूप मे जो अधिक प्रोटीन निकलता है, वह चरवी के रूप मे शरीर में संचित हो जाता है।

चरवी

चरवी के रूप मे शरीर के लिए स्थायी शक्ति अधिक मात्रा में सचित होती है, इससे उष्णता और शक्ति उत्पन्न होती है। जीवो की चरवी, वनस्पतियो के तेल, मक्खन, घी और पिस्ता, बादाम आदि मेवों की गिरी से यह प्रचुर मात्रा मे मिलती है। चरवी की शक्ति कार्बोहाइड्रेट की शक्ति से डेढ़ गुना अधिक होती है।

खनिज द्रव्य

खनिज द्रव्यों से धातु-निर्माण मे सहायता मिलती है। हड्डिया इन्हीसे बनती है। इनका प्रभाव शारीरिक शक्ति पर कम या बिल्कुल नही पड़ता किन्तु शरीर के पोषण, पाचन-क्रिया और धारक धातुओं पर इनका विशेष प्रभाव रहता है। हड्डी मे ६ भाग खनिज द्रव्यों का

ही रहता है। रक्त के लाल कणों मे, दांत, केश, पाचन-रस और मस्तिष्क मे खनिज द्रव्य प्रचुर मात्रा मे पाए जाते है और उक्त अंगों का पोषण इनसे विशेष रूप से होता है। दूध, अंडा, हरे साग और अनाज आदि द्वारा ये पर्याप्त मात्रा मे सुलभ होते है।

कार्बोहाइड्रेट

शारीरिक शक्ति, स्फूर्ति और उष्णता का उत्पादक और सामर्थ्य-दाता द्रव्य कार्बोहाइड्रेट ही होता है। शारीरिक परिश्रम की क्षमता इसीसे प्राप्त होती है। उचित मात्रा मे रहने पर यह शरीर की क्रियात्मक शक्ति को चैतन्य रखता है; आवश्यकता से अधिक होने पर चरबी के रूप में संचित हो जाता है। चावल मे कार्बोहाइड्रेट प्रचुर मात्रा में होता है। फल, शहद, गुड़, शक्कर, गेहूं, आलू आदि का मुख्य पोषक पदार्थ कार्बोहाइड्रेट ही है। यह स्मरण रखना चाहिए कि वन-स्पतियो द्वारा ही इस महातत्त्व की प्राप्ति होती है। मास आहार से प्रोटीन और चरबी के तत्त्व अवश्य अधिक मिलते है, परन्तु कार्बोहाइड्रेट अन्नाहार और फलाहार से ही मिलता है।

जल

जल शरीर का एक मुख्य तत्त्व है। सारे तत्त्व उसीकी सहायता से शरीर में प्रवाहित होते है और उनका साम्यीकरण भी उसीके आधार पर होता है। आहार को शरीर मे ग्रहण करने और निस्सार पदार्थों को शरीर से बाहर निकालने मे वही सहायक होता है। उससे शरीर मे कोई शक्ति नही उत्पन्न होती, परन्तु उसके बिना परमाणु न तो जी सकते है और न शरीर मे फैलकर अपना कार्य ही कर सकते है।

भोजन के रूप मे जो पदार्थ पेट में जाते है, वे पाचन-रस के संयोग से पाक-स्थान मे पचते है। पाचन-यन्त्र स्वाभाविक रीति से आहार-

परिवर्तन करते हैं। वे भक्षित पदार्थों मे से उनके प्रोटीन, मेद, खनिज, जल और पिष्टमय (कार्वोहाइड्रेट) अशों को साररूप में ग्रहण करके रस-रक्तादि धातुओ में परिवर्तित करते है। उनके द्वारा नष्ट हुई धातुए पुन शरीर को प्राप्त होती हैं और शरीर की स्थायी शक्ति में क्षति नही होने पाती। आहार-परिवर्तन से ही शरीर की स्वाभाविक उष्णता उत्पन्न होती है। भोजन के आवश्यक तत्त्वो को अर्थात् आहार-सार को ग्रहण करने के अतिरिक्त भीतरी यत्र एक दूसरा कार्य भी करते है। वे आहार-मल को अलग करते है। शरीर के अनुपयुक्त पदार्थो के जो अनावश्यक अश होते है और जो आहार-परिवर्तन की प्रक्रिया में भीतर ही भीतर उत्पन्न होते है, उनको वे मल, मूत्र और प्रश्वास से वाहर निकालते है। आहार-परिवर्तन के समय आहार के रचनात्मक और विनाशात्मक कार्य साथ ही साथ होते है। इसको जान लेना इसलिए आवश्यक है कि जव शरीर-यन्त्रों को सारयुक्त पदार्थ पर्याप्त मात्रा मे मिलते है तो उनकी शक्ति का अपव्यय नही होता। वे अधिक से अधिक आवश्यक तत्त्व उनमे से निकाल लेते है। जव निस्सार पदार्थ मिलते है तो उनका परिश्रम त्याज्य पदार्थों को अलग करने में ही व्यय होता है।

सामने के पृष्ठ पर एक तालिका दी है, जिससे कुछ आवश्यक खाद्यपदार्थों के आवश्यक-अनावश्यक अंशों की साधारण जानकारी प्राप्त होगी।

इस प्रसग में अन्य जाति के पदार्थों का उल्लेख कर देना आवश्यक है। आधुनिक वैज्ञानिको ने यह सिद्ध किया है कि यद्यपि ये पाचों तत्त्व शरीर के लिए परमावश्यक है, फिर भी इनके द्वारा सम्पूर्ण स्वास्थ्य की रक्षा और वृद्धि नही होती। ये पञ्चतत्त्व शरीर को भले ही स्थिर रख ले किन्तु वे रोग के आक्रमण से उसको नही बचा सकते।

पदार्थ	निस्सार अंश%	जल अंश%	प्रोटीन%	चरबी%	शर्करा अंश%	खनिज अंश%
अण्डा	११२	६५ ५	१३ १	९ ३	—	०·९
मक्खन	—	११	१	८५	—	३
चावल	—	१२ ३	८	०·३	७९	०·४
शक्कर	—	—	—	—	१००	—
टोमैटो	—	९४ ३	० ९	० ४	३·९	०·५
सेब	२५	६३ ३	० ३	० ३	१०·८	०·३
केला	३५	४८ ९	० ८	० ४	१४·३	०·६
अंगूर	२५	५८ ०	१	१ २	१४·४	०·४
नारंगी	२७ ०	६३ ४	० ६	० १	८·५	० ४
बादाम	४५ ०	२ ७	११ ५	३० २	९·५	१·१
अखरोट	५८ १	१	६ ९	२६ ६	६·८	०·६
दूध	—	८७	३·३	४	५	०·७
गोभी	१५	७७·७	१·४	० २	४·८	०·९

शारीरिक विकास और स्वास्थ्य-रक्षा के लिए एक अन्य द्रव्य की आवश्यकता भी होती है, जिसको विलायती वैज्ञानिक भाषा मे 'विटैमिन' और अनुवादित भाषा में जीव-द्रव्य कहते है।

विटैमिन

जीव-द्रव्य के सम्बन्ध में इतना जान लेना आवश्यक है कि वे भोजन के सजीव अंश होते है और पचतत्त्वो को अधिक क्रियात्मक बनाते है। वे मुख्यतः वनस्पतियो से उपलब्ध होते हैं। विटैमिनो की पांच मुख्य जातिया अभी तक निर्धारित हो पाई है। वे शरीर की जीवनी शक्ति के लिए नितान्त उपयोगी हैं, इसलिए सक्षेप में उनका परिचय दिया जाता है।

विटैमिन ए—शारीरिक वृद्धि और संक्रामक रोगों से बचाव के लिए शरीर मे इस जीव-द्रव्य का होना आवश्यक है। इसकी कमी से शरीर रोगाक्रान्त, दुर्बल एव क्षीण होता है और फेफडे, पाचन-यन्त्र आदि निर्बल होते हैं। बच्चों की वृद्धि इसके अभाव मे रुक जाती है। रात्रि-अंधता (रतौंधी) इसीकी कमी से होती है। विटैमिन 'ए' हरे शाकों मे प्रचुर मात्रा मे मिलता है। दूध, दही, मक्खन के अतिरिक्त अंडों, जानवरो के यकृत, मछली के तेल (कॉड लिवर ऑयल) मे भी यह विशेष रूप से रहता है।

विटैमिन बी—विटैमिन 'बी' के कई उपभेद हैं। सबकी उपयोगिता में अन्तर है। यह जीव-द्रव्य त्वचा और नाडी-संस्थान के पोषण के लिए आवश्यक होता है। इनकी प्राप्ति उड़द, मटर, गेहूं, चावल के भीतरी अंग, मूंगफली और अण्डे आदि से होती है। गेहू, जौ के चोकर और अनाजों के ऊपरी पर्त में यह अधिक मिलता है।

विटैमिन सी—शरीर की जीवन-शक्ति बढाने के लिए, दांतों के पोषण और रक्षण तथा शरीर की वर्ण-वृद्धि के लिए विटैमिन

'सी' आवश्यक होता है। दूध, आम, नींबू, संतरा, हरे शाक, गोभी, आलू, गाजर, प्याज, टोमैटो, शलजम और अकुरित अनाज इसके उत्पादक होते हैं।

विटैमिन डी—विटैमिन 'डी' से अस्थियो का पोषण होता है और रक्त मे गाढापन आता है। दातो मे इसके कारण शक्ति आती है। इसके अभाव मे बच्चो को सूखा रोग होता है, क्योकि उनकी हड्डियां दृढ़ नहीं होती। यह द्रव्य मुख्यत सूर्य की किरणो से मिलता है। गाय की अपेक्षा भैंस के दूध मे इस जीव-द्रव्य की मात्रा अधिक रहती है। मक्खन, अडा और मछली के तेल द्वारा भी यह प्राप्त होता है।

विटैमिन ई—यह द्रव्य पुरुपार्थ-शक्ति का धारक माना जाता है। इसके सेवन से जनशक्ति प्रवल होती है। जिन माता-पिताओ के शरीर मे यह जीव-द्रव्य नही होता, उनकी सन्तानोत्पादक शक्ति क्षीण हो जाती है और उनके बच्चे या तो होते ही नही या बहुत दुर्बल होते है। यह दूध, मक्खन, बीजो या उनके तेल, गेहूं तथा हरे शाकों मे पाया जाता है। जीवनीय द्रव्यों के सम्बन्ध मे जो सबसे आवश्यक बात ध्यान मे रखनी चाहिए, वह यह कि वे प्राय: कच्चे पदार्थों में और ताज़े फलो और हरी तरकारियो ही मे सुरक्षित रहते है। उबालने अथवा बासी हो जाने से उनकी शक्ति कम हो जाती है या बिलकुल नष्ट हो जाती है। फलों और शाकों से जो स्वास्थ्य-सुधार होता है, उसका रहस्य यही है। फल, अनाज और शाक आदि अपनी जीवनीय शक्ति सूर्य-प्रकाश से पाते है। इसलिए ऐसे पदार्थों मे जो सूर्य की किरणो के सम्पर्क में रहते है, कन्दो की अपेक्षा अधिक

विटैमिन होते है । ये तत्त्व अनाजों के ऊपरी पत्तों में विशेष रूप मे मिलते है । इसलिए पालिश किए हुए चावल निस्सार होते है । अनाजों के सम्बन्ध मे यह स्मरण रखना चाहिए कि उनके अंकुरित होने पर उनके पौष्टिक तत्त्वो के अतिरिक्त उनमें विटैमिन बहुत अधिक मात्रा में उत्पन्न हो जाते है ।

विटैमिनो के आविष्कार के बाद से शरीर-शास्त्र और कम से कम रोग-विज्ञान के सम्बन्ध मे वैज्ञानिकों का दृष्टिकोण ही बदल गया है । अभी तक लोग एक-एक पदार्थ को कीटाणुओ से मुक्त करने के लिए उन्हे नाना प्रकार के साधनो से उबालकर, रासायनिक द्रव्यो से धोकर—स्वच्छ बनाकर खाने के पक्षपाती थे । वे यह समझते थे कि शरीर को रोग से बचाने का यही उपाय है । परन्तु अब वैज्ञानिको ने सिद्ध किया है कि इन अप्राकृतिक उपायो से पदार्थों के प्राकृतिक तत्त्व ही नष्ट हो जाते है । और यही कारण है कि जो बच्चे गरीबी के कारण प्राकृतिक आहार लेते है, वे उन बच्चो से अधिक स्वस्थ एव दीर्घजीवी होते है जो बडे यत्न से शोधित आहार पर पाले जाते है । पहले की अपेक्षा अब लोगों को पाचन-विकार अधिक होते है, दांतो की शिकायत अधिक होती है और गठिया आदि रोग भी बहुत होते है, यद्यपि अब खान-पान मे पहले की अपेक्षा लोग अपने को अधिक सभ्य मानते है । इसका कारण यह है कि अब प्राकृतिक आहार को प्राकृतिक ढग से नही लिया जाता । और हम यह भी देखते है कि पुरानी कोष्ठबद्धता मे जब हरे शाक और फल आदि प्राकृतिक ढग से लिए जाते है, तो वे रोग निर्मूल भी हो जाते हैं क्योकि तब विटैमिन जीवित रूप मे शरीर मे पहुचते है । इन बातो पर विचार करके हम एक निर्णय पर पहुचते है वह यह है कि दुनिया कम से कम आहार के विषय मे घूम-फिरकर फिर वही पहुच रही है जहां प्राचीन आयुर्वेदज्ञ लोग पहुच चुके है । प्राचीन

शास्त्रज्ञों ने धारोष्ण दूध पीने का जो विधान बताया था उसको अब तक लोग अस्वास्थ्यकर मानते थे और तीन बार उसको उबालने का विधान बताते थे, जिससे कि उसके जन्तु मर जाए। अब विटैमिनशास्त्री लोग प्रमाणित करते है कि दूध को उबालने से उसका जीवन-तत्त्व ही नष्ट हो जाता है।

साराश यह है कि कल्पित जन्तुओं के भय से लोग खाद्य वस्तुओं के उस सार-अश को नष्ट कर देते है जो शरीर में रहने पर उनसे भी प्रबल जन्तुओ के आक्रमण से शरीर को बचा सकते है। एक प्रकार से वे उस बन्दर के जैसा आचरण करते हैं जिसने अपने मालिक की नाक पर बैठी हुई मक्खी को उड़ाने के लिए उसपर पत्थर पटक दिया था।

कैसा आहार लेना चाहिए

आहार के पौष्टिक तत्त्वो और जीवनीय द्रव्यों की उपयोगिता को ध्यान में रखकर यह कहना ही उचित होगा कि हमे ऐसे पदार्थो का सेवन करना चाहिए जो पौष्टिक एव सात्त्विक हों। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातो का ध्यान रखना चाहिए :

१. प्रकृति ने सब जीवो के लिए प्राकृतिक आहार बनाए है। अपने स्वभाव के अनुकूल आहार लेने से उस जीव के स्वाभाविक स्वास्थ्य का विकास होता है। मांसाहारी लोग जो भी कहे, किन्तु हमें यह मानना पडेगा कि कम से कम इस देश के स्वाभाविक आहार अन्न, दूध, फल और शाक ही हैं। मास मे पौष्टिक अश पर्याप्त मात्रा में होते है और उनसे पुष्टि के साथ उत्तेजना भी मिलती है, इसमें सन्देह नहीं, परन्तु उसमे जीवनीय शक्ति—आयुर्बल—बढाने की क्षमता नही होती। मनुष्य ही नही, बल्कि निरामिष पशु-पक्षी भी मासाहारी पशु-पक्षियों से अधिक दीर्घजीवी होते है। पशुओं मे हाथी और पक्षियो मे तोते सर्वाधिक दीर्घजीवी पाए जाते हैं और दोनों ही मासाहारी नही होते।

अन्य जीवों की अपेक्षा दोनों बुद्धिमान भी अधिक होते है। मनुष्यों में भी अन्नजीवी व्यक्ति बुद्धि-सामर्थ्य और शरीर-सम्बल मे मांसाहारियो से किसी प्रकार निर्बल नही होते, जैसाकि गांधीजी और बर्नार्ड शॉ के जीवन से प्रकट होता है। स्वच्छता की दृष्टि से भी निरामिष अधिक हितकर होता है।

२ ऐसा आहार लेना चाहिए जिसमें पौष्टिक तत्त्वो का सार पर्याप्त मात्रा में हो और जिसको पाचन-यंत्र सुगमता से ग्रहण कर सके। उदाहरण के लिए दूध को लीजिए। प्राचीन और आधुनिक दोनों मतों से दूध मनुष्य का सर्वोत्तम आहार माना जाता है। जीवनोपयोगी सभी पौष्टिक तत्त्व—प्रोटीन, चरबी, कार्बोहाइड्रेट (दुग्धशर्करा), जल, लोहा, गधक, फास्फोरस, चूना, पोटेशियम आदि खनिज पदार्थ तथा सभी आवश्यक विटेमिन इसमे मिल जाते है। इसलिए इसको पूर्णाहार माना जाता है। इन गुणो के अतिरिक्त दूध आसानी से पच जाता है। उसको पचाने में इन्द्रियो की शक्ति का अपव्यय नही करना पडता। इन सब गुणों के साथ ही दूध अतडियो के विष और कीड़ों का प्रबल नाशक भी होता है। सब दृष्टियों मे वह मनुष्य का स्वाभाविक आहार एवं जीवन-रक्षक होता है। पौष्टिक, जीवन-रक्षक और साथ ही सुपच होने के कारण वह अनुकूल पड़ता है। गत वर्षो से सोयाबीन की बडी चर्चा थी और वैज्ञानिक परीक्षा मे यह सिद्ध हुआ था कि उसमें दूध ही के समान गुण है, परन्तु अब पता चला है कि उसमे सर्वगुणसम्पन्नता होते हुए भी पाचन-यंत्र उसके सार को ग्रहण नही करता, क्योंकि वह उसके स्वभाव के अनुकूल नही पड़ता। इसलिए सोयाबीन की महिमा अब घट गई है। वास्तव में इन्द्रियों की ग्राहिका शक्ति के अनुसार ही पदार्थों के सार-अश उपलब्ध होते है। कैसा भी पौष्टिक आहार खाइए, यदि वह भीतर की प्रकृति के अनुकूल

न पड़ेगा, तो शरीर उसको स्वीकार न करेगा।

दूध के अतिरिक्त केले को लीजिए। विटैमिन 'बी', 'सी' के साथ-साथ इसमें चरबी, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, जल तथा लोहा, फासफोरस, चूना आदि खनिज पदार्थ मिलते हैं और वह जन्तु-नाशक भी होता है। इसको भी पूर्णाहार मानते है। आयुर्वेदाचार्य डॉक्टर भास्कर गोविन्द घाणेकर ने सुश्रुतसहिता की टीका मे प्रसगवश लिखा है कि 'तीन अच्छी तरह पके हुए केले और डेढ सेर दूध एक मनुष्य के लिए एक समय का उत्तम आहार होता है।' दूध के साथ केले के मिलने पर सभी विटैमिन उपलब्ध हो सकते है क्योंकि केले मे 'बी' और 'सी' विटैमिन तथा दूध में 'ए', 'डी' और 'ई' विशेष रूप से मिलते है।

३. पौष्टिक तत्त्वों और विटैमिनों के चक्कर मे विशेष रूप से न पड़कर मोटे तौर पर यह मान लेना चाहिए कि जिस स्थान पर, जिस ऋतु में जो स्वाभाविक खाद्यपदार्थ उत्पन्न होता है, वही वहा का, उस समय का और वहां के लोगों का सबसे अधिक पौष्टिक और जीवनीय द्रव्य-सयुक्त आहार होता है। यही प्रकृति की व्यवस्था है। उन आहारों को उचित मात्रा में सगठित करके और स्वाभाविक रूप से लेना चाहिए। स्वच्छता की दृष्टि से और स्वाद की दृष्टि से उनको पकाना चाहिए; पर इस बात का ध्यान रखकर कि उनके उपयोगी अश जलें नही या व्यर्थ न जाए। उदाहरण के लिए चावल को लीजिए। बहुत-से लोग चावल के माड़ को फेक देते है। उसके साथ चावल का सारा तत्त्व निकल जाता है। बहुत-से लोग पालिश किए चावल खाते है, जिनके ऊपर की पर्त छिली रहती है। उसी आवरण मे चावल के सारे पौष्टिक तत्त्व रहते है। उसके निकलने से वह निस्सार एव भारी और रोग पैदा करनेवाला हो जाता है। इसलिए आहार को यथासम्भव उसके प्राकृतिक रूप मे लेना चाहिए। साथ ही सामयिक शाक-भाजी

और फल अवश्य लेने चाहिए। उनको ठीक से पकाने और न पकाने से भी उनके गुणों मे भेद पड़ जाता है, इसका ध्यान रखना आवश्यक है। जब वे सुन्दर रीति से पके रहते है, तो स्वाद से खाने के साथ मुख का पाचन रस भी उनके साथ ठीक मात्रा में मिश्रित होता है और वे आसानी से पचते है।

४. व्यक्तिगत रुचि, अनुकूलता, आवश्यकता और पाचन-शक्ति के अनुसार ही आहार लेना चाहिए। सबके लिए एक-सा आहार अनुकूल नही पड सकता, क्योंकि सबकी प्रकृति और शारीरिक बनावट भिन्न होती है। अतएव रुचि को ध्यान मे रखकर ऐसा ही आहार ग्रहण करना चाहिए जो शरीर के अनुकूल पड़े और जिसको अतडिया बिना उछल-कूद के पचाकर उसके सार को आवश्यकतानुसार ले सकें। वह भोजन ऐसा हो और इतनी मात्रा में हो कि उसको हजम करने में शारीरिक शक्ति का अपव्यय न हो।

रुचि आदि के साथ शरीर की आवश्यकता का भी ध्यान रखना चाहिए। जिस समय शरीर को जैसे पौष्टिक तत्त्वों की माग हो, वैसा आहार लेना ठीक होता है। परिश्रमी को प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट की विशेष आवश्यकता पडती है। इसलिए ऐसे पदार्थ जिनमे ये तत्त्व मिल सके, लेना उसके लिए हितकर होगा। बैठकर मानसिक कार्य करनेवाले को उनकी अधिक मात्रा से हानि हो सकती है क्योंकि उनमे चरबी बढेगी। इसलिए अग्रेजी में एक कहावत है कि जो वस्तु एक व्यक्ति के लिए मास (अर्थात् विलायती अमृत) हो सकती है, वही दूसरे के लिए विष हो सकती है।[१]

५. बाजार-भाव के अनुसार किसी खाद्यपदार्थ की उत्तमता का

१. What is one man's meat is another man's poison

अनुमान न करना चाहिए। पोषक तत्त्वो के कारण वस्तुओं का मूल्य नही निर्धारित होता। वे कितनी कठिनाई या आसानी से मिलती है, उनकी खपत कैसी है और उनका स्वाद कैसा होता है, इन्हीके आधार पर बाजार की चीजो के दाम बधते हे। अतएव इस भ्रम में न पड़ना चाहिए कि कोई महगी वस्तु ही स्वास्थ्यकर होगी। साथ ही किसी स्वास्थ्यकर वस्तु को स्वास्थ्य से बढकर मूल्यवान न मानना चाहिए। जिस वस्तु से स्वास्थ्य को लाभ पहुचे, वह महगी होकर भी बाद मे सस्ती पडती है क्योकि ओपधियो का खर्च बचता है। सस्ती किन्तु अस्वास्थ्यकर वस्तु बाद मे महगी पडती है। उन पदार्थो को लेना चाहिए, जो स्वास्थ्यप्रद होने के साथ सस्ते हो। भरण की अपेक्षा पोपण अधिक आवश्यक है, इसको भूलना न चाहिए।

६. खाद्यपदार्थो के चुनाव मे इस बात का ध्यान विशेष रूप से रखना चाहिए कि उनके सेवन से किसी प्रकार का रक्त-विकार न हो। शरीर का सारा कार्य रक्त से ही चलता हे और रक्त आहार से बनता है। जब वह शुद्ध होकर शरीर मे ठीक-ठीक प्रवाहित होता है तभी स्वास्थ्य ठीक चलता है। उसके दूपित या शिथिल होने से शरीर निर्बल हो जाता है। उत्तेजक पदार्थ लेने से उसमे रूक्षता आ जाती है। रक्त का प्रवाह मन्द होने से शरीर ढीला पड़ जाता है। मस्तिष्क का रक्त-प्रवाह कम होने से चक्कर आता है और नेत्रो की ज्योति मन्द पड़ जाती है; अधिक होने से सिर दर्द और किसी स्थान पर अवरुद्ध होने से पक्षाघात हो जाता है।

रक्त-शुद्धि के साथ स्नायुमडल को भी ध्यान में रखना चाहिए, क्योंकि स्नायुमडल की शक्तता पर शरीर अवलम्बित रहता है। उत्तेजक आहार से वह बाद मे ढीला हो जाता है। मस्तिष्क सस्थान के रक्त मे यदि विटैमिनों के साथ फासफोरस और कैलसियम आदि का

उचित संगठन नहीं होता तो नाड़ियों में नाना प्रकार के विकार उत्पन्न होते हैं और स्नायु-दुर्बलता से शरीर बेकार-सा हो जाता है। इसलिए रक्त-वर्द्धक और रक्त-शोधक पदार्थों को ही पथ्य मानना चाहिए।

भोजन कैसे करना चाहिए

क्या खाना चाहिए, इसकी अपेक्षा कैसे खाना चाहिए, यह जानना अधिक आवश्यक है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए।

१ स्वाद के साथ भोजन ग्रहण करना चाहिए। स्वाद के साथ साधारण आहार लेने पर भी यह शरीर के लिए रसायन बन जाता है। उसके साथ शरीर के पाचन-रस स्वाभाविक रीति से मिलकर उसको पचाते हैं। बिना स्वाद का खाया हुआ उत्तम भोजन भी ठीक से नहीं पचता और शरीर के लिए भारस्वरूप या खाद बन जाता है, जिसमें व्याधियों के कीड़े या अंकुर ही उत्पन्न होते हैं। यह स्मरण रखना चाहिए कि स्वाभाविक स्वाद भूख से ही उत्पन्न होता है। औदरिक या घस्मर (जिनके मन में खाने के अतिरिक्त कोई अन्य विषय न हो) व्यक्ति के मन में भोजन के प्रति जो अनुराग उत्पन्न होता है वह स्वाद नहीं, लोभ का परिचायक होता है। राजा धृतराष्ट्र को दिया हुआ विदुर का यह उपदेश इस प्रसंग में उल्लेखनीय है :

सम्पन्नतरमेवान्नं दरिद्रा भुञ्जते सदा।
क्षुत्स्वादुतां जनयति सा चाढ्येषु सुदुर्लभा॥ (महाभारत)

हुआ अन्न शरीर में नहीं लगता। मन से खाने पर साधारण पदार्थ भी तृप्तिदायक होता है। चित्त प्रसन्न रहने से पाचन-ग्रथियों द्वारा नियमित रूप से पाचन-रस द्रवित होता है। चित्त की विकलता से भोजन मे अरुचि होती है; आहार बिना बुलाए हुए अतिथि की तरह पेट में पडा रहता है, कोई उसको पूछता नही।

चिता भय, मन की उद्विग्नता, ईर्ष्या, द्वेप और क्रोध आदि विकारों का तात्कालिक प्रभाव पाचन-क्रिया पर पड़ता है। चिन्ता में आहार निष्फल जाता है, इसको तो आप किसी विरही की दशा देखकर समझ सकते हैं। आप स्वय अनुभव करके देख सकते है कि किसी विषय पर देर तक चिन्ता करने से बार-बार मूत्र-विसर्जन करना पडता है। मधुमेह के प्रधान कारणों मे अधिक मानसिक परिश्रम और चिन्ता ही है। अधिक चिन्ता और भय से सिर के वाल २४ घण्टो मे सफेद होते सुने गए है। जव सम्पूर्ण शारीरिक स्वास्थ्य पर उसका इतना प्रभाव पड़ता है, तो आहार और पाचन-क्रिया पर क्यो न पड़ेगा? भय का प्रभाव तो और भी स्पष्ट होता है। आपने सुना होगा कि वहुत-से लोग भयग्रस्त होने पर मल-मूत्र त्याग देते है। भयाक्रान्त होने पर भीतर के यन्त्र अशक्त हो जाते हैं, इसलिए खाए हुए पदार्थ को रोकने की शक्ति उनमें नही रहती। पाठ याद न करने पर अथवा अध्यापक की क्रूरता के भय से विद्यार्थी प्राय. पेशाव करने के लिए छुट्टी मांगते है। यह उनका बहाना ही नही कहा जा सकता; वास्तव मे उन्हे पेशाब की हाजत होती है। क्रोध आदि से पाचन-क्रिया निश्चय ही बिगड़ जाती है क्योकि क्रोध से रक्त उत्तेजित होता है, उसका दवाव वढता है और वह पाचन-यन्त्र से हटकर मस्तिष्क मे सचित हो जाता है। इससे आहार का पाचन नही होता क्योकि इन्द्रिया निर्बल होती है और क्षुधा-शक्ति क्षीण हो जाती है। महर्पि सुश्रुत का यह वचन मानने योग्य है:

ईर्ष्याभयक्रोधपरिक्षतेन लुब्धेन रुग्दैन्यनिपीडितेन।
प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक् परिणाममेति ॥

(सुश्रुतसंहिता)

ईर्ष्या, भय, क्रोध, लोभ, चिन्ता, दैन्य तथा द्वेष से पीड़ित मनुष्यों द्वारा खाया हुआ भोजन ठीक से नही पचता। स्नानादि करके और हाथ-पैर धोकर भोजनगृह मे खाने का जो प्राचीन नियम है, उसका उद्देश्य बाह्य शुद्धता ही नही आन्तरिक शान्ति भी है। मनुष्य जब शान्तचित्त होकर ऐसे वातावरण मे बैठकर भोजन करता है जहा अन्य आकर्षण नही होते, तो चित्त भोजन में लगा रहता है। अकेले भोजन करने की अपेक्षा कुछ साथियो और सहवर्गियो के साथ बैठकर भोजन करने मे अधिक तृप्ति होती है, क्योंकि तब चित्त चिन्ताओ से मुक्त रहता है और लोग आमोद-प्रमोद के साथ खाते हैं। आन्तरिक तृप्ति एवं सन्तोष भोजन का विशेष प्रयोजन है। वह तृप्ति स्वादिष्ट भोजन से ही नहीं प्राप्त होती। भोजन कैसा ही मधुर हो, किन्तु यदि गृहिणी कलहकारिणी हो तो उसका ठीक स्वाद न मिलेगा। भोजन देनेवाली सुशील और मृदुभाषिणी हो तो रूखा-सूखा भोजन भी तृप्तिदायक होता है। मानसिक शान्ति-अशान्ति का ऐसा ही प्रभाव पड़ता है। कर्कशा-नाथ तो घर मे घुसते ही सशंकित रहता है कि पता नही आहार खाने को मिले या गालियां। वह भोजन को कम पचाता है और असन्तोष को अधिक। मृदुला पति को विश्वास रहता है कि जो भी उसको मिलता है या मिलेगा वह सर्वोत्तम होगा क्योंकि वह प्रेम से दिया जाएगा। प्रेम से बढ़कर पाचन-रस कोई नही होता। मनुष्य खाद्य-पदार्थों का ही नही, मान-प्रतिष्ठा का भी भूखा रहनेवाला जीव होता है। किसी कंजूस आदमी के यहां बिना आदर-सत्कार से अच्छा खाना भी मिल जाए तो उससे चित्त नही भरता। साधारण किन्तु उदार

हृदयवाले व्यक्ति का रूखा-सूखा भोजन भी अतिथि को बड़ा सुस्वादु लगता है। कृष्ण ने विदुर का साग बड़े स्वाद के साथ खाया था। मनुष्य का भोजन ऐसा होना चाहिए जिनसे उसका पेट नही, बल्कि चित्त भी भर सके।

आत्म-सतोष के लिए यह भी आवश्यक होता है कि अपने परिश्रम की कमाई का खाना खाया जाए। वह साधारण होकर भी बल और तेज की वृद्धि करता है। चोरी का धन पचता नही है, क्योंकि मानसिक ग्लानि उसको पचने के पहले ही गलाकर निस्सार कर देती है। लोभ से आत्म-सन्तोष नष्ट हो जाता है, इसलिए कभी तृप्ति नही होती और बिना तृप्ति का आहार व्यर्थ हो जाता है। इस सम्बन्ध मे एक बात और याद रखने योग्य है। वह यह है कि भोजन की स्वच्छता, उसके रंग, गध, रूप आदि का भी यथेष्ट प्रभाव चित्त-दशा पर पडता है। रुचि को जगाने के लिए आहार की इन विशेषताओ को ध्यान मे रखना चाहिए। गन्दगी आदि से मन भडक जाता है।

३. आहार-भक्षण करते समय उसको धीरे-धीरे चबाकर और अच्छी तरह मर्दित करके तब अतडियो को सौपना चाहिए। खाने मे शीघ्रता कभी हितकर नही होती। यथासम्भव सादा और मृदु आहार ही नियमित रूप से नियत समय पर खाना चाहिए। अधिक मिर्च-मसालो के उपयोग से जिह्वा को सुख अवश्य मिलता है, परन्तु अतडियों की दुर्दशा हो जाती है। उनसे रक्त की रूक्षता बढ़ती है, पाचन-रस का अपव्यय और पुरुपार्थ का नाश होता है। यह भी याद रखना चाहिए कि अधिक नमक वैज्ञानिक दृष्टि से पुरुपार्थ-नाशक होता है। मिर्च-मसालो और नमकीन वस्तुओ के विशेप उपयोग से जल अधिक पीना पड़ता है। भोजन के समय और उसके उपरान्त अधिक जल पीने से पाचन-सामग्री पतली हो जाती है और पाचन-रस स्वय इतना पतला

हो जाता है कि भोजन ठीक से नहीं पचता। इसलिए थोड़ा-थोड़ा करके ही पानी पीना चाहिए और ऐसा आहार लेना चाहिए जो अधिक पानी न मांगे: 'मुहुर्मुहुर्वारि पिबेदभूरि' (भावप्रकाश)। जल के विषय में हम विशेष रूप से आगे लिखेंगे।

४. भोजन के बाद शारीरिक और मानसिक परिश्रम से बचना चाहिए। जब खाना पचने लगता है तो शरीर का रक्त-प्रसार मुख्यतः अंतड़ियों पर होता है। अन्य अंगों में, मुख्यतः मस्तिष्क में रक्त की कमी हो जाती है जिसके कारण सुस्ती, ठंडक और ऊंघाई आदि का अनुभव होता है। उस दशा में शारीरिक या मानसिक परिश्रम करने से रक्त पाचन-यंत्रों को सहयोग देना छोड़कर अन्य पेशियों की ओर भागता है, जिसके कारण ठीक पाचन नहीं हो पाता। इसलिए सुश्रुत ने कहा है कि खाने के बाद जब तक अन्न का भारीपन रहे, तब तक राजा की तरह (निश्चिन्त होकर) विश्राम करे, उसके बाद सौ पद चलकर बाईं करवट लेटना चाहिए:

> भुक्त्वा राजवदासीत यावदन्नक्लमो गतः।
> ततः पादशतं गत्वा वामपार्श्वेन संविशेत्॥ (सुश्रुतसंहिता)

आजकल स्वास्थ्य-नाश का एक मुख्य कारण यह है कि लोग खाने के बाद प्रायः काम में लग जाते हैं। बाबू, विद्यार्थी, व्यापारी आदि खाने के बाद दौड़ते हैं और फिर मानसिक परिश्रम करते हैं। इनमें भोजन ठीक तरह से नहीं पचता और परिणाम होता है अजीर्णता, कोष्ठबद्धता तथा शक्ति-क्षय। संस्कृत की प्राचीन लोकोक्ति है कि जो भोजन के बाद दौड़ता है उसके पीछे मृत्यु दौड़ती है: 'मृत्युर्धावति धावतः।'

५. भोजन के बाद शरीर में कफ बढ़ता है। इसीलिए सुश्रुत ने लिखा है कि उसको दबाने के लिए बुद्धिमान को उचित है कि वह पान,

धूम्रपान, कपूर, लौंग या कषाय, कटु, तिक्त पदार्थों का सेवन करे। सुश्रुत ने यह भी लिखा है कि भोजन के बाद चित्तवृत्ति को बिगाड़ने-वाले शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श से बचना चाहिए।

जल का महत्त्व

जल के सम्बन्ध मे कुछ विशेष बातो का उल्लेख कर देना आवश्यक है; क्योंकि वह जीवन का एक मुख्य आधार है। उसका संस्कृत नाम भी जीवन तथा जीविका है। अन्न-जल ही शरीर को जीवित रखते हैं। आदिकाल से ही इसके महत्त्व को स्वीकार किया गया है। वेदो ने भी जल की स्तुति की है :

> आपः इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः।
> आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वतु भेषजम्॥ (अथर्ववेद)

जल ही ओषधि है; वही रोग-नाश का कारण है; वही सकल व्याधियों की ओषधि है। जल ! तुम लोगों की ओषधि बनो।

जल मे स्वयं कोई पौष्टिक तत्त्व नही होता, फिर भी शरीर के पौष्टिक तत्त्वो का धारक और प्रवाहक वही होता है। उसके अशुद्ध होने से अन्य तत्त्व अशुद्ध हो जाते है। उसके अभाव से शरीर मे शुष्कता एवं विकलता उत्पन्न होती है, क्योकि रासायनिक द्रव्य शुष्क होने लगते है और रक्त की गति शिथिल पड जाती है। जल का प्रभाव मस्तिष्क की क्रिया पर विशेष रूप से पड़ता है। इसका एक प्रमाण तो यही है कि गर्मी के दिनों मे पानी न मिलने से बेचैनी होती है और बुद्धि ठिकाने नहीं रहती। परिश्रम के बाद पसीने से जब जल का अंश शरीर से बाहर आ जाता है तो थकावट का अनुभव होता है। पानी पीने से चित्त और शरीर दोनो स्वस्थ हो जाते है।

एक प्रसिद्ध रूसी डॉक्टर (डॉ० ई० पॉदोलस्की) ने इस सम्बन्ध में कुछ उपयोगी बाते लिखी है। उसने लिखा है कि सुचारु रूप से मानसिक

क्रिया के सञ्चालन के लिए उचित मात्रा मे पानी की आवश्यकता पड़ती है। बहुत कम या आवश्यकता से अधिक होने पर वह मस्तिष्क के लिए अत्यन्त हानिकारक होता है। इनसे मानसिक क्रिया-शक्ति का ह्रास होता है। जब जल का अश विशेष रूप मे अधिक या कम हो जाता है तो साथ चित्त-भ्रान्ति, तन्द्रा और सज्ञा-नाश होता है। जल आवश्यक तत्त्वो को सम्मिश्रित और सयुक्त रखता है। शरीर का जल-अश कम या अधिक होने से मनुष्य की विचारशक्ति अस्त-व्यस्त हो जाती है।[१]

जल को हमेशा शुद्ध रूप मे और प्यास के अनुसार लेना चाहिए। प्यास से ही ज्ञात होता है कि शरीर और मस्तिष्क को कब उसकी आवश्यकता है। कभी-कभी कृत्रिम तृषा भी लगती है; जैसे उत्तेजक और चटपटी वस्तुए खाने पर। मास खाने पर भी अधिक पानी की आवश्यकता पडती है क्योकि उससे उत्पन्न 'यूरिक ऐसिड' नामक दूषित पदार्थ को बाहर निकालने के लिए अधिक जल की आवश्यकता होती है। ऐसी अवस्था मे आवश्यकता से अधिक जल पीना पडता है, अन्यथा रक्त-विकार उत्पन्न होता है। अधिक जल का कुपरिणाम हम ऊपर लिख चुके है। अतएव सर्वोत्तम यह है कि ऐसा आहार खाया ही न जाए जिससे अस्वाभाविक प्यास लगे।

प्रातःकाल दातुन आदि करके पेट-भर पानी पीना अमृत जैसा लाभ

---

१ The efficiently functioning brain also requires proper amount of water—too little or too much is disastrous not only resulting in decreased mental efficiency, but when this balance is profoundly upset it leads to delirium, stupor and coma. Water holds the essential chemicals in solution and in the required amount of concentration A shift in the either direction may result in distorted thinking —Medical Record

करता है। उसको उषा-पान कहते हैं। वह पेट को शुद्ध करता है, रक्त को शुद्ध एवं शान्त करता है और नेत्रो के लिए हितकारी होता है। अनुभवी लोगो का कहना है कि नियमित रूप से उषा-पान करने से शिरोरोग नही होता और केश वृद्धावस्था तक काले रहते है। घाघ ने भी लिखा है :

> प्रातकाल खटिया तें उठिके, पियै तुरन्तै पानी।
> ता घर कबहूं वैद न आवै, बात घाघ कै जानी॥

मस्तिष्क पर आहार का प्रभाव

आहार का प्रभाव मस्तिष्क पर कैसा पड़ता है, इसको ठीक-ठीक जान लेना चाहिए क्योकि मस्तिष्क द्वारा ही शरीर की सारी क्रियाओं का सचालन होता है। भोजन का क्षणिक और स्थायी प्रभाव मस्तिष्क पर तत्काल पडता है जैसाकि मद्यसेवन के प्रभाव से समझा जा सकता है।

उक्त रूसी डॉक्टर (डॉ० ई० पोदोलस्की) ने इस विषय मे विशेष रूप से अध्ययन करके कुछ महत्त्वपूर्ण बाते प्रकाशित की है। उसका कहना है कि भक्षित पदार्थो मे से जो खनिज तत्त्व निकलते हैं, वे मस्तिष्क पर विशेष प्रभाव डालते है। स्वस्थ मस्तिष्क के रक्त मे उनका सम्मिश्रण ठीक परिमाण मे मिलता है परन्तु अस्वस्थ मस्तिष्क मे वे अधिक या न्यून मात्रा में मिलते है। ज्यों-ज्यो वे रासायनिक तत्त्व अपनी स्वाभाविक मात्रा से अधिक या कम होते है त्यो-त्यो मनुष्य की चित्त-वृत्ति और बुद्धि-शक्ति में अन्तर पडता है और प्राय: मनुष्य का सारा व्यक्तित्व ही परिवर्तित हो जाता है। वैज्ञानिक परीक्षा करने पर कई प्रकार के पागलो के मस्तिष्क मे शर्करा-अश आवश्यकता से अधिक पाया गया है। बहुत-से पागलो की परीक्षा से ज्ञात हुआ है कि उनके मस्तिष्क मे केलसियम और फासफोरस अत्यधिक मात्रा मे थे। कई

ऐसे रोगियो की परीक्षा की गई जिनकी विचार-शक्ति लुप्त हो गई थी और पता चला कि उनके रक्त मे चीनी का तत्वांश बहुत कम था। गंधक और लोह तत्त्वों की कमी से अनेक मानसिक क्रियाए स्तब्ध होती देखी गई है। कई प्रकार के मानसिक रोग इनकी अधिकता के कारण उत्पन्न होते पाए गए है, क्योकि गंधक और लोह तत्त्वो के आधिक्य से मस्तिष्क उत्तेजित एव विक्षिप्त हो जाता है।

अधिक अम्ल अथवा क्षार-विशिष्ट पदार्थों से मस्तिष्क बहुत जल्दी प्रभावित होता है। मधुमेही के मस्तिष्क मे अम्लरस[1] का प्राचुर्य मिलता है। अपस्मार, मानसिक व्याकुलता और सज्ञाहीनता के विकार प्रायः क्षार द्रव्यो की प्रचुरता से उत्पन्न होते है। कैलसियम और फासफोरस दोनों उचित मात्रा मे मज्जा-तंतुओ को बल, तेज और स्फूर्ति देते हैं। यही कम हो जाते हैं तो आलस्य और जड़ता के लक्षण प्रकट होते हैं। और उन्हीके बढने से विचारो मे चंचलता, झुझलाहट होती है तथा विकलता का अनुभव होता है। लोह तत्त्व से विचारो में दृढता आती है और मस्तिष्क पुष्ट होता है। बच्चों के ज्ञान-तंतुओ मे अवस्था के अनुसार लोह-अंश वयस्क की अपेक्षा कम होता है, इसलिए वे चंचल और विवेकहीन होते है। ज्यो-ज्यो आहार द्वारा वे लोह-अंश प्राप्त करते है, त्यो-त्यों उनका मस्तिष्क पोषित होता है।

हरी शाक-भाजी और फल खाने से मन क्यों साफ हो जाता है, यह ऊपर के विवरण से समझा जा सकता है। उनमे खनिज अंश प्रचुर मात्रा मे होता है जो मस्तिष्क के अनुकूल पड़ता है। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि खनिज द्रव्य अन्य द्रव्यो की भांति पाचन-क्रिया में रस के रूप में परिवर्तित होकर तब रक्त में नहीं मिलते। वे सीधे

रक्त मे मिश्रित हो जाते है, इसलिए उनका प्रभाव जल्दी दिखलाई पड़ता है।

इस प्रसग मे दो-एक अन्य जानने योग्य बातों का उल्लेख हम इस-लिए करेंगे कि उनके विषय में लोगो में कुछ भ्रम है। पहली बात तो यह है कि ज्ञानोत्कर्ष के लिए कौन-सा यौगिक पदार्थ परमावश्यक है, इसका अभी तक ठीक-ठीक पता नहीं चला है। लोगों मे यह विश्वास फैला है कि मछली में फासफोरस का अश बहुत होता है, इसलिए वह मस्तिष्क-शक्ति की वृद्धि के लिए उत्तम खाद्यपदार्थ है। परन्तु वैज्ञा-निक परीक्षा से यह असिद्ध प्रमाणित हुआ है। अंग्रेजी विश्वकोष मे इस सम्बन्ध मे ऐसा लिखा है।[1]

दूसरी बात चावल के सम्बन्ध में है। चावल मस्तिष्क-पोषक होता है। विश्व-प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक डॉक्टर एन० आर० धर ने २ अगस्त, १९४८ को कलकत्ते में एक लेक्चर दिया था। उसमें उन्होंने बताया कि प्रोटीन में जो ऐमिनो एसिड[2] नामक पदार्थ होता है, उसके दो भेद होते है—एक विशिष्ट, दूसरा सामान्य[3]। विशिष्ट प्रकार का द्रव्य शरीर तथा मस्तिष्क के विकास और पोषण के लिए नितान्त आवश्यक होता है। दूध, मछली और अण्डे आदि के प्रोटीन मे एमिनो एसिड का विशिष्ट अश ही अधिक होता हैं। गेहूं में यद्यपि चावल की अपेक्षा प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है, परन्तु चावल के प्रोटीन में एमिनो

---

१. What compounds are especially concerned in intellectual activity is not known. The belief that fish is especially rich in phosphorus and valuable as a brain food has no foundation in observed fact. —Encyclopaedia Britannica.

२. Amino acid.

३. Essential, Non-Essential.

एसिड का विशिष्ट भाग गेहूं की अपेक्षा अधिक होता है। धर महोदय के मत से पूर्वीय देशों के बौद्धिक विकास का प्रधान कारण चावल से प्राप्त होनेवाला उच्चकोटि का प्रोटीन ही है और इसलिए इधर चावल की खेती विशेष रूप से की जाती है। चावल से भड़कनेवाले लोग चावल खाकर देखें, सम्भव है, ज्ञान तीव्र होने पर उनको पता चले कि चावल के विषय में उनका जो भ्रम था वह चावल न खाने के कारण ही था।

आहार के प्रभाव के सम्बन्ध में यह बात सर्वमान्य है कि उसके अनुसार शरीर बनता है। मस्तिष्क और साथ ही स्वभाव और चरित्र भी बनता है; क्योंकि स्वभाव, चरित्र एवं मस्तिष्क शरीर से ही सम्बन्ध रखते हैं। सात्त्विक आहार की महिमा प्राचीन विद्वानों ने इसीलिए गाई है। इसमें सन्देह नहीं कि जो जैसा खाता है, वैसा ही बन जाता है। किसी संस्कृत नीतिकार ने कहा है कि जिस प्रकार दीपक अन्धकार की कालिमा का भक्षण करके कज्जल की कालिमा ही पैदा करता है, उसी प्रकार मनुष्य भी जैसा खाता है वैसा ही अपने ज्ञान को प्रकट करता है।

स्वास्थ्य के अन्य सहायक

अब आहार के अतिरिक्त स्वास्थ्य के अन्य प्रमुख सहायकों को लीजिए। अकेला भोजन ही जीवन-सर्वस्व नहीं होता। आयु और आरोग्य के लिए आहार के समान अथवा कुछ अंशों में उससे भी अधिक उपयोगी कुछ अन्य वस्तुएं भी हैं। उनमें से वायु सर्वप्रमुख है। भोजन के बिना तो मनुष्य दो-एक महीने तक जीवित रह सकता है, परन्तु वायु के बिना कुछ मिनट भी नहीं जी सकता। प्रत्येक प्राणी [illegible] वायु [illegible] है। [illegible] सर्वथा सत्य है :

वायुना वै गौतम सूत्रेणाऽयञ्च लोक परश्च लोक
सर्वाणि च भूतानि सम्वद्धानि भवन्ति।

हे गौतम! वायु धागे की तरह है, जैसे धागे मे मणिया पिरोई रहती है, वैसे ही समस्त भूत वायु-सूत्र मे गुथे रहते है।

वायु का साधारण धर्म है प्रकृति को प्रगतिशीलता देना और सर्वगामी, सर्वात्मा होकर जीवन को स्पन्दित करना तथा वस्तुओ को परिवर्तित करना। उसका दूसरा मुख्य धर्म है जीवो मे जीवनाग्नि उद्दीप्त करना। शास्त्रो ने वायु को अग्नि का तेज और अग्नि की आत्मा कहा है। आधुनिक विज्ञान भी उसको दहनात्मक मानता है क्योकि उसके मुख्य तत्त्व ऑक्सीजन से ही दहन-क्रिया सम्पन्न होती है। वही प्राणवायु है। तीसरा वायु-धर्म है धातुवर्द्धन और पोषण। उसके नाइट्रोजन नामक अग मे ही धातु-तन्तुओ का निर्माण एव सवर्द्धन होता है। ऑक्सीजन की दहनात्मक क्रिया पर नाइट्रोजन ही नियन्त्रण रखता है।

शरीर के साथ वायु का सम्बन्ध

स्वस्थ दशा मे मानव-शरीर को प्रतिघण्टे लगभग चार गैलन ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। उसका अधिकाश भाग श्वास द्वारा भीतर जाता है, शेष रोम-छिद्रो से। फेफड़े ऑक्सीजन को ग्रहण करके उसको रक्त मे मिश्रित करते है। उसीसे हृदय का कार्य चलता है। ज्यो-ज्यों शरीर की शक्ति व्यय होती है, त्यो-त्यो अधिक प्राणवायु की आवश्यकता होती है और वह फेफडो द्वारा सुलभ होती है। ऑक्सीजन से स्वभावत दैहिक-ताप उत्पन्न होता है और उसीसे पाचन-क्रिया चलती है। उसके द्वारा रक्त को नवजीवन मिलता है, शरीर मे शक्ति, स्फूर्ति और कान्ति की वृद्धि होती है तथा शरीर मे उत्पन्न विषो का नाश होता है। वायु के ताप से भीतर पक्वाशय मे जब खाद्य पदार्थो का

परिपाक होता है तो उसमें से कार्बन डाइआक्साइड नामक एक विषाक्त गैस निकलती है। शरीर में कार्बन (अंगार) प्रचुर मात्रा में रहता है। उनके साथ ऑक्सीजन का संयोग होने से वे जलते हैं और यह गैस पैदा होती है। प्रश्वास से यह बाहर निकलती है। श्वास से जब फेफड़े में ऑक्सीजन गृहीत होती है तभी भीतर से कार्बन डाइआक्साइड बाहर निकलती है।

कार्बन डाइआक्साइड

कार्बन डाइआक्साइड के विषय में कुछ जानना आवश्यक है। यह वही गैस है जो प्रायः कोयले के जलाने पर निकलती है। इसमें इतना विष होता है कि कभी-कभी जो लोग बन्द कमरों में अंगीठी जलाकर सोते हैं, वे प्रातःकाल मरे हुए या बेहोश पाए जाते हैं। प्रकृति में यह गैस गंदी वस्तुओं की सड़न से, शहरों की गन्दी नालियों से, दलदल, पुराने कुओं और मिलों-फैक्ट्रियों के धुएं से उत्पन्न होती है। कोई भी वस्तु जब सड़ने लगती है तो यह उनमें से प्रचुर मात्रा में निकलती है। कभी-कभी बन्द कमरों में पके फल रखकर सोने से रात में उनकी सड़न से लोग बेहोश हो जाते हैं या मर जाते हैं।

यह घातक गैस होती है। शरीर में संचित होकर यह व्याधि की नहीं, मृत्यु का भी कारण होती है। तीस वर्ष की आयु तक पुरुष के प्रश्वास से यह अधिक मात्रा में निकलती है। फिर क्रमशः घटने लगती है। स्त्रियों के प्रश्वास में यह कम मात्रा में होती है। दिन में यह अधिक निकलती है और वायु-मण्डल में जाकर मिलती है; सन्ध्या में कम होती है। सूर्य-किरणों का स्वाभाविक गुण होता है कि वे सब वस्तुओं में से कार्बन डाइआक्साइड को सोखकर बाहर करती है। रात्रि में बाहर का ताप कम होने से और शारीरिक क्रियाओं की शिथिलता से [illegible] प्रश्वास से भी कम निकलती है और बाकी रात को रोककर

ही कम हो जाती है। प्रात.काल वायुमण्डल मे यह गैस कम मात्रा में रहती है क्योकि एक तो मनुष्य के प्रश्वास से कम निकलती है, दूसरे सूर्य-ताप के प्रभाव के कारण वह अन्य वस्तुओ से निकलकर वायु में व्याप्त नही होती। प्रभातकालीन वायु का महत्त्व इसलिए अधिक है कि उसमे ऑक्सीजन प्रचुर मात्रा में मिल जाता है जिसके कारण विशेष स्फूर्ति और शक्ति मिलती है।

प्राकृतिक व्यवस्था के अनुसार वनस्पतिया इस विष को पीकर जीवों के लिए ऑक्सीजन रूपी अमृत दान करती है। उनका यह स्वाभाविक गुण ही है कि वे स्वय खाद खाकर फल उत्पन्न करती है। इसलिए जो लोग खुले स्थानो में वनस्पतियों के सम्पर्क में रहते हैं वे विशेष चैतन्य रहते है क्योकि उनको प्राण-वायु अधिक मिलती है। गाववालों की परिश्रम-शक्ति और जीवन-शक्ति इसी कारण से प्रबल होती है। शहरो मे वनस्पतियो का अभाव होता है; बहुत-से लोग सकुचित स्थानों मे रहते है और जनसख्या की अधिकता से एक सीमित क्षेत्र में कार्बन डाइआक्साइड प्रश्वास द्वारा अत्यधिक मात्रा मे निकलती है। दूसरे नालियो की गन्दगी, मिल के धुए आदि से यह और भी बढती है और उस हलाहल को पीनेवाले शिव—पेड़—वहां नही रहते, इससे यह विषाक्त गैस वहा निरन्तर व्याप्त रहती है। लोगों की श्वास-वायु में इसीकी मात्रा अधिक होती है। परिणामत: फेफड़े दुर्बल हो जाते है। इस रहस्य को आप इस रूप में समझिए—बहुत-से आदमी जब किसी एक सकीर्ण कमरे में साथ सोते है तो प्रात:काल सुस्त या अस्वस्थ हो जाते है क्योकि वे शुद्ध वायु नही बल्कि रात-भर एक-दूसरे का प्रश्वास पिए रहते है। मुह ढककर सोनेवालों की भी यही दशा होती है क्योकि वे अपनी ही निकाली हुई दूषित वायु को रात-भर पिए रहते है। जब बाहर से ऑक्सीजन नही मिलता तो स्वभावत: भीतर कार्बन डाइआक्साइड

संचित रहता है। प्राकृतिक नियम है कि जब फेफड़े में ऑक्सीजन पुलिस की तरह पहुँचता है तभी दूषित वायु चोर की तरह भागती है। प्राण-वायु के न पहुँचने पर नाश-वायु ही रक्त में मिश्रित होती है। यह स्मरण रखना चाहिए कि मांसपेशियों के विशेष संचालन, ज्वर-ताप की अधिकता और मनोवेग की तीव्रता से शरीर के भीतर कार्बन डाइऑक्साइड की उत्पत्ति अधिक होती है। इसलिए उसको निकालने के लिए परिश्रमी, रोगी और भावुक या मनस्ताप से पीड़ितों को स्वच्छ वायु का सेवन नितान्त आवश्यक होता है।

वैज्ञानिक परीक्षा से ज्ञात होता है कि कार्बन डाइऑक्साइड का कुप्रभाव मस्तिष्क पर विशेष रूप से पड़ता है। इसके आधिक्य से मस्तिष्क पर थकावट होती है, मन की एकाग्रता नष्ट होती है और चित्त अस्थिर तथा विकल हो जाता है। संज्ञाहीनता, स्नायवीय दुर्बलता, शिरोरोग इसके मुख्य परिणाम हैं। मुँह ढककर सोने पर जो साँस फूलती है और बेचैनी होती है, वह इसीलिए। दम घुटने पर संज्ञाहीनता के लक्षण भी पहले प्रकट होते हैं क्योंकि बाहर से ऑक्सीजन न मिलने पर भीतर कार्बन डाइऑक्साइड फैल जाता है।

मस्तिष्क पर ऑक्सीजन का प्रभाव

ऑक्सीजन ही ज्ञान-तन्तुओं का प्राण है। एक अनुभवी डॉक्टर (डॉ० ई० पी० [illegible]) ने लिखा है कि 'जहाँ तक बुद्धि के चैतन्य का सम्बन्ध है, ऑक्सीजन एक चमत्कारपूर्ण तत्त्व है।'

आधुनिक ढंग से इसकी वैज्ञानिक परीक्षा की गई है। सन् १८६२ में इसकी परीक्षा के लिए दो प्रसिद्ध वैज्ञानिक ग्लेशर और कॉक्सवेल बैलून द्वारा उड़कर ४८ मिनट में २८,००० फुट की ऊँचाई पर गए,

थे। वहां हवा का दबाव कम होने के कारण ऑक्सीजन बहुत कम मात्रा में उपलब्ध था। परिणामतः ग्लैशर महोदय की ज्ञान-शक्ति तत्काल लुप्त हो गई। वे अपनी घड़ी देखकर उससे समय भी नहीं बता सके थे। उनकी जडता का अनुमान करके गुब्बारे को कुछ नीचे उतारा गया और ऑक्सीजन पाते ही उनकी बुद्धि फिर सचेत हो गई।

दो अन्य वैज्ञानिकों ने इसकी परीक्षा दूसरे ढग से की। वे लौह-निर्मित एक छोटी-सी कोठरी मे घुसे जिसमे यन्त्र की सहायता के हवा का दबाव उतना रखा गया था जितना कि २४, ५०० फुट की ऊचाई पर होता है। परिणाम यह हुआ कि एक तो शीघ्र ही किंकर्तव्यविमूढ हो गया। उसकी लिखने-पढने और वस्तुओं को पहचानने की क्षमता नष्ट हो गई। कोठरी की छोटी खिड़की से देखने पर उनकी विमूढता का पता चलता था। उनसे कोई भी बात पूछी जाती थी तो वे यही कहते थे कि बस, हमें ऐसा ही पडे रहने दो। उनका मानसिक विकास पूर्णतया रुक गया था। इसके बाद हवा का दबाव बढाया गया। वे कुछ चैतन्य हुए। उनमें से एक ने पास में रखे हुए शीशे को उठाया पर उसको इतना ज्ञान नही था कि किस प्रकार उसमें अपना मुह देखा जा सकता है। वह उसके पीछे के भाग मे अपनी मुखाकृति देखने की चेष्टा करने लगा। जब हवा का दबाव बढ़ाकर १४, ५०० फुट के बराबर लाया गया तो ऑक्सीजन की उचित मात्रा मिलने से उनकी चेतना-शक्ति पुन' सजग हो गई परन्तु दोनो को यह याद नहीं था कि इस बीच में उन्होंने क्या-क्या सोचा था और कैसे बे-सिर-पैर के काम किए थे। ऑक्सीजन न मिलने से उनकी विचारशक्ति और स्मृति दोनो लुप्त हो गई थी।

उपर्युक्त उदाहरणो से समझा जा सकता है कि प्राचीन ऋषियों ने उषाकाल को क्यो इतना महत्त्व दिया था। सवेरे ऑक्सीजन अधिक से

अधिक मात्रा में सर्वसुलभ रहता है, इसलिए उस समय चिन्तन करने से मस्तिष्क प्रौढ़ होता है और विचारशक्ति तीव्र होती है। पूर्वकाल में प्रभात दिन का सुवर्णकाल था। उसका लोग, मुख्यतः विद्यार्थीगण और बुद्धि-व्यवसायी जन, पूर्ण उपयोग करते थे। परिणाम भी सुन्दर ही होता था। अब उसका उल्टा होता है। प्रातःकाल लोग व्यर्थ गवाते हैं और दस बजे जब वायुमण्डल विशेष दूषित हो जाता है तब वे बुद्धि का उपयोग करने निकलते हैं। फलतः उनकी बुद्धि थक जाती है।

शुद्ध वायु के ये गुण स्पष्ट हैं—इससे श्वास-प्रश्वास का क्रम ठीक चलता है, शरीर की कार्य करने की शक्ति सचालित होती है। मन में उत्साह तथा चेतना की वृद्धि होती है, चित्त-प्रवृत्ति ठीक रहती है, धातु और इन्द्रियों की पुष्टि होती है, शरीर के तत्त्वों को गति मिलती है, हृदय, रक्त और सम्पूर्ण जीवन का प्रवाह नियमित रूप से चलता है।

वायु-सेवन

शुद्ध वायु का सेवन श्वास से तथा रोम-कूपों से भी करना चाहिए। रोम-कूपों से वायु ग्रहण करने की उत्तम विधि है, उनको स्वच्छ और खुला रखना। स्नान से रोम-छिद्र खुल जाते हैं, तब उनके द्वारा शुद्ध वायु अन्दर जाती है और पसीने के रूप में अन्दर का दूषित द्रव्य भी बाहर आता है। इसलिए स्नान करना नितान्त आवश्यक है। यथा-सम्भव शरीर को खुला रखना चाहिए अथवा हल्के कपड़े पहनने चाहिए। इससे वायु का स्पर्श ठीक होता है। इस स्पर्श का महत्त्व इसीसे समझा जा सकता है कि दिन-भर के परिश्रम के बाद खुले मैदान में जाते ही शीतल प्रसन्नता, स्फूर्ति की एक लहर उमड़ पड़ती है। यह ध्यान रखना चाहिए कि यह लहर आन्तरिक इच्छा से ही उमड़ती है [illegible] रूप में नहीं। [illegible] होती है।

इस स्पर्श-क्रम से स्वाभाविक वायु शरीर को इतना [illegible]

देती है तो भीतर रक्त से मिश्रित होकर तो वह अवश्य ही विशेष गुण करती होगी। वास्तव में, जब शीतल-मन्द-सुगन्ध समीर का सेवन किया जाता है तो सम्पूर्ण स्वास्थ्य उद्दीप्त होता है। सुवासित वायु ओषधियो के तत्त्व और पुष्पों का गन्ध-सार लेकर चलती है; इसलिए वेद ने इसकी स्तुति करके कहा है कि हे वायु ! तुम्ही विश्व के लिए ओषधि हो, तुम देवताओ के दूत वनकर जाओ : 'त्व हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे ।' वहुत-सी व्याधिया केवल वायु-परिवर्तन से ठीक हो जाती है और इसके लिए लोग स्वास्थ्यप्रद स्थानो मे जाते है। सर्वसाधारण के लिए यही सुसाध्य है कि वे प्रात काल खुली जगह मे अधिक से अधिक वायु-सेवन करे और दिन मे भी अशुद्ध वायु से बचे। अधिक से अधिक का अर्थ यह नही कि आधी मे खड़े वायु-पान करे। उसका अभिप्राय यह है कि शुद्ध वायु से फेफड़े को स्वच्छ करे। खडे होकर वायु-सेवन ठीक-ठीक नही हो सकता, इसलिए टहलकर फेफडों को अधिक क्रियाशील वनाना चाहिए जिससे वे शुद्ध वायु ग्रहण करके भीतर की दूषित वायु को वाहर फेक सके।

स्वरोदय-विज्ञान

इस प्रसग मे स्वरोदय-विज्ञान का परिचय देना अनुचित न होगा। श्वास द्वारा किस क्रम से वायु शरीर मे धारित होती है तथा उसका क्या प्रभाव शारीरिक क्रिया पर पडता है, यही इस प्राचीन भारतीय विज्ञान का मुख्य विषय है। कई लोगो ने इसकी सत्यता की परीक्षा की है। इस शास्त्र के अनुसार सूर्योदय के समय से अढाई-अढाई घड़ी के क्रम से एक-एक नासिका-छिद्र से सास बाहर आती-जाती है। दिन-रात में वारह वार एक छिद्र से कार्य होता है और बारह बार दूसरे से, और कभी-कभी कुछ देर दोनो से। शुक्लपक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा को सूर्योदय

के समय स्वस्थ व्यक्ति का बायां नासिका-छिद्र श्वास-प्रश्वास का काम करता है। कृष्णपक्ष की इन्हीं तिथियों में और अमावस्या को दाहिना छिद्र कार्यारम्भ करता है। यदि इसमें व्यतिक्रम हो तो समझना चाहिए कि शरीर में गुप्त या प्रकट रूप से कोई व्याधि है। बाईं नाक से श्वास चलते समय स्थिर कार्य करना चाहिए और दाहिनी नाक के समय कठिन कार्य तथा दोनों के चलते समय चिंतन-ध्यान आदि। कोई रोग होने पर उस समय जो नासा-छिद्र कार्य करता हो उसको कपड़े से बन्द कर देना चाहिए। इससे शीघ्र ही दूसरा छिद्र खुल जाता है और उधर का फेफड़ा जिसकी निष्क्रियता के कारण विकार हुआ रहता है, ठीक कार्य करने लगता है। सिरदर्द में जिधर की श्वास चलती हो, उसको बन्द कर देने से सचमुच लाभ होता है, इसको हम देख चुके हैं। खाते समय दाहिना श्वास चलने से भोजन ठीक-ठीक पचता है। भोजन के बाद भी दस-पन्द्रह मिनट दाहिनी नाक का चलना हितकर होता है। इसलिए खाने के बाद बाईं करवट लेटने का नियम बनाया गया है, क्योंकि बाईं करवट लेटने से दाहिनी नाक अपने-आप खुल जाती है, ऐसा प्राकृतिक नियम है। दाहिनी करवट लेटने से बाईं नाक काम करती है। उक्त शास्त्र के अनुसार जिधर की नासिका में श्वास चलती हो, उधर के अंगों द्वारा किया हुआ तात्कालिक कार्य अधिक सुचारु रूप से सम्पन्न होता है। होठों को ढीला करके धीरे-धीरे वायु खींचकर उसको नाक से धीरे-धीरे छोड़ने से बड़ा लाभ होता है। दो-चार बार इसका अभ्यास करने से ज्वर, अजीर्ण और रक्त-विकार ठीक होते हैं।

प्राणायाम

शोधक, मस्तिष्क-पोषक एव शक्ति-स्फूर्तिदायक एक श्रेष्ठ क्रिया भी है। वह योगियों के उपयोग की ही नही प्रत्येक स्वास्थ्य-प्रेमी व्यक्ति के लिए एक उपयोगी साधना है।

प्राणायाम का महत्त्व समझने के लिए सर्वप्रथम यह जानना चाहिए कि आयु के साथ श्वास का घनिष्ठ सम्बन्ध है। आयु की नाप श्वास से ही होती है। एक दिन मे २१,६०० बार श्वास-प्रश्वास की क्रिया होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि इतनी सासो मे एक दिन का जीवन गत होता है। एक वर्ष मे इसकी सख्या ७७,७६,००,००० होती है। यदि कुछ समय प्रतिदिन श्वास को रोका जाए तो उसका अर्थ यह होगा कि उतनी देर जीवन का व्यय न होगा और एक वर्ष से कुछ अधिक समय मे उतनी श्वास (और उससे सम्बद्ध आयु) का व्यय होगा, जितना स्वाभाविक दशा मे एक ही वर्ष में होता है। इस प्रकार प्राणा-याम से आयु बचती है अथवा आयु का क्षय घटता है। दूसरी बात यह है कि इससे फेफडे शुद्ध वायु से भर जाते है और उनके रोगाणु उसके द्वारा मर जाते हैं। फेफड़ो के शुद्ध होने से शरीर का रक्त शुद्ध होता है और रक्त की शुद्धता से ही स्वास्थ्य बनता है।

प्राणायाम का प्रत्यक्ष लाभ तो यह है कि उससे शरीर की शक्ति, विचारशक्ति और मानसिक स्थिति दृढ होती है। रोग मे, क्रोध मे, अधीरता मे तथा भय आदि किसी भी शारीरिक या मानसिक अशक्तता में सास की गति बढ जाती है। इसका अर्थ यह है कि सास का बढ़ना भीतर की उत्तेजना या अशक्तता का द्योतक होता है। यदि इसका उलटा किया जाए, अर्थात् सास को रोककर उसको स्थिर करने का अभ्यास किया जाए तो निश्चय ही उत्तेजना और अशक्तता का हनन होगा। इसको तो निजी अनुभव से देखा जा सकता है कि चित्त जब उद्विग्न रहता है तो सांस का वेग बढ जाता हे और शान्त रहने पर

श्वास मन्द-मन्द चलती है। इससे यह सहज में समझा जा सकता है कि मानसिक स्वस्थता पर श्वास-सयम का प्रभाव अवश्य पड़ेगा। प्राणायाम से एक और प्रत्यक्ष लाभ यह होता है कि उसकी साधना से मन की एकाग्रता वढ़ती है। क्योकि श्वास रोकने से जव मन की उत्तेजना शमित होती है तो उसकी चंचलता भी रुकती है। इससे व्यक्तित्व सचेत होता है और बुद्धि स्थिर एव विशुद्ध होती है।

एक जर्मन यहूदी डॉक्टर ने प्राणायाम से सम्बन्ध रखनेवाली एक अन्य क्रिया को महत्त्व दिया है। उसका कहना है कि श्वास को बाहर निकालकर फेफड़ो को वायु-शून्य कर देना चाहिए और अधिक से अधिक समय तक उनको इस अवस्था में रखना चाहिए। ऐसा करने से हवा न मिलने के कारण भीतर के हानिकर जीवाणु मर जाते है। उसका कहना है कि कफ के रोगों (दमा, खासी, सर्दी आदि) में इससे आश्चर्य-जनक लाभ होता है। यह बात युक्ति-सम्मत प्रतीत होती है।

ब्रह्मचर्य

स्वास्थ्य का एक प्रमुख सरक्षक शरीर का वीर्य भी है। अच्छा आहार खाकर और खूब ऑक्सीजन पाकर भी यदि वीर्य-रक्षा न की जाए तो स्वास्थ्य कभी ठीक नही रह सकता। शरीर के समस्त ओज[४] का धारक-विस्तारक वीर्य ही होता है। उसीसे पुरुषार्थ की प्रतिष्ठा और वृद्धि होती है और पुरुषार्थ ही जीवन का सच्चा सुख है। वीर्य की महत्ता का इससे प्रवल प्रमाण क्या होगा कि उसीसे जीवन-उत्पत्ति होती है। वह मनुष्य को बनानेवाला ब्रह्म और प्राणदायक तत्त्व होता है। ऐसी ब्रह्मशक्ति शरीर में रहकर निश्चय ही आत्मशक्ति की वृद्धि करती होगी। वीर्य उस वस्तु को कहते है जिसमें विशेष कार्य करने

---

४. Vitality.

का गुण हो अर्थात् जो किसी वस्तु का प्रधान कार्यकारी गुण है : 'प्रभूतकार्यकारिणी गुणे वीर्यम्' (सुश्रुत)। मानव-शरीर का प्रधान तत्त्व वीर्य ही होता है। वही शरीर को पुष्टि देता है ; रोगो के बाहरी आक्रमण से बचाता है ; मन मे धैर्य, शान्ति, उत्साह और विक्रम की भावना भरता है। हम प्रत्यक्ष देखते है कि दुराचारियो की अपेक्षा संयमी लोग स्वभावत: धैर्यवान, उत्साही, मेधावी, मनस्वो और तेजस्वी होते हैं। क्लीबों या कामोत्कट व्यक्तियों को ऐसा होते नही देखा जाता। इससे वीर्य की ओजस्विता सिद्ध होती है।

स्वस्थ होने के लिए ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक है। उसका यह अर्थ नही कि बालब्रह्मचारी बनकर बैठा जाए। यह असम्भव एव अस्वाभाविक है। आवश्यकता से अधिक वीर्य-सचय से स्वास्थ्य को हानि पहुचती है। ससार की कोई भी शक्ति जब उपयोग मे नही लाई जाती तो वह स्वयं नष्ट होती है अथवा सलग्न वस्तु को नष्ट करती है। वीर्य का उपयोग अवश्य करना चाहिए पर आवश्यकतानुसार। उसको शरीर की मुख्य सम्पत्ति मानकर सम्पत्ति ही की तरह अच्छे काम मे लगाना चाहिए। इसीको व्यावहारिक जगत् मे ब्रह्मचर्य कहते हैं। इस सम्बन्ध मे निम्नलिखित बातों को ध्यान मे रखना चाहिए :

१. 'अन्नाद्रेत सभवति' (सुश्रुत)—वीर्य अन्न से बनता है। इसलिए उसका एक नाम अन्न-विकार भी है। आहार की शुद्धता से ही शुद्ध वीर्य बनता है और आहार की शुद्धता से ही वह स्वाभाविक अवस्था में रहता है। उत्तेजक पदार्थ लेने से वह विकृत हो जाता है और परिणामस्वरूप चित्त मे चचलता और शरीर मे विकार की उत्पत्ति होती है। इसलिए यथासम्भव शुद्ध और सरल आहार लेना चाहिए।

२. मन की वासनाओं से वीर्य-दशा प्रभावित होती है। मन में

वासना उठने पर कामोत्तेजना होती है। यदि उस समय उसको रोका जाए तो शरीर को क्षति पहुचती है और यदि बार-बार वासनाओ के उठने पर उसका व्यय किया जाए तो शारीरिक शक्ति का ह्रास होता है। इसलिए ब्रह्मचर्य-रक्षा के लिए मानसिक सयम आवश्यक है।

३ रक्त दूषित होने से या कम होने से वीर्य भी दूषित तथा कम हो जाता है। व्यभिचार आदि से जब रक्त दूषित होता है तो वीर्य भी सदोष हो जाता है। आहार की कमी आदि से जब रक्त की कमी होती है तो वीर्य-रचना भी कम होती है। दोनों दशाओं मे शरीर की स्थायी शक्ति का ह्रास होता है। अतएव चरित्र की शुद्धता तथा आहार-सयम का ध्यान रखना चाहिए।

४. वीर्योत्पादक अगो से मस्तिष्क का घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है, इसलिए उसको सुव्यवस्थित, सबल और स्वस्थ रखना आवश्यक है। वैज्ञानिक परीक्षा से देखा गया है कि काम-ग्रथियो के नष्ट होते ही उत्साह, साहस, धैर्य, चैतन्य और पौरुष-बल समाप्त हो जाते है। यह भी देखा गया है कि जर्जर काम-ग्रथियो को पुनः सजीव बनाने या बदल देने से वृद्धों के मन मे भी युवावस्था की तरगे आ जाती हैं और वे शरीर से भी पुरुपार्थी बन जाते है। जिनके काम-यत्र निर्बल होते है वे युवावस्था मे भी वृद्ध का सा आचरण करते हैं। काम-अगों की सशक्तता, सुदृढ़ता और उनकी तृप्ति का मानव-स्वभाव और विचार-धारा पर अपरम्पार प्रभाव पडता है। इस सम्बन्ध मे यह जान लेना चाहिए कि जननेन्द्रिय और मस्तिष्क का सीधा सम्बन्ध है। रीढ से लगी हुई एक मोटी नस होती है जिसको वीर्य-प्रवाहिनी शिरा कहते है। वह शिरा रीढ़ के साथ मस्तिष्क से जुडी रहती है। इसलिए जननेन्द्रिय के रोगग्रस्त, विकृत या अशक्त होने से मस्तिष्क भी वैसा ही हो जाता है। साथ ही मस्तिष्क की अवस्था का पूर्ण प्रभाव इस अग पर

पडता है। अतएव इस शक्ति-उत्पादक अंग का रक्षण एवं उपयोग सावधानी और प्राकृतिक ढंग से करना चाहिए।

५. अति सर्वत्र वर्जयेत्—इस सिद्धान्त का पालन यदि किसी कार्य में करने की आवश्यकता है तो वह भोग-विलास के सम्बन्ध में। अधिक भोग-विलास से अधिक वीर्य-क्षय के कारण, रोग ही नही राज रोग (क्षय) तक हो जाता है। व्यभिचार से उपदंश होता है जिसमे शारीरिक यंत्रणा तो होती ही है, मानसिक यंत्रणा और भी भयंकर होती है। पागलपन का तो यह एक प्रमुख कारण होता है क्योंकि सिफलिस (उपदंश, गर्मी) से मस्तिष्क के सूक्ष्म तंतु बिलकुल बेकार हो जाते है। मानसिक विकार में इसीलिए अनुभवी डाक्टर रक्त-परीक्षा द्वारा पहले ही देख लेते है कि कही उसमे उपदंश के कीटाणु तो नही है। यदि परीक्षा न की जाए और वास्तव में पागल व्यक्ति उपदंश-पीडित हो तो कोई भी दवा देने से उसको लाभ नही होता।

शरीर पर मानसिक दशा का प्रभाव

आहार आदि पर मन का प्रभाव क्या पडता है, इसका उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। स्वस्थचित्त स्वास्थ्य के लिए कहा तक और किस प्रकार सहायक होता है, यहा हम इसपर विचार करेंगे। विस्तार के भय से हम इस विषय को निम्नलिखित भागो में विभाजित करके देखेगे कि किन-किन मानसिक वृत्तियो का प्रभाव शरीर के स्वास्थ्य पर कैसा पडता है।

मनोयोग

मनोयोग के बिना स्वास्थ्य-निर्माण कभी नही हो सकता। किसी आहार या व्यायाम मे मन न लगे तो उसका पूर्ण प्रभाव शरीर पर नही पडता। स्वास्थ्य-सुधार के लिए सुबह-शाम मन लगाकर थोडा भी टहलना लाभदायक दिखलाई पडता है। पोस्टमैन लोग दिन-भर

घूमते है, पर उससे उनका स्वास्थ्य औरों की अपेक्षा अच्छा नही प्रतीत होता, क्योंकि वे स्वास्थ्य-सुधार की भावना लेकर नहीं टहलते।

मनोयोग से इच्छा-शक्ति दृढ होती है और इच्छा-शक्ति बडे से बडे चमत्कार कर सकती है। मनुष्य जब इच्छा कर लेता है कि उसको स्वस्थ होना है तो वह अवश्य स्वस्थ बन जाता है। शक्तियो का सग्रह और योग मनोयोग से ही होता है।

विश्वास

मन के विश्वास का प्रभाव स्वास्थ्य पर कई प्रकार से पड़ता है। आत्मविश्वास से स्नायु-मण्डल स्वभावतः प्रवल हो जाते है और उसकी क्षीणता से इन्द्रियां क्षीण हो जाती हैं। आत्मविश्वास से शरीर मे अतिरिक्त बल की अनुभूति होती है और उसके अनुसार शरीर की बल-वृद्धि होती है। कई प्राचीन महावीरों के सम्बन्ध मे जो यह कहा जाता है कि उनमे दस हजार हाथियों का बल था, उसका अर्थ हम यह समझते है कि उनमें उनका मनोबल था। आत्मविश्वास से एक व्यक्ति कई व्यक्तियों से अधिक बलवान होता देखा जाता है।

जिनमें आत्मविश्वास नहीं होता वे कई प्रकार की कल्पित व्याधियों से पीड़ित देखे जाते है। ऐसी बीमारियां औषधियो से नही, युक्ति से मन का सन्देह मिटाने से ही मिटती है।

मन में झूठा विश्वास जमने से कभी-कभी आत्मविश्वासी लोग सचमुच बीमार हो जाते है। इसकी परीक्षा कुछ अमरीकन डॉक्टरों नें इस प्रकार की थी। एक बिलकुल चगे आदमी से एक डॉक्टर ने कहा, 'आज आप कुछ ढीले लगते है।' कुछ देर बाद दूसरा डॉक्टर पूर्व-योजना के अनुसार उसको मिला और कहा, 'क्या मामला है, आपका चेहरा उतरा है, आखे लाल है और आप अस्वस्थ लगते है।' बाद मे तीसरा डॉक्टर मिला। उसने कहा, 'आपको तो बुखार मालूम देता है,

घूमिए-फिरिए नही।' तीनो की बातो से वह स्वस्थ व्यक्ति अपने को सचमुच बीमार समझने लगा और थर्मामीटर से देखा गया तो उसको काफी टेम्परेचर हो आया था।

मन के विश्वास का कैसा प्रभाव पड़ता है, इसका एक और दृष्टान्त किसी विलायती पत्र मे छपा था। एक बच्चे को विचित्र प्रकार का सूखा रोग हो गया था। निदान से कोई कारण ज्ञात नही हुआ। तब एक अनुभवी डॉक्टर ने एक विचित्र औषधि बताई। उसने कहा कि इस बच्चे को हर तीसरे घटे प्यार किया जाए। ऐसा किया गया और बच्चा मोटा-ताजा होने लगा। उसको विश्वास हो गया कि उसपर प्यार होता है। इसके उदाहरण हम भारतीय परिवारो मे यत्र-तत्र-सर्वत्र देख सकते हैं। विपत्नियो या विमाताओं द्वारा पालित बच्चे सूखकर काटा हो जाते हैं, क्योकि उनके मन मे यह बात बैठी रहती है कि ससार में कोई उनको चाहनेवाला नही है। विश्वास से प्रेम होता है और प्रेम से मन तथा शरीर का पोषण। इसके अभाव मे क्लेश, विरह, स्वास्थ्य-नाश होता है। सुन्दर परिवारो मे पारस्परिक विश्वास ही सबको स्वस्थ एव प्रसन्नचित्त रखता है।

निश्चिन्तता

निश्चिन्तता से आयु और स्वास्थ्य की वृद्धि होती है। इसमें तो कोई सन्देह ही नही। चिन्ता से शरीर कृश होता है। कहा भी है कि 'चिन्ता सम नास्ति शरीरशोषणम्।' चिन्ता के समान अन्य कोई वस्तु शरीर-शोषक नही है। एक सस्कृत-नीतिकार ने लिखा है कि चिन्ता चिता से दसगुनी बडी है (चिता की अपेक्षा उसके आगे एक बिन्दु '०' भी है) क्योकि चिता तो मरे हुए शरीर को जलाती है और चिन्ता जीवित शरीर को ही दग्ध करती है। चिन्ता की अनिन्द्रा और क्लान्ति का अनुभव तो सभीने किया होगा।

चिन्ता प्राय: धन की कमी, निराशा, सशय आदि के कारण उत्पन्न होती है। जब आदमी अपने को अरक्षित तथा भविष्य को अंधकारमय देखता है, तभी उसको चिन्ता होती है। यह चिन्ता चाहे झूठी ही हो पर स्वास्थ्य पर उसका प्रभाव पडता है। अमरीका के एक पत्र (गार्डियन) मे इस विषय का समर्थक एक वृत्तान्त हाल ही मे छपा है। जर्मनी की पराजय के बाद जर्मन बच्चों का शारीरिक स्वास्थ्य नष्ट होने लगा। भोजन की कमी तो थी ही, पर सबसे बड़ी बात यह थी कि उन बच्चो के मन मे यह शका पैदा हो गई थी कि आज जो खाने को मिल रहा है, वह कल भी मिलेगा या नही। दूसरे दिन की अनिश्चित दशा का विचार करके वे रात को चिन्तावश सो भी नही सकते थे। तब उनकी मनोदशा का अध्ययन करके उनके अभिभावको ने यह उपाय किया कि रात को लेटने से पहले प्रत्येक बच्चे को एक-एक रोटी का टुकड़ा दिया जाने लगा। बच्चे उसको गुडिया की तरह लिपटाकर इस निश्चिन्तता के साथ सो जाते थे कि उनके पास अगले दिन के लिए भोजन है। यह वृत्तान्त 'मेगजीन डाइजेस्ट' के जून, १९४८ के अक मे उद्‌धृत हुआ है।

स्वस्थ रहने के लिए यह आवश्यक है कि जो गत हो चुका है, उसकी चिन्ता न करे : 'गत न शोचामि।' और भविष्य की अनावश्यक एव निराशाजनक कल्पना न करे।

मनोव्याधियां

चिन्ता के अतिरिक्त अन्य कई मानसिक व्याधिया है जो कुछ समय मे शारीरिक व्याधियों के रूप मे फूट निकलती है। इस सम्बन्ध में एक विद्वान डॉक्टर (डॉ० एस० वी० व्हाइटहेड) का यह कथन उल्लेखनीय है :

"मनोविकार कई सूक्ष्म ढगो से शरीर द्वारा अपने प्रभाव को

प्रकट करते हैं। उत्तेजनात्मक स्वभाव रक्त का प्रसार बढ़ा देता है; उदासीनता या उद्विग्नता नाड़ियों को शिथिल कर देती है। भय पाचन-क्रिया को गड़बड़ा देता है । सैकड़ो प्रकार से मनोदशा का प्रभाव शारीरिक स्वास्थ्य और मनुष्यो के व्यवहार एव आचरण पर पड़ता है।"[1]

इस सम्बन्ध में अमरीका की एक सुप्रसिद्ध पत्रिका (रीड मेगजीन, अगस्त १९४५) मे एक सारगर्भित लेख छपा था। उसमे लिखा था कि प्राय: लोग अपने परिवार ही के किसी व्यक्ति के प्रति मन मे अर्से तक गुप्त घृणा लिए रहते हैं, जिसके कारण उनको आत्मग्लानि होती है। ये दुर्भाव अन्तर्मन में बैठ जाते है और वर्षो बाद एक्जीमा, दमा, हाई-ब्लडप्रेशर या दृष्टि-दोष के रूप में प्रकट होते है। गुप्त अन्तर्वेदना, व्यग्रता तथा भय-शका की भावना का शरीर-दृष्ट्या लक्षण है थकावट। जब आपको बिना किसी शारीरिक व्याधि के क्लाति तथा शिथिलता का अनुभव हो तो समझ लीजिए कि कोई दुर्भाव आपके अन्तर्मन मे समा गया है जो रह-रहकर जाग उठता है और आपको पीड़ित करता है। थकावट (या बेचैनी) विकार-प्रेरित द्वन्द्व की सूचना है।[2]

---

१ In many subtle ways, mental ills reflect themselves through your body. Your hot temper sends up your blood pressure Your sulks depress your nerves. .your fear inhibits your digestion. In thousand and one ways mental health reflects itself in your physical health and the way you react to people and circumstances

२ Fatigue is the red flag of emotional conflict

—Curtis Reed

इन उद्धरणो से स्पष्ट है कि शरीर से स्वस्थ रहने के लिए मन से स्वस्थ होना परम आवश्यक है। मन का पाप शरीर पर प्रकट होता है, उसी तरह जैसे : 'जीभ तो कहि भीतर गई, जूता खात कपाल' (तुलसी)।

संगति का प्रभाव

सगति का शारीरिक प्रभाव तो स्वास्थ्य पर पड़ता ही है, क्योकि एक का रोग दूसरे को पकड़ लेता है; पर मानसिक प्रभाव विशेषरूप से पड़ता है । स्वस्थ व्यक्ति की सगति से मन मे उत्साह होता है क्योकि प्रत्यक्ष स्वास्थ्य-देवता के दर्शन होते है और देवदर्शन के बाद उपासना की भावना स्वभावत. उठती है। स्वस्थ व्यक्तियों की सगति से अपना स्वास्थ्य सुधारने की मनोवृत्ति उठती है । पहलवान लोग अखाड़ों मे हनुमानजी की मूर्ति इसीलिए तो रखते है। अतएव स्वस्थ होने के लिए सामने एक आदर्श रखना आवश्यक है।

स्वास्थ्य और व्यायाम

शरीर और मस्तिष्क की स्वाभाविक शक्ति और स्फूर्ति को उद्दीप्त करने के लिए व्यायाम की आवश्यकता होती है। व्यायाम का अर्थ पहलवानी नही है। व्यायाम किसी भी ऐसे कार्य को कह सकते है जिसके द्वारा शरीर की स्थायी शक्ति सतेज, सक्रिय एव सुदृढ हो। प्राकृतिक चैतन्य प्राप्त करना ही उसका उद्देश्य होता है। वह चैतन्य टॉनिक पीने या मद्य-सेवन से नही आ सकता, क्योकि वह पुष्टिकर होने पर भी स्थायी एव स्वाभाविक नही होता। व्यायाम ही एक साधन है जिसके द्वारा मासपेशियो को बल मिलता है, नाड़िया स्वस्थ होती है; हृदय, फेफड़े, मस्तिष्क और पाचन-यन्त्र विशेष क्रियावान होते है और शरीर मे अनावश्यक चरबी वढने नहीं पाती, क्योकि भीतर का वहुत-सा दूपित मल, श्वास और पसीने से बाहर निकल

जाता है। व्यायाम से ही प्रत्येक अंग सुगठित रहता है, रक्त का प्रवाह ठीक रहता है, मन में उत्साह तथा आत्म-बल का अनुभव होता है। व्यायाम द्वारा अंगों के संघर्षण और संचालन से शरीर की विद्युत्-शक्ति गतिमान होती है और शरीर सतेज होता है। यही सब व्यायाम के लाभ हैं और इन्हींके लिए व्यायाम भी करना चाहिए।

शारीरिक व्यायाम अनेक ढंग के होते हैं; जैसे : योगासन, खेल-कूद, दण्ड-बैठक, दौड़ना आदि। इनके ढंग और लाभ आदि सर्वविदित हैं। इनमें सबसे सरल टहलना है, क्योंकि उसको सभी सुगमता से मनोविनोद के लिए भी कर सकते हैं। कई दृष्टियों से वह सर्वोत्तम भी है। कोई भी व्यायाम किया जाए, उसको नियमित रूप से और पूर्ण मनोयोग से ही करना चाहिए। उसके लिए प्रभात का समय सर्वोपयुक्त होता है। उस समय जिन शारीरिक क्रियाओं से शरीर को चैतन्य-लाभ मिले, उन्हींको करना चाहिए। यह आवश्यक नहीं कि उछल-कूद ही मचाई जाए। जो ऐसा नहीं कर सकते वे खाट पर ही हाथ-पैर तानकर, लम्बी सांसें लेकर और मांसपेशियों को थोड़ा हिला-डुलाकर अपनी शक्ति को जगा सकते हैं। घर ही में थोड़ा टहल लेने से भी साधारण व्यायाम हो जाता है, किन्तु तब जबकि इच्छा-शक्ति दृढ़ हो। इसी प्रकार दफ्तर में काम से थकने पर कुर्सी पर ही थोड़ा हाथ-पैर तानने से मांसपेशियों में नव-स्फूर्ति आ जाती है। उस समय आंखों को दो-चार बार कसकर बन्द करने तथा खोलने और दो-चार बार अंगड़ाई लेने से नव-स्फूर्ति आ जाती है। वह भी एक उत्तम व्यायाम है; कम से कम रेल-यात्री और बुद्धि-व्यवसायियों के लिए। परन्तु इन सबसे स्थायी लाभ नहीं होता। ये तो चुटकुले हैं। स्थायी शक्ति के लिए किसी प्रकार का नियमित परिश्रम करना चाहिए और सावधानी के साथ, क्योंकि : 'अतरे-खोतरे कसरत करे,

दैव न मारे अपने मरे'—अर्थात् अनियमित व्यायाम से शारीरिक विनाश होता है।

सर्वोत्तम व्यायाम

हमारी सम्मति में केवल एक व्यायाम है जो सभी दृष्टियों से सहज, उपयोगी और शरीर के समस्त अगों के लिए समान रूप से हितकर हो सकता है—वह है धनुष-बाण चलाने का अभ्यास करना। आमोद-प्रमोद के साथ शरीर और मस्तिष्क को स्वस्थ बनाने के लिए इससे बढकर कोई व्यायाम नही हो सकता। आगे चलकर यह व्यायाम ही नहीं रह जाता, बल्कि एक गुण और आत्मरक्षा का साधन भी बन जाता है। प्राचीन भारत का यह सर्वमान्य व्यायाम था। भारत ही नही, पन्द्रहवीं-सोलहवी शताब्दी तक यह इग्लैंड का भी राष्ट्रीय व्यायाम था। पन्द्रहवी शताब्दी में इग्लैंड के प्रत्येक व्यक्ति के लिए धनुष रखना और प्रतिदिन उसका अभ्यास करना अनिवार्य था। चतुर्थ एडवर्ड के राज मे यह राज-नियम बनाया गया था कि जब बच्चे सात वर्ष की आयु के हो जाए तो उनको बाण चलाना अवश्य सिखाया जाए और इसके लिए प्रत्येक ग्राम में व्यवस्था थी। ग्रामवासियों और नगरवासियो के लिए नियम था कि वे प्रत्येक रविवार को और उत्सव के दिनो मे धनुष-बाण का अभ्यास करे। जो इसमें आलस्य करते थे उनको जुर्माना देना पड़ता था। सुप्रसिद्ध हैरो स्कूल के सस्थापक ने यह नियम बनाया था कि जो माता-पिता अपने बच्चे को यहा भर्ती करे वे उसको एक धनुष देकर तब स्कूल भेजे। काल-परिवर्तन से इस कला का उपयोग लोग भूल गए, परन्तु इससे उसकी उपयोगिता नही नष्ट हुई। एक सुप्रसिद्ध अग्रेजी मासिक पत्र (हैल्थ एड एफीशैंसी) के १९४६ के विशेषांक में एक अनुभवी लेखक ने लिखा है कि सकुचित फेफड़ो को खोलने के लिए, भद्दे कंधो को सुडौल बनाने के लिए, तोद

पचाने के लिए, मासपेशियो को सुदृढ बनाने के लिए यह एक राष्ट्रीय व्यायाम है, जिसको अत्यधिक लोकप्रिय बनाना चाहिए।[१]

अब देखिए कि किस प्रकार इस एक ही व्यायाम से शारीरिक एव मानसिक शक्तियो का सगठन, संतुलन तथा विकास होता है। जब आप धनुष चलाने खडे होगे तो स्वभावत. पैरो को सीधा करके दृढता से जमीन पर खड़े होगे। पैर ही नही, पूरे शरीर को सीधा रखना पडेगा; और आख को भी। इस प्रकार आप उस दशा मे हो जाएगे जिस दशा मे होने से मनुष्य अपने लक्ष्य तक पहुचता है। दूसरे शब्दो मे आप कमर कसकर एक लक्ष्य की ओर ध्यान को केन्द्रित करके लक्ष्य-वेध के लिए तैयार हो जाएगे। बाण-सधान करते समय मौर्वी को आप दृढता से खीचेंगे, उससे हाथ की मासपेशियो का व्यायाम होगा। शरीर का तना स्वभावत तना रहेगा और वक्षस्थल तथा सिर पीछे की ओर तन जाएगे; पैर आगे-पीछे हो जाएगे। मौर्वी को खीचते समय स्वाभाविक रीति से आप अपनी सास को खीचेंगे और जब तक बाण नही छोडते, तब तक सास को भीतर भर रखना पडेगा। इससे फेफडे पूर्ण रूप से खुल जाएगे, छाती चौडी हो जाएगी, पसलिया खुल जाएगी और पेट तो ढीला रह ही नही सकता। जब तक लक्ष्य-वेध नही हो जाता तब तक चित्त एकाग्र रहता है, दृष्टि एकाग्र रहती है, आशा-उत्साह प्रबल रहता है और सफलता की एक ऊची आकाक्षा मन मे रहती है। शारीरिक तथा मानसिक विकास के लिए और क्या चाहिए ? यह ऐसा व्यायाम है जिसको सब स्वय अपने अभ्यास से सीख सकते

---

१. As an antidote for cramped lungs, round shoulders, flabby abdomen and soft muscles, this is a national sport that should be a lot more popular than it is today.

—James Dudley.

है। योग प्राणायाम, व्यायाम, मनोरजन और एक सैनिक कला का ज्ञान—यह सब धनुष चलाने का अभ्यास करने से होता है, इसमें सन्देह नही। हाकी-फुटबाल खेलने की अपेक्षा सरकार विद्यार्थियो को धनुर्विद्या का अभ्यास कराए तो उनको व्यक्तिगत लाभ ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण राष्ट्र को लाभ होगा, क्योंकि भावी नागरिक कम से कम स्वावलम्बी और लक्ष्य-वेध मे पटु होगे। यह स्मरण रखना चाहिए कि धनुष-सचालन के अभ्यास से स्वावलम्बन की भावना स्वतः उद्दीप्त होती है। अपने पैरों पर खडे होकर, अपने बल से ही मौर्वी को खीचकर, अपनी ही एकाग्रता-शक्ति के अनुसार लक्ष्य को भेदकर आप सफलता प्राप्त करते है।

बुद्धि का व्यायाम

बुद्धि के व्यायाम के सम्बन्ध मे भी कुछ जान लेना आवश्यक है। यों तो बुद्धि का व्यायाम ठीक विचार करने और रचनात्मक कार्य करने से हो जाता है, परन्तु उसके कुछ और भी साधन है। एक साधन तो है शतरज खेलना। यह शुद्ध भारतीय खेल है जिससे मनोविनोद के साथ ही बुद्धि का भी विकास होता है। कहते है, रावण ने इसका आविष्कार मन्दोदरी के लिए किया था। बाद मे कूटनीतिज्ञ चाणक्य ने चन्द्रगुप्त की बुद्धि को तीक्ष्ण करने के लिए उसको यह खेल सिखाया। उसके बाद बुद्धकालीन भारत मे इसका प्रचार बढ़ा क्योंकि मनुष्य की युद्ध-प्रवृत्ति को बुझाने का यह अच्छा साधन माना गया। इसकी अहिसात्मक युद्ध-प्रणाली को बौद्धो ने बहुत पसन्द किया। शतरज का पूर्ण परिचय न देकर हम निश्चित रूप से इतना ही कहना चाहते है कि यह एक मनोरंजक और बुद्धिवर्द्धक व्यायाम है।

बुद्धि का सर्वश्रेष्ठ व्यायाम है उपासना

प्रार्थना से देवता वरदान दें या न दे, परन्तु मन उनके तेजोमय

रूप को अपने भीतर प्रतिष्ठापित करके निश्चय ही सबल हो जाता है। उससे आत्मशक्ति की दृढता होती है और चित्त की एकाग्रता बढ़ती है। मनुष्य एक सर्वशक्तिमान ईश्वर की सहानुभूति का विश्वास न करके अपने को स्वय शक्तिमान समझने लगता है और मनोबल से उसका बौद्धिक एव शारीरिक विकास होता है।

विश्राम

स्वास्थ्य के लिए आहार, व्यायाम आदि के समान विश्राम की भी आवश्यकता होती है क्योकि उसीके द्वारा शरीर की खोई हुई शक्ति पुनः वापस मिलती है और शरीर-यन्त्र जर्जर नही होने पाता। मानसिक और शारीरिक परिश्रम मे मांसपेशियो तथा नाडियो पर जो कार्य-भार पडता है उसको हल्का करने का साधन विश्राम ही है। विश्राम से स्नायु-मण्डल दृढ होता है। शरीर, मन दोनो स्वस्थ होकर जीवन-सघर्ष के लिए पुनः समर्थ हो जाते है और धातु-तन्तुओं की क्षतिपूर्ति होती है। इसलिए परिश्रम के बाद विश्राम करना भी आवश्यक है और विश्राम ऐसा करना चाहिए जिससे तन-मन दोनो को पूर्ण शान्ति मिले, क्योकि यही उसकी उपयोगिता है।

मानसिक विश्राम तो बहुत कुछ विषय-परिवर्तन और स्त्री-बच्चों तथा मित्रों के साथ हास्य-विनोद करने से हो जाता है। हसने से भी मन का विश्राम होता है, क्योकि हसी से रक्त का प्रसार बढता है, रक्त की गति तीव्र होती है और मुख्यत. मस्तिष्क का अवरुद्ध रक्त ठीक से प्रवाहित होता है। उससे फेफडे खुलते है और एक-एक नस से दूषित वायु बाहर निकल आती है। इससे मन को शान्ति होती है, बहुत-सी चिन्ताएं हसी की हवा मे उड़ जाती है। किसी भी प्रकार के मनोरंजन से मन को विश्राम मिल जाता है।

पूर्ण विश्राम का प्रधान साधन निद्रा है। स्वाभाविक, मानसिक

तथा शारीरिक शान्ति पूर्ण मात्रा में उसीसे मिलती है। इसलिए उचित मात्रा में प्रगाढ़ निद्रा शरीर के लिए सबसे प्रमुख 'टॉनिक' है। निद्रा के सम्बन्ध मे विशेष रूप से कुछ जान लेना आवश्यक है।

१. निश्चित समय पर स्वाभाविक निद्रा ही स्वास्थ्यप्रद होती है। उसको प्राप्त करने के लिए सुन्दर पलग और बिछौने की उतनी आवश्यकता नही होती, जितनी कि स्वाभाविक आहार और परिश्रम की। पाचन-क्रिया ठीक रखने और दिन मे कुछ शारीरिक परिश्रम करने से रात में अच्छी नीद आती है।

२. नीद एक शारीरिक क्रिया नही, मुख्यतः मानसिक क्रिया है। मस्तिष्क को हल्का करने से ही नीद आती है; मन मे चिंता रहने से वह दूर भागती है। इसलिए लेटने पर किसी ऐसे कार्य की चिता नहीं करनी चाहिए जिसके सुलझाने मे मन को विचार करना पड़े। किसी पुराने विपय को सोचिए; ऐसे विषय को सोचिए जिसमे आपको सफलता मिल चुकी हो; किसी मधुर-स्मृति मे मन को लगाइए। उससे यह होगा कि मन को चिन्तन न करना पड़ेगा; वह सुलझी-सुलझाई बातो का रस लेगा और जानी-बूझी गलियों मे ही घूमेगा। उसपर नये विचारों का दबाव न पड़ेगा और वह रस-मग्न होकर सो जाएगा। मनोवैज्ञानिकों ने निद्रा का यही श्रेष्ठ उपाय बताया है। दूसरा उपाय है सोने के पहले कोई मनोरंजक उपन्यास, कहानी या काव्य पढ़ना अथवा स्वजनो से प्रेमालाप करना। इससे मन किसी गम्भीर चिन्ता में न फसेगा। आयुर्वेद के प्राचीन पण्डित का कहना है कि इन्द्रियों से मन को हटा लेने से ही नींद आती है।

३. वैज्ञानिको ने अनिद्रा के कारण और उसके निवारण के कुछ अच्छे उपाय बताए है। अनिद्रा एक भयंकर रोग है। यदि इसका शीघ्रातिशीघ्र निवारण न किया जाए तो शरीर और मस्तिष्क दोनों

अस्वस्थ हो जाते है तथा बाद में यह किसी भी उपचार से ठीक नहीं हो सकता। आत्मघातियों में अनिद्रा-पीड़ित व्यक्तियों की सख्या काफी होती है। यह रोग प्राय: बुद्धि-सम्बन्धी काम करनेवालों को तथा व्यवसायियों को ही होता है।

अधिक मानसिक परिश्रम और चिन्ता से अनिद्रा रोग होता है। इसका रहस्य यह है : साधारण निद्रा की अवस्था मे मस्तिष्क के रक्त का अधिक भाग वहा से निकल आता है और रक्तवाहिनी नसों का सकोचन होता है। परन्तु जागरितावस्था मे और मुख्यत. विचार करते समय मस्तिष्क की नसो में रक्त प्रचुर मात्रा मे रहता है, इसलिए उनका फैलाव होता है। दोनो अवस्थाओ के ये कार्य प्राकृतिक है। मस्तिष्क से जब रक्त निकल जाता है और नसे सकुचित होती है तभी नीद आती है। अधिक चिन्ता, रात्रि-जागरण और अनवरत परिश्रम से रक्त मस्तिष्क मे निरन्तर भरा रहता है और परिणाम यह होता है कि नसे फैलकर ढीली हो जाती है तथा उनका स्वाभाविक सकोचन नही हो पाता। ऐसी दशा मे वे रक्त को मस्तिष्क से बाहर निकालने मे असमर्थ हो जाती है और रक्त की उष्णता के कारण नींद नही आती। यदि शीघ्र सावधानी न की जाए तो स्नायु-मण्डल अशक्त बना रहता है और आगे उसको ठीक नही किया जा सकता। मूर्खो और दरिद्रो को यह रोग नही होता क्योकि वे बुद्धि पर जोर डालनेवाला कोई कार्य ही नही करते। मूर्ख जब चाहे तब सो लेता है क्योंकि विचार न करने के कारण उसका मस्तिष्क रक्त से सदैव रिक्त रहता है। उसको सोने की ही बीमारी हो जाती है, क्योकि मस्तिष्क की नसे सकुचित ही रहती है।

अनिद्रा में अधिक से अधिक विश्राम लेना ही हितकर होता है। निश्चिन्तता से नसे पुन: स्वाभाविक कार्य करने लगती है। समुद्र की

हवा इस रोग में जादू का सा काम करती है। दिन में सोना, स्वच्छतम वायु का सेवन, घर से बाहर रहना, व्यायाम करना; ये सब इसमें बहुत लाभ करते है। लेटने से पूर्व कोई गरम पेय, मुख्यतः दूध पीने से गरमी पाकर मस्तिष्क का रक्त वहां से नीचे उतर आता है। सोने से पूर्व और जब जगे तब गरम दूध पीना बहुत गुण करता है। गरम दूध पीकर थोड़ी देर गरम पानी में पैर रखने से मस्तिष्क का रक्तप्रसार कम हो जाता है और नीद आ जाती है।

जिस तरह भी हो सके, प्राकृतिक और पर्याप्त विश्राम लेना स्वास्थ्य के लिए परम आवश्यक है। अच्छी नींद के बाद थोड़े समय में भी दूना काम होता है। नींद न आने से दूने समय मे भी आधा काम होता है।

ओषधियां

स्वास्थ्यरक्षक एव स्वास्थ्यवर्द्धक वस्तुओं में हम ओपधियों को भी लेते है। ओषधियों से हमारा तात्पर्य रस-भस्म या काष्ठ ओषधियों से ही नही है। प्राचीन विद्वानों के मत से जिस वस्तु के द्वारा शरीर को आरोग्य प्राप्त हो, वही भेषज है। उनके मत से जल, वायु, ताप, उपवास, मन्त्र सभी भेषज है। सूर्य की किरणें सर्वोत्तम भेषज है। सूर्य से तीन प्रकार की किरणे—तापदायक, प्रकाशदायक और रसायनोत्पादक निकलती है। तीनो स्वास्थ्यकर है। इसी प्रकार वायु आदि के गुण हैं जिनका उल्लेख हम ऊपर यथास्थान कर चुके हैं।

१. वास्तव मे अन्न अर्थात् आहार ही सर्वोत्तम ओषधि है। आहार-सयम और पाचन से यथासभव कोई रोग नही होता और यदि हो भी जाए तो आहार-परिवर्तन से ही वह अधिक सुगमता से ठीक हो सकता है। आहार की कोई साधारण वस्तुएं ही ठीक ढंग से लेने पर चमत्कार करती हैं। उदाहरण के लिए नमक को लीजिए।

मलेरिया में दो तोला नमक भूनकर गरम पानी के साथ पीने से राम-वाण का काम करता है। ज्वर के बाद की निर्बलता में नमक-मिश्रित पानी पीने से शरीर की शक्ति बहुत शीघ्र वापस आ जाती है, क्योंकि ज्वर की दशा में पसीने से शारीरिक नमक का जो व्यय हुआ होता है उसकी पूर्ति हो जाती है। किसी भी समय थकावट या बेचैनी होने पर हल्का नमक-मिश्रित जल पीने से स्फूर्ति आती है। दात के रोगों में नमक और कडवा तेल मिलाकर माजना अद्भुत गुण करता है और यदि उसके साथ एक भाग सोडा-बाईकार्ब भी मिला लिया जाए तो और भी। इसके अतिरिक्त नमक एक सर्वसुलभ जन्तुघ्न ओषधि भी है।

खाद्यपदार्थों में करेले को लीजिए। अभी हाल में 'अमृत बाज़ार पत्रिका' (इलाहाबाद) मे डॉक्टर अग्रवाल नामक एक सज्जन का एक पत्र छपा था। उसमे उन्होंने लिखा है कि करेले के ऊपरी छिलके में मधुमेह को निर्मूल करने की विचित्र शक्ति है। इसलिए करेला प्रत्येक रूप मे मधुमेहियो के लिए लाभदायक है। यदि कोई 'मेही' उसको सुरक्षित रखना चाहे तो उसके छिलके को किसी काठ की छुरी (धातु की छुरी से नही) से छीलकर छाया में सुखा ले और साल-भर खाए। उक्त सज्जन को यह प्रयोग किसी अनुभवी मिस्र-निवासी से ज्ञात हुआ था। उन्होने इसका अनुभव करके देखा है और तभी छपवाया है। ऐसे ही, पपीते को लीजिए। कोष्ठबद्धता के लिए यह राम-रसायन है। कैसा भी जीर्ण कोष्ठबद्ध हो, प्रातःकाल एक छोटे चिम्मच-भर शक्कर मे कच्चे फल का दस-पन्द्रह बूद दूध डालकर पीने से पाचन-क्रिया ठीक हो जाती है। दूध के लिए फल तोड़ने की आवश्यकता नही है। सुई चुभाने से दूध टपक पडता है। नीबू भी प्रात.काल एक प्याले गरम पानी मे लेने से पेट को तथा रक्त को शुद्ध करता है।

ऐसी छोटी-मोटी किन्तु असाधारण वस्तुओं में हम 'लहसुन' को नही भूल सकते। वाग्भट ने उसको अमृत-सभूत रसायनराज माना है: 'साक्षादमृतसभूतेर्ग्रामणीः स रसायनम्।' महर्षि सुश्रुत ने भी उसको बलकारक; बुद्धि, स्वर, वर्ण, चक्षु के लिए उपयोगी; टूटी हड्डी को जोड़नेवाला; हृदय-रोग, जीर्ण-ज्वर, पार्श्वशूल, कोष्ठबद्धता, गुल्म, अरुचि, कास, शोथ, अर्श, कुष्ट, अग्निमांद्य, कृमि, वायु, श्वास और कफ का नाशक कहा है। वास्तव मे यह फेफड़े के रोगों मे, राजयक्ष्मा तक मे, अबलता मे, पेट के कृमि रोग मे और लकवा आदि वात-रोगो मे आश्चर्यजनक लाभ करता है। यह अपने वातारि, श्रोमस्त महौषध, रसायनकर और अस्थिसधानकर आदि नामो को सर्वथा सार्थक करता है। क्षय रोग की प्रारम्भिक दशा मे एक से दस तक कच्चे लहसुन प्रात.काल खाने से उक्त रोग निर्मूल हो जाता है। इसको हम दो-एक व्यक्तियो के अनुभव के आधार पर कह सकते है। पक्षाघात मे लहसुन के दस यव दूध मे पकाकर चालीस दिन तक खाने से स्थायी लाभ होता है, यह भी बहु अनुभूत है। साधारणतया चार यव लहसुन प्रातःकाल बासी मुह रोज खाने से पेट अवश्य शुद्ध रहता है और तेज-ओज की वृद्धि होती है। महात्मा गाधी प्रतिदिन नियमित रूप से लहसुन खाते थे और अन्त तक पूर्ण स्वस्थ थे। वृद्धो के लिए तो यह ओषधि भी है क्योकि उनको वात-विकार होता है और यह वात को हड्डियो तक से निकाल भगाता है। इसको कुछ लोग कामोत्तेजक मानते है, परन्तु गांधीजी ने एक बार कहा था कि लहसुन के नियमित सेवन से मैंने उसको कभी ऐसा अनुभव नही किया।

ओषधियों का निर्देश करना हमारा विषय नही है। हमने प्रसगवश यह दिखलाने के लिए कुछ अनुभूत प्रयोगों का उल्लेख कर दिया है कि साधारण घरेलू वस्तुओ से भी बड़े-बड़े रोगो का मारण-निवारण

हो सकता है। केवल समझ-बूझकर प्रयोग करने की आवश्यकता होती है। ठीक से प्रयोग करने पर संखिया भी अमृत हो जाता है और मूर्खता से मधु भी विष हो जाता है।

२. ओषधियों मे हम उपवास को भी लेते है। उपवास से शरीर की सफाई हो जाती है और पाचनेन्द्रियों को विश्राम मिलता है। अजीर्णता आदि मे लघन विशेष गुण करता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि उपवास मे धातु-तन्तुओ का विनाश होता है और उनके स्थान की पूर्ति सचित मांसपेशियों की धातुओं से होती है। शरीर के साधारण अगों से ही धातु-व्यय अधिक होता है; उदाहरणार्थ—उपवास मे जितने समय में मांसपेशियों का वजन चालीस प्रतिशत घटता है, उतनी देर मे हृदय का तीस प्रतिशत ही घटता है। इसलिए यह भ्रम निकाल देना चाहिए कि उपवास से हृदय दुर्बल होता है। आवश्यक अगों की रक्षा का विधान प्रकृति ने कर रखा है।

३ मन्त्र भी ओषधि-वर्ग में माने गए है। उनपर कोई विश्वास करे या न करे, इतना तो सत्य ही है कि उनमे हृदय को बल, विश्वास और धैर्य देने की शक्ति है। उनसे चित्त मे जो शान्ति और आशा उत्पन्न होती है, उसका लाभ स्वास्थ्य पर अवश्य पड़ता है। शब्द हृदय पर आघात करते है। किसीके लिए आप मंगल-कामना सुमधुर शब्दो में व्यक्त कीजिए तो वह फूल जाता है। किसीको भर्त्सनात्मक शब्द कह दीजिए तो वह बिना काटे ही कट जाता है। इससे शब्दो की मन्त्र-शक्ति प्रमाणित होती है। शब्द अन्तस्तल को स्पर्श करते है और स्पर्श में कितनी शक्ति होती है, इसका अनुभव आप शीत या उष्ण वायु के स्पर्श से कर सकते है। वायु के साथ जब मन्त्रो के मगलमय सुव्यवस्थित शब्द हृदय को छूते है तो हृदय अवश्य आन्दोलित होता है। उन मन्त्रों मे कल्याण की भावना ही तो रहती है। मन्त्र के साथ मांगलिक द्रव्यों

के स्पर्श से भी शरीर को लाभ होता है। इस स्पर्श को भी साधारण न मानना चाहिए। स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के स्पर्श से ही रोमाचित हो जाते है। इसी तरह माता पुत्र के स्पर्श से स्वर्गीय आनन्द का अनुभव करती है। चाणक्य ने लिखा है कि चन्दन का स्पर्श शीतल अवश्य होता है, परन्तु पुत्र का शरीर-स्पर्श उससे भी अधिक शीतल होता है। जिस वस्तु से जिसका अनुराग होता है उसको वही आनन्ददायक होती है।

४. मणि-रत्नों और सुवर्ण आदि धातुओ का प्रभाव भी शरीर के स्वास्थ्य पर पड़ता है, ऐसा कहा जाता है। शास्त्रीय मत से ग्रहो का प्रभाव शरीर पर पड़ता है और मणि-रत्न उन्ही ग्रहों से शक्ति-संचय करते हैं। उनका कुप्रभाव भी पड़ता है। इसमें कहां तक सत्यता है, हम कह नही सकते। जब ठंडे पानी जैसे साधारण पदार्थ के स्पर्श से शरीर में शीतलता आती है और अगों का संकोचन होता है तो हीरे जैसे कान्ति-विशिष्ट पदार्थो के स्पर्श का प्रभाव भी पड़ सकता है। शुक्राचार्य ने अपने नीतिशास्त्र में लिखा है कि पुत्र की कामना करनेवाली नारियों को कभी हीरा न धारण करना चाहिए: 'न धारयेत् पुत्रकामा नारी वज्र कदाचन।' धनी परिवारो मे सन्तान-कष्ट प्रायः रहता है। यह देखना चाहिए कि आभूषणों में हीरा पहनने से तो कही स्त्रियो की गर्भधारण-शक्ति पर प्रभाव नही पडता। स्वर्ण के विषय मे यह कहा जाता है कि वह शरीर को प्राकृतिक विद्युत् से सयुक्त करता है। ऐसा हो या न हो, पर इतना अवश्य होगा कि त्वचा द्वारा स्वर्ण का धातु-अश रक्त से संयुक्त होकर स्वास्थ्यकर होता होगा।

५. स्नान, तेल-मालिश आदि को भी हम ओषधि मे ले सकते है। स्नान के विषय मे हम लिख चुके हैं। तेल-मालिश के सम्बन्ध मे यह

जानना चाहिए कि वह परम-पुष्टिवर्द्धक होता है। पेड़ को जल का सिंचन जितना लाभ करता है, उतना ही शरीर को स्नेह-सिंचन।

६ दवाओ के उपयोग के सम्बन्ध मे कुछ लिखना यहां पर अनावश्यक होगा ; वह वैद्य-डाक्टरो का विषय है। हां, इतना स्मरण रखना चाहिए कि बलाबल के अनुसार ही ओषधियो का सेवन हितकर होता है ; अर्थात् युवक के लिए जो दवा जिस मात्रा मे दी जाएगी उससे बालक तथा वृद्ध की दवा और उसकी मात्रा मे भिन्नता होगी। साथ ही, यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अप्राकृतिक ढग से ली हुई दवाएं स्थायी गुण नहीं करती। जिस देश का जो प्राणी होता है, उसी देश की दवाए उसको स्वभावत. लाभ करती हैं।

स्वास्थ्य-नाश के कारण

सक्षेप मे हमें स्वास्थ्य-नाश के सम्बन्ध में कुछ साधारण कारणो पर विचार कर लेना चाहिए। प्रधान कारण तो रोग ही है। रोग उसको कहते हैं जिसका सयोग मनुष्य को दु.ख दे : 'तद्दुःखसंयोगा व्याधय उच्यन्ते' (सुश्रुत)। यह परिभाषा बहुत व्यापक है। इसके अतर्गत विषय, भोजन, प्रतिकूल जलवायु और कुसगति आदि सभी आ जाते हैं जिनपर ऊपर कुछ लिखा जा चुका है। यहां हम कुछ आवश्यक बातो का निर्देश-मात्र करेगे।

त्रिदोष—आयुर्वेद के मत से वात, पित्त और कफ ये तीन शरीर के मुख्य धारक है। इनके बिना शरीर का होना सभव नही। ये सम-परिमाण में रहते है तो शरीर स्वस्थ रहता है। इनमें से एक भी घटता-बढता है तो शरीर व्याधिग्रस्त हो जाता है। कफ बढने से कफ के अनेक रोग होते है, और पित्त बढ़ने से रक्त के विकार तथा वात से पेट और मस्तिष्क के। जन्म से ही मनुष्य की प्रकृति मे एक न एक की प्रधानता होती है। जलवायु, आहार-विहार और मानसिक व्यतिक्रम

से वे घटते-बढ़ते रहते है। इनमें से सबका विस्तारपूर्वक वर्णन करना यहां सभव नही। उदाहरण के लिए हम वात के विपय मे कुछ बातो का उल्लेख करेगे क्योकि उसका मस्तिष्क से भी विशेप सम्बन्ध रहता है। मस्तिष्क और उससे निकली नाड़ियां इस वात-धातु से बनती है। सोचने-विचारने और सवेदना-सम्बन्धी कार्य इसीके सहारे होते है। शरीर के वायु-सम्बन्धी सभी कार्य शरीरस्थ वात-धातु से होते है।

जिनकी प्रकृति वात-प्रधान होती है वे स्वभाव से ही आतुरमति होते है, ऐसा सुश्रुत का मत है: 'वातलाद्या. सदातुराः।' वाग्भट के मत से वात-प्रकृति के व्यक्ति क्रोधी, चचल, बहुवक्ता तथा सशयालु स्वभाव के होते हैं। ऐसे लोग रुक्ष, बकवादी, जागरणशील और कल्पना-प्रिय होते है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि वृद्धावस्था में मनुष्य के शरीर मे जब वाताधिक्य हो जाता है तो उसके स्वभाव मे यही बातें दिखलाई पड़ती है।

वात-प्रकृति होने का अर्थ यह नही है कि जन्म से ही मनुष्य ये दुर्गुण ले आता है। होता यह है कि जब प्रकृति वात-प्रधान रहती है तो किसी भी कारण से वात के कुपित होने से ये वासनाए भड़क उठती है। कोई वात-प्रकृति का न हो तो भी दुष्ट आहार या अशुद्ध वायु-सेवन अथवा रहन-सहन की गड़वडी से वात-ग्रस्त हो जाता है। वैद्यक मत से वाताधिक्य मुख्यत: इन कारणो से होता है—कडवा, रूखा, कसैला, ठण्डा पदार्थ, सूखा शाक, सांवा-कोदों जैसे भारी पदार्थ खाने से ; अधिक उपवास, अजीर्ण भोजन, अधिक व्यायाम ; मार्ग-गमन, मैथुन, चिन्ता, आघात, शारीरिक पीड़ा, रात्रि-जागरण, मल-मूत्र, शुक्र, वमन, अधोवायु, हिचकी, आसू, उद्गार आदि को बलात् रोकने से और वर्षाऋतु में तथा दिन के तीसरे पहर और वायु का वेग प्रबल

होने पर।

वात-प्रकोप से शरीर मे शूल, श्वास और गठिया आदि तो हो ही जाते हैं, साथ ही मानसिक क्षति विशेष रूप से होती है। उसके बढने से क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध से रक्त उत्तप्त होता है और श्वास का घोर अपव्यय होता है। यही नही, उससे उन्माद हो जाता है। कम से कम सीता को इसका ज्ञान था। लका मे हनुमान को एकाएक सामने देखकर उनको विश्वास नही हुआ और वे सोचने लगीं कि क्या यह मेरा चित्तभ्रम है या वायु का विकार अथवा उन्माद से उत्पन्न विकार है या मृगतृष्णा है :

> किं नु स्याच्चित्तमोहोऽयं भवेद्वातगतिस्त्वियम्।
> उन्मादजो विकारो वा स्यादियं मृगतृष्णिका॥ (रामायण)

वात के कुपित होने पर मनुष्य क्रोधान्ध और उन्मत्त होकर प्रलाप करता है, निरर्थक वाक्य वकता है :

> स्वदेहकुपिताद्वातादसम्बन्धं निरर्थकम्।
> वचनं यन्नरो ब्रूते स प्रलापः प्रकीर्तितः॥ (वैद्यक निघण्टु)

उस अवस्था मे विचारों मे अस्थिरता आ जाती है, बुद्धि मारी जाती है। क्रोध से मोह, मोह से स्मृति-नाश, स्मृति-नाश से बुद्धि-नाश और बुद्धि-नाश से सर्वनाश होता है। क्रोधावेश मे बहुतो को क्रोध-ज्वर, बहुतों को पागलपन और बहुतों को पक्षाघात हो जाता है। क्रोधावस्था मे शरीर का तापमान स्वभावत बढता है और ताप बढने से वायु कुपित होती है, क्योंकि वह स्वय दहनात्मक होती है और तब मनुष्य प्रलाप करता है, जैसे ज्वर मे।

क्रोधी मनुष्य प्राय. वातुल (पागल) या पक्षाघात जैसे रोग से ग्रस्त पाए जाते हैं क्योंकि उनके ज्ञान-ततु वार-वार उत्तेजित होकर शिथिल पड़ जाते है। हिन्दुओं के कर्म-विपाक शास्त्र (कर्मफलोदय)

के अनुसार भी दूसरो का दिल दुखाने, सभा मे अन्यायं, पक्षपात तथा अकारण दोषारोपण करनेवाले के लिए पक्षाघात ईश्वरीय दण्ड माना गया है। ये सव कार्य मनुष्य वात-विकार से ग्रस्त होकर ही करता है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में लिखा है कि प्रायः क्रोधालु राजाओ को प्राकृतिक कोप से नष्ट होते सुना गया है :

प्रायः कोपवशा राजानः प्रकृतिकोपैर्हताः श्रूयन्ते ।

यह प्राकृतिक कोप ऐसी ही आकस्मिक व्याधिया है। इससे बचने के लिए वात-विकार से बचना चाहिए। उससे बचने के आयुर्वेदोक्त उपाय ये है—पेट को साफ रखना, घृत-तेल का नियमित सेवन, उपवास, मधुर अम्ल, लवण और पके द्रव्यो का हलका आहार, तेल-मर्दन, चिन्ता और भय-त्याग। मस्तिष्क पर वायु का प्रकोप होने पर वह प्रायः भय-प्रदर्शन से ही शान्त होता है। यह प्रमाण-सिद्ध है। कोई व्यक्ति जब अनर्गल प्रलाप या क्रोधावस्था मे कोई अपकर्म करने लगता है तो दण्ड के भय से ही वह स्वस्थचित्त होता है। लोग कहते है कि होश ठिकाने आ गए। यह इसलिए होता है कि वायु शमित हो जाती है। उसीको लोग बोलचाल की भाषा मे कहते है कि जब डांट पड़ी तो हवा खिसकने लगी। आयुर्वेदज्ञों ने इस रहस्य का पता पहले ही पा लिया था। आजकल भी नये पागलों का इलाज भय-प्रदर्शन से ही होता है। डाक्टर लोग उनको बिजली की करेण्ट[1] छुआकर भय दिखलाते है और इससे बहुत-से लोग चगे हो जाते है।

इन सब बातो को समझकर अपने को वातग्रस्त होने से बचाना चाहिए। इसी तरह कफग्रस्त और पित्तग्रस्त होने से भी। अब हम अन्य स्वास्थ्य-नाशक विषयों को लेते है।

---

१. Electric-Shock treatment.

विष-सेवन

विष-सेवन से हमारा अभिप्राय उन विषो से है जिनको हम व्यसन-वश प्रतिदिन खाते हैं। मद्य की चर्चा हो चुकी है। दूसरा मुख्य विष तम्बाकू है। तम्बाकू के विषय मे शिकागो के एक शरीर-शास्त्री ने लिखा है कि उसमे होनेवाले 'निकोटीन' नामक पदार्थ मे इतना विष होता है कि उसके एक औंस का $\frac{१}{४००}$ भाग यदि मनुष्य के रक्त में इन्जेक्शन द्वारा मिला दिया जाए तो वह मर जाएगा। इसका $\frac{१}{३}$ भाग प्रत्येक सिगरेट मे रहता है। निकोटीन से हृदय की गति बढती है; चौबीस घटे मे सिगरेट पीनेवाले के हृदय को तीस हजार बार अधिक धडकना पड़ता है।[१]

अग्रेजी के प्रसिद्ध काम-शास्त्र विषयक विश्वकोष[२] में लिखा है कि तम्बाकू से काम-शक्ति घट जाती है। बहुत-से नपुसक जब किसी ओषधि से चगे नही हुए तो उनसे सिगरेट का परित्याग करवाके देखा गया। परिणामतः वे पुनः पुरुषार्थी हो गए। उसमे एक लोक-प्रचलित उक्ति का उल्लेख है, जिसका अर्थ है कि तम्बाकू और स्त्रियां परस्पर शत्रु है; एक के प्रति अनुराग होने से दूसरे के प्रति अनुराग नष्ट हो जाता है।[३]

१ If less than four hundredth part of an ounce of Nicotine were injected into a man's blood, he would die, and there is about one-third of this quantity in every cigarette smoked. Nicotine excites the heart to go faster In the course of 24 hours, a smoker's heart may have to beat 30,000 extra time.

—Dr. Steinhans. (Chicago.)

२. Encyclopaedia of Sex.

३ Tobacco and woman are enemies A taste for one spoils the taste for the other.

टाल्स्टाय का अनुभव था कि तम्बाकू से विवेक-शक्ति नष्ट हो जाती है। उनके अनुसार रूस के अधिकांश नरघातियो में सिगरेट पीने के बाद ही हत्या करने का दुस्साहस उत्पन्न होता था। निकोटीन से मुख्यतः स्मरणशक्ति नष्ट होती है, फेफड़े भ्रष्ट होते है और आहार-पाचन मे कष्ट होता है। तम्बाकू खाने या पीने से दांतों की चमक जाती रहती है और मुख दुर्गन्धित हो जाता है। कम से कम सिगरेट एक भयकर व्यसन है। १९१६ के विश्व-युद्ध के कामुक जीवन पर अंग्रेज़ी मे एक प्रामाणिक ग्रथ[1] है। उसमें लिखा है कि फ्रांस आदि देशों मे सिगरेट का अभाव हो जाने पर वहा की तरुणियां एक-एक सिगरेट लेकर अपना सतीत्व सिगरेटदाता को किराये पर दे देती थी। सिगरेट से उद्दण्डता और निर्लज्जता दोनों की भावनाए जगती हैं।

पान को हम विषो मे ले सकते है। एक सीमा तक तो वह मुख-रंजक ही नहीं, कान्तिवर्द्धक, उद्दीपक और रक्तशोधक भी होता है। पर व्यसन बढने पर यह भूख को मारता है, रक्त को रुक्ष करता है और दांतो को निर्बल करता है। पान की जड़ में भयंकर विष होता है। उसके विषय में प्रसिद्ध है कि उसका चूर्ण फांक लेने से स्त्रियो की गर्भधारण-शक्ति सदा-सर्वदा के लिए जाती रहती है। ऐसी दशा मे पान खाने का कुप्रभाव कम से कम स्त्रियों पर तो अवश्य पड़ता होगा। ऋतुकाल मे स्त्रियो को पान खाना वैद्यक में वर्जित है। विलासिनी स्त्रियां पान अधिक खाती है। उनकी गर्भधारण-शक्ति पर इसका प्रभाव अवश्य पड़ता होगा।

वनस्पति घी भी एक प्रकार का विष ही है। आजकल घी की जगह उसीका व्यवहार होता है। शुद्ध घी अमृत माना गया है। वह इतना

---

१. Sexual Life during the World War.

विषघ्न होता है कि उससे सर्प-विष तक शमित हो जाता है। उससे आयुर्बल बढ़ता है। उसका एक सस्कृत नाम ही आयु है। पुष्ट, कान्ति, मेधा बढाने में वह अप्रमेय है। वनस्पति घी उसका स्थान इन बातों मे नही ले सकता, हलवाई की दुकान मे भले ही ले ले। इस कृत्रिम घी से पाचन-शक्ति स्वय पच जाती है, पुसत्त्व का सत्त्व निकल जाता है और दृष्टि का धीरे-धीरे लोप हो जाता है। जीवो पर इन बातो की वैज्ञानिक परीक्षा की गई है। दो-तीन पीढी के बाद उनके वशधर नपुंसक और अंधे मिलते हैं।

आलस्य

आलस्य भी स्वास्थ्य-नाशक होता है क्योकि उससे अनावश्यक स्थूलता बढती है, हृदय रक्त प्रसारित करने मे असमर्थ हो जाता है और शरीर में भारीपन आ जाता है। आलसी दिन-भर पड़ा रहता है, इससे उसकी आयु तीव्रता से क्षीण होती है। वैज्ञानिक परीक्षा से यह ज्ञात होता है कि खड़े या बैठे रहने पर हृदय को उतना नही धड़कना पडता, जितना कि लेटने पर।

सुप्रसिद्ध 'मेट्रोपॉलिटन बीमा कम्पनी' ने हिसाब लगाकर प्रकाशित किया है कि आत्महत्या का प्रधान कारण आलस्य है। आलस्य और अकर्मण्यता से ही यह प्रवृत्ति उठती है। उक्त कम्पनी की गणना के अनुसार क्षीणकाय व्यक्तियो की अपेक्षा मोटे आत्मघातियो की सख्या अधिक है।

आलस्य और स्थूलता, सरल आहार व परिश्रम से ही नष्ट होते है। प्रातःकाल मधु-मिश्रित या नीबू-मिश्रित पानी पीना इसमें गुण करता है। नहाने के पानी मे एक नीबू निचोड़कर स्नान करने से भी लाभ होता है। उससे एक लाभ यह भी होता है कि चमड़े पर झुर्रिया नही पड़तीं और त्वचा का रग निखरता है।

कोष्ठबद्धता

कोष्ठबद्धता के सम्बन्ध में हम ऊपर कुछ लिख चुके है। यह रोग रक्त को दूषित करता है और शरीर को जीते-जी सड़ाता है। ज्वर आदि का जननी-जनक यही होता है। 'आंत भारी तो माथा भारी' की उक्ति सर्वविदित है। त्रिफला-सेवन इसकी एक अच्छी ओपधि है। आधुनिक उपचारो में 'एनिमा' का प्रयोग सर्वोत्तम है।

आहार-विरह

ठीक समय पर अथवा क्षुधा-भर को आहार न प्राप्त होने से भी शरीर का नाश होता है। इसको प्रमाणित करने की आवश्यकता नही क्योंकि भारतवर्ष मे असंख्य आहार-विरही मिलते है, जिनकी दशा से इसके कुप्रभाव का अनुमान किया जा सकता है।

इसी प्रकार कई कारणों से स्वास्थ्य-नाश होता है, जिनमें से एक तो अस्वच्छ रहन-सहन और बाजार का गन्दा खाना है। मक्खियों से जितना नाश होता है उतना मानव-विनाश सभवतः तोप के गोलो से भी नही होता! दूषित जलवायु से भी स्वास्थ्य-नाश प्रत्यक्ष ही होता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि जलवायु का प्रभाव शरीर पर ही नही, मस्तिष्क पर भी बहुत पडता है। उससे मनुष्य का स्वभाव ही बदल जाता है। वैज्ञानिक परीक्षा से देखा गया है कि आवश्यकता से अधिक शीत-सेवन से ज्ञान-ततु स्वच्छन्द हो जाते हैं और स्वभाव मे निर्लज्जता आ जाती है। उष्ण जलवायु से स्वभाव मे कर्कशता, झुंझलाहट, आलस्य, थकावट, बेचैनी और स्नायविक शिथिलता उत्पन्न होती है और चित्त की एकाग्रता नष्ट होती है। यह ऑक्सीजन का खेल है।

स्वास्थ्य की परीक्षा

अन्त मे हमे यही कहना है कि सब बातो को ध्यान मे रखकर अपने स्वास्थ्य की रक्षा करनी चाहिए और अपने शरीर को इतना समर्थ

बनाना चाहिए कि वह औरों का नहीं, तो कम से कम अपना बोझ स्वयं उठा सके। इसके लिए अपने त्रिमर्म—हृदय, मस्तिष्क, फेफड़े—का ध्यान रखना चाहिए क्योंकि वे ही प्रधान शरीर-सचालक है; और रक्त की रक्षा करनी चाहिए क्योंकि सुश्रुत के शब्दों में रुधिर ही शरीर का मूल है, वही शरीर को धारण करता है। वास्तव मे, वही जीवन है। स्नायु-मंडल सुदृढ़ रखना चाहिए क्योकि वही शरीर-जाल को बुनते है। नाना उपायो से रोज स्वास्थ्य की परीक्षा करनी चाहिए। उदाहरणार्थ, —सिर भारी हो, जीभ गन्दी हो तो आतो का भारीपन समझना चाहिए। अत्यधिक उत्तेजना या शिथिलता से स्नायु-दुर्बलता तथा लाल-पीले या जलनयुक्त मूत्र से अस्वास्थ्य और बिना फेन के मूत्र से पुरुषत्व-विनाश मानना चाहिए।

४. सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति

सुप्रसिद्ध नीतिकार भर्तृहरि ने लिखा है कि जिसके पास धन है वही कुलीन है, वही पण्डित, विद्वान, गुणज्ञ, वक्ता एवं रूपवान माना जाता है; धन से सब गुणों को आश्रय मिलता है। वास्तव में धन ही मनुष्यों का ऐश्वर्यदाता, सहायक, बन्धु, सकट-मोचन और अलादीन का चिराग है। उसीसे जीविका चलती है, प्रतिष्ठा बढती है, मनोरथों की पूर्ति होती है। अनुभवी व्यास ने सत्य ही कहा है कि धन का न होना पुरुष की मृत्यु है: 'पुरुषस्याऽधन वधः' [उद्योग-पर्व] नीति के इस कथन को कौन शरीरधारी अस्वीकार करेगा कि निर्धनता ही सर्वाधिक कष्ट-दायिनी होती है: 'सर्वकष्टा दरिद्रता।'

द्रव्योपार्जन करना मनुष्य का एक व्यक्तिगत धर्म है, क्योकि बिना उसके जीवन की क्रिया नहीं चल सकती। इस पृथ्वी का नाम वसुमती (अर्थात् धनवाली) है। इसमें जो वसुता नही प्राप्त करता वह भौतिक जीवन का आनन्द नही पा सकता। जो वसुमत् (धन-सम्पन्न) होता है, वही वसुमती का भोग करता है; जो वसुकीट (भिक्षुक) होता है, वह 'नानारत्ना वसुन्धरा' [कालिदास] में भी नरक का जीवन भोगता है। लौकिक जीवन की ऐसी ही व्यवस्था है।

धनोपार्जन एक बड़ा स्वार्थ ही नही बल्कि परमार्थ भी है। वह एक श्रेष्ठ राष्ट्र-धर्म है। राष्ट्र व्यक्तियों से ही बनते है। अतएव व्यक्तियों की सामूहिक सम्पन्नता-विपन्नता का प्रभाव राष्ट्र की दशा पर पड़ता है। जब देश धनधान्य से समृद्ध रहता है तो उसकी सभ्यता एवं स्वतन्त्रता का विकास होता है, राष्ट्र शक्तिशाली होता है, समर्थ और शान्तिमय होता है। राजनीतिक परिस्थिति के ठीक पीछे आर्थिक

परिस्थिति खड़ी मिलती है। युद्धो में भी सैन्य-बल के पीछे राष्ट्र का धन-बल ही रीढ़ बनता है। देश की आर्थिक स्थिति ठीक न हो तो सेनाए अधिक समय तक मैदान मे खडी नही रह सकती। लोग जब भूखे रहते है तो राष्ट्र के नियम ढीले पड़ जाते है, लोक-मर्यादा टूट जाती है, विद्रोह होता है, अनाचार बढता है। 'क्षीणा नराः निष्करुणा भवन्ति' का अनुभव करके ब्रिटिश गवर्नमेण्ट भारतवर्ष से उजड़ चुकी है।

सभी दृष्टियो से धन-सचय करना मनुष्य का परम कर्तव्य है। तत्त्व-ज्ञानियो का यह मत है कि धन से धर्म होता है और उससे सुख— 'धनाद्धर्म ततः सुखम्।' वैरागियो की तरह धन को पाप का मूल मानना मूर्खता है। धन पाप का बाप नही होता, बल्कि उसका न होना मनुष्य से पाप कराता है। पाप की खेती निर्धनता ही मन मे पनपती है, क्योंकि तब कष्ट से उत्पन्न आसुओ की बरसात होती रहती है। निकम्मा आदमी अपने ही साथ नही, देश और समाज के साथ भी अपराध करता है, क्योकि वह स्वय कुछ न कमाकर दूसरे के धन का उपभोग करता है और राष्ट्रीय सम्पत्ति को क्षीण करता है। जो धन-सग्रह के लिए उद्यत रहता है, वह अपने पौरुष से स्वयं तथा देश-समाज का भी कुछ न कुछ कल्याण करता है। यही मानिए कि धन से ही लोक-जीवन का कल्याण होता है। प्रकृति यही चाहती है कि आप निर्धन न बने। शेखसादी के शब्दों मे : 'सूर्य-चन्द्र सब इसीलिए कार्य-मग्न है कि आपको खाने के लिए रोटी मिलती रहे, धन मिलता रहे।'

धन-प्राप्ति के साधन

अब धन-प्राप्ति के साधनो पर विचार कीजिए। भाग्य से भी धन मिलता हुआ देखा जाता है, परन्तु भाग्य एक ऐसा बल है जिसपर किसीका स्वतन्त्र अधिकार नहीं होता। अतएव भाग्य के भरोसे अकर्मण्य

बनना ठीक नहीं। तुलसी का मत है कि घर में कल्पतरु एव कामधेनु के चित्र टांगने से विपत्ति-नाश नही होता : 'चित्र कल्पतरु कामधेनु गृह लिखे न विपति नसावै'। कौटिल्य का भी मत है कि धन, धन से ही पैदा होता है, तारे बेचारे क्या सहायता करेगे : 'अर्थो ह्यर्थस्य नक्षत्रं किं करिष्यन्ति तारका:'। हमें यही मानना चाहिए कि बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य से धन पैदा होता है और पैदा होने पर उससे उसीकी वृद्धि होती है। परिश्रम पैसे का पिता है।

कार्य या परिश्रम व्यापार के रूप में भी हो सकता है और नौकरी के रूप में भी। सेवा-वृत्ति को शास्त्रों ने हेय माना है। इसमे सन्देह नहीं कि यथेच्छ धन का अर्जन और उपभोग व्यापार से ही हो सकता है।

जो सम्पत्ति का पूर्ण उपभोग करना चाहे, उसे व्यवसाय को ही धनागम का साधन बनाना चाहिए। व्यवसाय चाहे छोटा ही हो, नौकरी से अधिक फलप्रद और आशाप्रद होता है। दासता में पराधीनता रहती है, इसलिए अपने को दूसरों के अनुकूल बनाने में बड़ा कृत्रिम रूप बनाना पड़ता है।

इन बातों को ध्यान में रखिए

परिस्थितिवश आप चाहे व्यापार करे या नौकरी, यदि आप उन्नति करना चाहते है तो इन बातों को ध्यान मे रखिए :

१. किसीके हाथ अपने आत्माभिमान और अपनी नैतिकता को न बेचिए—चाहे आप नौकरी या व्यापार करते हों अथवा करने निकले हों, अपने मनुष्योचित आदर्शो को न भूलिए। नैतिक पतन होते ही मनुष्यता पतित हो जाती है। ऐसा कार्य न कीजिए जो आत्मा के प्रतिकूल हो। धन से सब कुछ खरीदा जा सकता है, परन्तु किसी भले आदमी की मान-मर्यादा नही खरीदी जा सकती।

२. दूसरो की दया-कृपा पर अवलम्बित न रहिए—दूसरो मे हम भाग्य को भी लेते हैं। भाग्य से अच्छी नौकरी मिल सकती है, अथवा व्यापार के लिए अच्छा अवसर प्राप्त हो सकता है, पर उसके उपयोग मे उसकी (भाग्य की) सहायता काम नही देगी। आत्मयोग्यता से ही अच्छे पद या अच्छे अवसर का लाभ लिया जा सकता है। दूसरो मे हम मित्रो और बड़े आदमियो को भी लेते हैं। वे एक सीमा तक ही आपके सहायक हो सकते है। यदि आपमें आत्म-समर्थता न होगी तो वे आपकी रीढ नही बन सकते। अग्रेजी मे एक कहावत है कि भगवान उन्हींको सहायता देता है जो स्वावलम्बी होते है।[१] एक सुप्रसिद्ध विलायती विचारक (सर विलियम टेम्पल) का यह अनुभवात्मक कथन इस सम्बन्ध मे याद रखने योग्य है :

"ऐसा व्यक्ति जो केवल ग्रथो का अनुवाद करता है, कभी कवि अर्थात् मेधावी नही हो सकता; ऐसा व्यक्ति जो केवल दूसरों के चित्रो के आधार पर चित्र बनाता है, कभी चित्रकार अर्थात् कलाकार नहीं हो सकता; ऐसा व्यक्ति जो केवल वायुगर्भित रबर की थैली के सहारे तैरता है कभी तैराक अर्थात् पारगत नहीं हो सकता, उसी तरह जो लोग अपने व्यवसाय अर्थात् परिश्रम पर अवलम्बित न होकर केवल दूसरों की सहायता के भरोसे रहते है, वे सदैव दरिद्र अथवा द्रव्य-सकट मे ही रहेगे।"[२]—'काकी प्रभुता नहि घटी परघर गए रहीम।'

अतएव स्वावलम्बी बनिए, दूसरो का मुंह न ताकिए; दूसरो का

---

१. God helps those who help themselves.

२ A man that only translates shall never be a poet, nor a painter that only copies, nor a swimmer that swims always with bladder, so people that trust wholly on others' charity and without industry of their own will always be poor.

मुह ताकना श्वान-वृत्ति है। मुह देखने का आनन्द तभी आता है, जब दोनो ओर से हो, अर्थात् कोई आपकी उपयोगिता को देखे और आप उसकी जेब को सच्ची नजर से देखे।

३. भूलकर भी सतोष न कीजिए—साधुओं की दृष्टि मे 'सतोषः परम सुखम्' एक अच्छा सिद्धान्त हो सकता है, परन्तु सांसारिक मनुष्य के लिए सतोष करने का अर्थ है जड़ होकर बैठ जाना। जड़ता या स्थिरता कम से कम लक्ष्मी को प्रिय नहीं है, वे महाचचला हैं। उनके साथ दौड़ने पर ही उनका साहचर्य प्राप्त होता है। उसीसे आशा बनी रहती है और आशामय जीवन ही सबसे सुखी जीवन है। संतोषी होकर निराशावादी या निराशावादी होकर सतोषी न बनिए। इच्छाशक्ति को प्रबल और चैतन्य रखिए।

४. भविष्य को देखिए—यदि आपमें आशा की एक भी चिनगारी है तो भविष्य को देखिए, क्योकि आज के बाद का प्रत्येक क्षण आपको उसीमे बिताना है। उसपर आपका कुछ अधिकार है और वह आपके बनाने से बन भी सकता है। समय से आगे सोचने-विचारनेवाला नेता ही अग्रगामी माना जाता है। अतएव यदि आप अपने क्षेत्र के नेता बनना चाहते है तो आज से दस वर्ष बाद का कार्यक्रम बनाकर तब चलिए; उसी तरह चलिए जैसे एक स्थान से दूसरे स्थान की रेल-यात्रा करते समय आप मार्ग की सारी तैयारी करके और निश्चित स्थान का टिकट लेकर चलते है। भविष्य को देखिए परन्तु अधकारमय भविष्य को नही।

५. समय को पकड़िए—समय सबसे बड़ा सेठ है। वह एक ऐसा सेठ है जो बड़ी-बड़ी जुल्फे रखकर चलता है और पीछे से खल्वाट है। सामने से पकड़ने पर ही वह पकड़ मे आता है। उसके पीछे दौड़ने से अवसर हाथ से निकल जाता है और समय के पीछे रहनेवाला व्यक्ति

बैठकर पछताने के सिवा कुछ नही कर सकता। अंग्रेजी मे एक कहावत है कि समय ही धन है।[1]

हमारे शास्त्रों में भी महाकाल की बडी महिमा गाई गई है। उसका अभिप्राय यही है कि समय बड़ा बली है, उसका सम्मान करना चाहिए। सम्मान-स्वागत आगे बढ़कर ही किया जाता है। पीठ पीछे प्राय· निन्दा ही होती है। समय की बलवत्ता इससे सिद्ध होती है कि वह सबको परिवर्तित एव व्यतीत करता है। वह आयु को भोगता है। काल-स्वामी सूर्य प्रत्येक दिन सबकी आयु का एक भाग लेकर तभी अस्त होता है। जब वह आपसे कुछ लेता है, तो बुद्धिमानी इसीमे है कि आप भी उससे अपनी आयु का उचित मूल्य ले, अपनी वस्तु को व्यर्थ न जाने दे।

अतएव एक-एक घण्टा और एक-एक क्षण को पकडिए। पकड़ने का अर्थ है प्रत्येक क्षण कुछ न कुछ करते रहना। कुछ करते रहने का अर्थ खुराफात करना नही, वल्कि कोई न कोई उपयोगी कार्य करना है। वे क्षण ही आपके लिए मूल्यवान हो जाएगे। बुद्धिमान का एक घण्टे का जीवन मूर्ख के सम्पूर्ण जीवन के बराबर माना जाता है, क्योकि बुद्धिमान व्यक्ति उस एक घण्टे का उचित उपयोग करना जानता है और करता भी है। अतएव एक मिनट को भी व्यर्थ व्यतीत न होने दीजिए। आवश्यक कार्यों मे 'कभी' की अपेक्षा 'अभी' को अधिक महत्त्व दीजिए। दुनिया बडी तेजी से भागती है; एक मिनट मे वह कहीं से कही एक दूसरे वातावरण मे चली जाती है। अतएव यथासम्भव कामो को वादे पर न टालिए। तत्काल करने योग्य कामो को तत्काल कीजिए। कल का दिन अपने अनेक झझटो को लेकर आएगा, यही

---

१ Time is money.

मानिए। 'शुभस्य शीघ्रम्' की नीति को अपनाइए।

स्वर्ण-सयोग की प्रतीक्षा न कीजिए। स्वर्ण-सयोग अपने-आप नही आ सकता। उसका बीज यदि आप आज बोइएगा तभी वह कल फला हुआ मिल सकता है। यही प्रकृति का नियम है। 'कल' का विधाता या पिता 'आज' आज ही निर्बल होगा तो उसका पुत्र 'कल' भी जन्म से निर्बल होगा। भविष्य के भरोसे बैठना मूर्खता है। भविष्य का थोडा भाग तो अपने प्रत्येक क्षण और प्रत्येक घण्टे के बाद तत्काल प्राप्त होता है। उसको अपने से दूर न मानना चाहिए और अपने लक्ष्य पर वही से चल पडना चाहिए जहां आप खड़े है। एक विद्वान ने कहा है कि जीवन-यात्रा का मार्ग ठीक वही से प्रारम्भ होता है, जहा आप खड़े हैं।

भविष्य स्वर्ण-अवसर तभी बन सकता है जबकि आप स्वय उसके लिए तैयार मिले। इग्लैण्ड के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री डिज़रायली ने कहा है कि जब अवसर आए तब उसके लिए तैयार मिलना ही मनुष्य की सफलता का गुप्त रहस्य है।[1]

यह तैयारी आज से ही शुरू करने से पूरी हो सकती है। आग लगने पर आप कुआ खोदने दौड़ेंगे तो उससे आपका घर नहीं बच सकता। परिस्थिति के पूर्व तैयारी करने ही में बुद्धिमानी है। साधनो का सचय आज ही से करने से ठीक अवसर पर उनका उपयोग हो सकता है। अतएव दूरदर्शी बनिए। आंखे इतनी ऊचाई पर इसीलिए रखी गई है कि मनुष्य दूर तक देख सके।

६. समय को पहचानिए—समय का सम्मान करने के साथ ही उसको पहचानने का भी अभ्यास कीजिए। समय को पहचानना या

---

१ The secret of success for a man is to be ready for his opportunity when it comes —Disraeli.

पढना सरल नहीं है, क्योंकि वह सर्वदा एक-सा नहीं रहता, बदलता रहता है। पचाग, कलेण्डर वा घड़ी के सहारे नही, बल्कि उसके प्रभाव के आधार पर उसकी गति को पहचानिए। कालज्ञ होना एक महान गुण है, इसीलिए प्राचीन विद्वानो को कालदर्शी या त्रिकालदर्शी कहा जाता था। समय को पहचानकर उसके अनुसार आचरण करनेवाला ही सर्वसफल होता है। समय को, परिस्थिति को शीघ्र पहचानने-वाला ही प्रत्युत्पन्नमति होता है। उसको ठीक पहचानकर उसके अनु-कूल अपने जीवन में परिवर्तन करना चाहिए। इसका अर्थ अवसरवादी होना नहीं, बल्कि कालानुवर्ती बनना है। समयानुसार विचार करना, व्यवहार करना और कर्म करना सफलता का साधक होता है। अत-एव समय को पढ़िए। उसको पढने का मुख्य साधन है, आपका विवेक; वाह्य साधन है, अखबार। पचांग से काल-ज्ञान प्राप्त करने की अपेक्षा अखबार से प्राप्त कीजिए। पचाग पण्डितों के काम की वस्तु है; व्यव-सायी और कर्मचारी की पोथी अखबार ही है।

समय को क्यो पढना चाहिए, इसके मर्म को सरदार पटेल के निम्नलिखित वाक्यों से समझिए। मत्स्य-राज्य का निर्माण करके सर-दार ने १५ जुलाई, १९४८ को राज्योद्घाटन करते हुए यह कहा था : "आधुनिक जगत् प्राचीन जगत् से भिन्न है, पहले हर चीज धीरे-धीरे निश्चित गति से चलती थी इसलिए अधिक अवकाश रहता था; अब एक दिन एक शताब्दी के बराबर हो गया है; देखते ही देखते कितने राज्य, कितने ही साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट होकर लुप्त हो गए; कौन नही मानेगा कि समय के पख नही होते है और इसको देखते हुए समय की प्रतीक्षा में बैठना या उसको गवाना कौन पसन्द करेगा ?"[1]

---

१. The world today is different from the world of yester-day. Things could move slowly and steadily in the old world

आधुनिक काल को देखिए जिसमें आपको रहना है। इस दृष्टि से देखिए कि यह वायुयान-युग है, बैलगाड़ी-युग नही। अल्प समय मे युक्ति या शक्ति अथवा दोनो से आप जितना अधिक कार्य कर सकेंगे उतना ही आपका मूल्य बढ़ेगा। समय के इस बडे विभाजन के ही नही, उसकी नवीन परिस्थितियों के प्रति भी सजग बनिए। सक्षेप मे, सूक्ष्मदर्शी बनिए—समय के सम्बन्ध ही मे नही, प्रत्येक उपयोगी वस्तु के सम्वन्ध मे। देश-काल को सूक्ष्म दृष्टि से देखिए; प्रत्येक कार्य को सामयिकता और उपयोगिता की दृष्टि से देखिए।

७. मन की शक्तियों को चैतन्य रखिए—चाहे आप व्यवसायी हो अथवा कर्मचारी, अपने आत्मविश्वास को सदैव दृढ रखिए। अपने को असमर्थ न मानिए। जीवन की महान भूल वही होती है जहा मनुष्य अपने को असमर्थ और निस्सहाय मानकर हताश हो जाता है। हार मानने की मनोवृत्ति का त्याग करके उत्साही बनिए और यह निश्चय कीजिए कि आपको सफल बनना है, कुछ करके दिखाना है। निश्चय करके ही मनुष्य मे आत्म-बल आता है। अपनी कल्पना-शक्ति को दौडाइए; परन्तु सप्रयोजन। कल्पना-शक्ति मे भी बड़ी शक्ति है। आगे की सीढी वही ढूढ़ती है। उसके बाद विवेक का आश्रय लीजिए। वही आपकी कल्पना द्वारा ढूढी हुई सीढ़ियो मे ठीक सीढी का निर्णय कर सकेगा। अपनी स्मरणशक्ति को सबल वनाइए—परन्तु व्यर्थ की वातों को याद रखने के लिए नहीं। विवेकपूर्वक अनुभवसिद्ध उपयोगी वातो को ध्यान में रखिए। अपने विचारों को

---

where there was more leisure and less speed Today, one day is equal to a century See how overnight states have fallen and empires have vanished Who can say then that time does not fly and that we can afford to wait

इनका अभ्यस्त बनाइए कि वे किसी वस्तु के यथातथ्य रूप को तत्काल पहचान सके। सफलता के लिए यथातथ्य ज्ञान, सफलता मे विश्वास और उच्च कल्पना-बल—इन तीनो का आश्रय लेना आवश्यक है। और सबसे अधिक आवश्यक है—साहस।

महर्षि व्यास ने महाभारत में लिखा है कि साहस ही मे लक्ष्मी निवास करती है। भीरुता एक विनाशात्मक भावना है। जो भी बडे-बडे व्यवसाय आज खडे मिलते हैं, वे साहस से ही खड़े किए गए थे। यदि आवश्यकता से अधिक सावधानी का ध्यान रखा जाता तो एक फैक्ट्री भी खड़ी नही हो सकती थी। रणक्षेत्र और व्यावसायिक क्षेत्र दोनों ही मे साहस की आवश्यकता होती है, क्योकि दोनों मे सघर्ष और प्रतियोगिता की भावना रहती है। आत्मरक्षा का विशेष ध्यान रखने-वाला व्यक्ति बहुत आगे नहीं जा सकता। यदि आप विजयी होना चाहते हैं तो बाहे चढाकर साहस के साथ कर्मक्षेत्र में खडे होइए, परिस्थितियो से सघर्ष कीजिए और साथ ही धैर्यसहित जमे रहिए। साहस-धैर्य प्राय: कभी विफल नहीं होते। मन को इतना बलवान बनाइए कि उद्देश्य की प्राप्ति तक मनोयोग ढीला न पडे।

८. सहनशील और प्रयत्नशील बनिए—सहनशीलता धैर्य से ही आती है। उसका अर्थ यह नही है कि कोई आपका अपमान कर दे तो आप विष का घूट पीकर बैठ जाए। उसका प्रयोजन है स्थिरमति होकर शान्तिपूर्वक प्रत्येक बात को सुनना, समझना तथा विवाद के प्रसग को बचाना। सहनशील होकर प्रयत्नशील होने पर कार्य निर्विघ्न रूप से समाप्त होता है।

९. व्यवहारकुशल बनिए—व्यापार मुख्यत: व्यवहार से चलता है। उसका एक सस्कृत पर्यायवाची शब्द ही व्यवहार है। व्यापारी को व्यवहारक कहते है। व्यवहार मे सत्य और विश्वास का सदैव ध्यान

रखिए क्योकि इन्हीके द्वारा ससार का व्यापार चलता है। छल-कपट का व्यवहार अर्थ-नाशक होता है। किसी व्यवसाय की साख जम जाने पर बाद मे उसका नाम ही बिकता है। साख उखड जाने पर उसका सामान बिकता नही, नीलाम भले ही हो जाए। साख सच्चे व्यवहार से जमती है। व्यापार मे कृत्रिमता की मिलावट वही तक कीजिए जहा तक अनिवार्य है। धोखा देना लक्ष्मी को डडे मारकर घर से खदेड़ना है। विश्वासपात्रता लक्ष्मी की मां है।

व्यक्तिगत रूप से भी व्यवहारकुशल होना अर्थ-सिद्धि का प्रथम सोपान है। व्यवहार के सौजन्य से कौन नही वश में होता ! लिवर-पूल के एक सुप्रसिद्ध व्यापारी से किसीने पूछा कि आपने इतना धन किस व्यापार से कमाया ? उसने उत्तर दिया कि केवल एक वस्तु के व्यापार से, जिसको आप भी कर सकते है ; वह है सौजन्य विनम्रता। अमरीका के धनकुबेर रॉकफेलर ने कहा है कि व्यवहारकुशलता उसी प्रकार एक खरीदने योग्य वस्तु है जैसे चीनी या कॉफी ; और मैं उस योग्यता के लिए ससार की किसी भी वस्तु से अधिक मूल्य देने को तैयार हूं।[१]

धन कमाने के लिए विद्वान होना उतना आवश्यक नही जितना व्यवहारकुशल।

१० सिद्धहस्त बनिए—धन ज्ञान से नही, ज्ञान के प्रयोग से मिलता है। अतएव शुद्ध ज्ञानी न बनकर कर्मयोगी बनिए। सक्षेप मे योगी बनिए, ऋषि बनिए, आर्य बनिए और शाक्त बनिए—तभी धन मिल

---

१ The ability to deal with people is as purchasable a commodity as sugar or coffee, and I will pay more for that ability than for any other under the sun.

—Rockfeller.

सकता है। इसका यह अर्थ नही है कि मन्दिर में बैठकर 'सबके दाता राम' से धन मागिए। इन शब्दों से भडकने की आवश्यकता नहीं है। कार्यकुशलता को ही योग कहते है : 'योग. कर्मसु कौशलम्।' और गीता के अनुसार जीवन-धारण के लिए शारीरिक व्यापार का नाम कर्म है। योग कोई जादू नही है। ऋषि 'ऋष्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है गति ; और व्याकरण पण्डितों के मत से गति का अर्थ है ज्ञान, गमन और प्राप्ति। आर्य भी 'ऋ' धातु से बना है, जिसका अर्थ है गति। जिसके द्वारा कर्म सम्पन्न हो—योग्यता, सामर्थ्य—वही शक्ति है। उसकी साधना करनेवाला शाक्त है।

कार्य द्वारा ही ज्ञान और शक्ति का विज्ञापन हो सकता है और कम से कम इस विज्ञान के युग मे उसीसे धन प्राप्त हो सकता है। अतएव केवल ज्ञान-श्रेष्ठता पर विश्वास करके न बैठिए। योजनानुसार हाथों को चलाइए और विद्वान व्यास के इस नीति-वाक्य को ध्यान मे रखिए कि कामकाजी आदमी बलवान और धनवान होता है, इसमे सन्देह नही : 'पाणिवन्तो बलवन्तो धनवन्तो न सशय.।'

११. रुचि और योग्यता के अनुकूल लगन से कार्य कीजिए—पहली बात तो यह है कि आप ऐसे व्यवसाय को ही यथासम्भव चुनिए जो आपकी रुचि और योग्यता के अनुकूल हो। ऐसा न होगा तो आप उस व्यक्ति की तरह प्रतीत होगे जो मगनी का ढीला-ढाला कोट पहनकर मेला देखने जाता है। अतएव अपने नाप का ही कपडा पहनिए। दूसरे, जिस कार्य को कीजिए लगन, एकाग्रता और अध्यवसाय से कीजिए। समुद्र मे डुबकी लगाने से जिस प्रकार मोती मिलता है, उसी प्रकार काम मे डूबने या लीन होने से धन मिलता है। प्रत्येक कार्य को करते समय सुरुचि-सम्पन्नता का ध्यान रखिए। मनुष्य स्वभाव से ही सौन्दर्यप्रेमी होता है।

सुरुचि और तन्मयता से किया हुआ प्रत्येक कार्य प्रशसनीय, सफल एव धनद होता है। तन्मयता में आप एडिसन का आदर्श सामने रखिए। एडिसन ने अपने सत्तर वर्ष के जीवन मे पन्द्रह सौ नये आविष्कारो को पेटेण्ट कराया था। वह एक ही धुन में लगा रहता था और किसी सभा-सोसाइटी या कमेटी में भाग नही लेता था। लक्षपति होने पर भी वह धन-प्रतिष्ठा की चिन्ता नही करता था, यद्यपि दोनों उसके पीछे दौडते थे। समस्याओ का हल करना ही उसका व्यसन था और उसके पीछे वह एकाग्रचित्त होकर अनवरत उद्यम करता था। परिणाम सर्वविदित है। निरन्तर उद्योगी मनुष्य सब कुछ कर सकता है, और काम करने-वाले से काम स्वयं डरकर सरल हो जाता है[1]—ऐसा उद्योगशील रूसियों का कहना है।

१२. गुण-सग्रह कीजिए और असाधारण बनिए—यदि आप निर्धन होकर भी गुणी हैं तो कोई न कोई गुण-ग्राहक आपको मिल ही जाएगा। ईश्वर भी सगुण होने पर, चाहे वह राम-कृष्ण के रूप मे हो अथवा ईसा-मुहम्मद के रूप में, अधिक लोक-वन्दित होता है, फिर मनुष्य का तो कहना ही क्या है! गुणों का संग्रह सदैव लाभप्रद होता है। गुण ही रुपये का जन्म-स्थान है। नये गुणो का सग्रह कीजिए और किसी एक विषय के विशेषज्ञ बनिए, तभी आप सर्वसाधारण से ऊचे गिने जाएंगे और आकर्षण के केन्द्र होगे। किसी कार्य मे दक्ष होने से जीविका का भय नही रहता। आत्मसंबल, योग्यता और अभ्यास—यही लक्ष्मी-मन्दिर के सिद्ध सोपान हैं।

१३. सेवा-भाव को अपनाइए—आप किसी भी स्थिति मे हो, सेवा द्वारा दूसरों को वश में करके उनसे लाभ ले सकते है। समाज मे

---

१ Job fears the craftsman.

सेवा का मूल्य अवश्य मिलता है। सेवा से मनुष्य की उपयोगिता सिद्ध होती है और उसीके अनुसार प्रधानता मिलती है। शुक्राचार्य ने लिखा है कि समय पर यथोचित सेवा करने से अप्रधान भी प्रधान हो जाता है और सेवा में आलस्य करने या चूक जाने से प्रधान भी अप्रधान हो जाता है·

अप्रधानः प्रधानः स्यात्कालेनाऽत्यन्तसेवनात्।
प्रधानोऽप्यप्रधानः स्यात्सेवालस्यादिना यत ॥ (शुक्र-नीति)

यदि आप स्वतत्र व्यापारी है तो भी सेवा-भाव को न त्यागिए। हेनरी फोर्ड ने एक भाषण में कहा था कि इस युग के बड़े-बड़े व्यवसायी जनता के सेवक[1] ही होकर रह सकते है। क्योंकि जनता जब उनकी चीजों की कद्र करेगी तभी बाजार में उनकी खपत होगी ; जनता ही मालिक बनकर उनको पैसे देती है। अब वह युग बीतता जा रहा है जबकि लोग अर्थ-पिशाच बनकर जनता का रक्त चूस सकते थे। जनता की सरक्षता में ही अब व्यापार का विकास हो सकता है। यदि आप नौकरी करते है तब तो सेवा ही आपकी पूजी है।

१४ अर्थ-शुद्धि को धर्म मानिए—प्राचीन शास्त्रकारों के मत से अर्थ-शुद्धि ही प्रधान शुद्धि है। पैसे के विषय मे निष्कलक रहना सच-मुच बड़ा कठिन है। चोरी न करना ही अर्थ-शुद्धि के अन्तर्गत नहीं आता। उसका अर्थ है—धन का दुरुपयोग न करना, लोभ न करना, कामचोरी न करना और अनुचित साधनों से धन-सग्रह करने का प्रयत्न न करना। अर्थ-शुद्धि न होने से धन कभी ठहरता नही, इसको सत्य मानिए। धन के सम्बन्ध में जो साफ-सुथरे नही होते, वे प्रायः धन-दास होते है; धन-स्वामी नहीं। इसकी परीक्षा आप इसीसे कर लीजिए कि कोई चोर, डाकू या रिश्वती थानेदार अपने पाप-अर्जित

१. Public servant.

धन को भोगता हुआ नही मिलता।

१५ आसन के बली बनिए—स्थान-बल एक बड़ा बल है। इसको इसीसे समझिए कि जब तक वाल आपके सिर मे रहते हैं तब तक आप उनको सवारते है, तेल लगाते है, उनसे अपनी सौदर्यवृद्धि करते है। यही नही, बाप बच्चो के सिर सूघते है। वही बाल जब काट डाले जाते है तो अशुद्ध और गन्दे मानकर फेंक दिए जाते है। यही दशा मनुष्यो की है। जब तक वह किसी पद पर, गद्दी पर, कुर्सी पर बैठा रहता है, तब तक उसकी मर्यादा बनी रहती है, उसकी कद्र होती है। स्थान रिक्त होते ही उसकी महिमा घट जाती है। इसलिए शास्त्रों का यह उपदेश है कि स्थान का त्याग मत करो : 'सस्थान न त्यजेत्।' महाभारतकार ने लिखा है कि एक पैर को जमाकर तभी बुद्धिमान लोग दूसरे पैर को आगे बढाते है; आगे के स्थान की परीक्षा किए बिना पहले के स्थान को नही त्यागते :

तिष्ठत्येकेन पादेन चलत्येकेन बुद्धिमान।
न परीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत्॥ (व्यास)

१६ भवसागर का मथन कीजिए—इसको व्यावहारिक दृष्टि से सत्य मानिए कि विष्णु जैसे सर्वशक्तिमान को भी समुद्र-मंथन से ही लक्ष्मी की प्राप्ति हुई थी। परिश्रम के बिना अर्थ-प्राप्ति नही हो सकती। शास्त्र में लिखा है कि धन की कामना अग्नि से करनी चाहिए : 'धनमिच्छेत् हुताशनात्।' अग्नि को धनदायी और धनंजय कहते भी है। इसका अर्थ यह नही है कि हाथ जोड़कर अगीठी के सामने वैठिए तो धन वरसने लगेगा। अर्थ स्पष्ट है। देखिए तो पता चलेगा कि कितने ही धन-प्रवर्द्धक कर्म अग्नि की सहायता से होते है। दूसरा अर्थ यह है कि शरीर की अग्नि अर्थात् परिश्रम की अग्नि उद्दीप्त होने से ही धन की प्राप्ति होती है। पैसे मे गरमी होती है, यही

एक प्रमाण है कि उसमें अग्नि होती है। शब्दों पर न जाइए, भाव को देखिए। पसीना बहाने से जो पैसा मिलता है, वही पचता है। बिना पसीना बहाए प्राप्त हुए पैसे की गरमी असह्य हो जाती है, उससे दिमाग में चक्कर आता है। साररूप में यही समझिए कि बिना द्रवित हुए द्रव्य नही मिलता। अतएव मन से द्रवित—विनम्र—बनिए और शरीर से श्रम-जल द्रवित कीजिए। परिश्रम से मनुष्य की श्री बढती है; श्री ही नही उससे सहयोगिता की भावना भी बढती है। मनोवैज्ञानिक का कथन है कि परिश्रमी लोग कम सघर्प, कलह करते है। कलह के मूल बुद्धि-व्यसनी और अकर्मण्य लोग होते है। अतएव परिश्रमी व्यक्ति समाज-सुधारक भी होता है। यही गौरव क्या कम है!

आवश्यकता से अधिक विश्राम न कीजिए, क्योकि वह श्रम-शक्ति का नाशक होता है। एक अमरीकन लेखक ने लिखा है कि अमरीका के नगर जो इतने धन-सम्पन्न लगते है उसका कारण यह है कि वहां बैठने का कोई स्थान नही है।[1] इस कथन की यथार्थता को समझने के लिए इस देश के किसी ऐसे दो नगरो की तुलना कर लीजिए जिनमें से एक व्यवसाय का केन्द्र हो और दूसरा सैरसपाटे का स्थान हो। हमारे कहने का अभिप्राय यही है कि कर्मक्षेत्र मे खड़े रहने से सम्पन्नता बढती है।

१७. कार्यसिद्धि को महत्त्व दीजिए—कार्य की कठिनाइयों, विघ्न-बाधाओ को विशेष महत्त्व न दीजिए। शुरू करते समय साधारण कार्य भी कठिन लगता है, क्योंकि सहजसाध्य कुछ भी नहीं है और हल हो जाने पर बड़ी-बड़ी समस्याए भी सरल लगती है। दो जर्मन कहावते है—एक का अर्थ है कि हरएक कार्य का आरभ कठिन

---

१. The reason American cities are prosperous is that there is no place to sit down.

होता है।[1] दूसरी का अर्थ यह है कि समस्या हल हो जाने पर सरल लगती है।[2] इनको ध्यान मे रखिए। ससार मे सफलता ही मान्य होती है—चाहे वह पेड़ की हो, चाहे कार्य की, चाहे मनुष्य की। अतएव सफल होने की चेष्टा कीजिए। यदि किसी कार्य मे आपके अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति कभी सफल हो चुका है तो आप भी अवश्य सफल होगे—यदि उद्योग करे तो! 'करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान!'

१८ दैनिक आय-व्यय का चिन्तन कीजिए—जीवन के अन्त मे अथवा साल के अत मे हिसाब-किताब मिलाने की आदत न डालिए। रोज़ देखिए कि आय कितनी है, कैसे बढ़ सकती है, व्यय कितना है, कैसे घट सकता है। प्रातःकाल इसपर विचार करके अपना कार्यक्रम बनाइए और उस योजना के अनुसार दिन-भर कार्य करके सन्ध्या मे देखिए कि आप लाभ में हैं या हानि में। अपनी परिस्थिति को रोज तौलिए। आपकी कमाई का वही हिस्सा अधिक मूल्यवान है जो उचित व्यय के बाद बेक में पहुंचता है। आपत्ति के समय वही काम आता है और शास्त्र का वचन है कि आपत्ति के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए; 'आपदर्थे धन रक्षेत्।' यदि आपके पास पैसा हो तो बचाना सीखिए और न हो तो कमाकर बचाना सीखिए। यह तभी सम्भव है जब आप रोज़ इस प्रश्न पर विचार करे। इस सम्बन्ध में चाणक्य मुनि का यह श्लोक ध्यान में रखने योग्य है :

> कः कालः कानि मित्राणि को देशः को व्ययागमौ।
> को वाहं का च मे शक्तिरिति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः॥

—कैसा समय है, कौन-कौन सहायक है, कैसा देश है; आय-व्यय

---

१ All beginning is difficult

२. The problem when solved becomes simple.

कितना है, मै कौन हूं, मुझमें कितनी सामर्थ्यशक्ति है—इनका चिन्तन वार-वार करना चाहिए।

१६. लेन-देन में सावधान रहिए—शुक्राचार्य ने लिखा है कि धन का देना मित्रता का कारण होता है, परन्तु वापस लेना शत्रुता का : 'धन मैत्रीकर दाने चादाने शत्रुकारकम्।'

ऋण के लेन-देन मे यही होता है। 'उधार दीजे, दुश्मन कीजे' की लोकोक्ति वहुत प्रसिद्ध ही नही, बहुत भोगी हुई भी है। अतएव यथा-सम्भव न तो ऋण दीजिए और न लीजिए। ऋण लेते ही तुलसी की यह उक्ति . 'आव गया आदर गया, नैनन गया सनेह'—पूर्णतया चरितार्थ होती है।

२०. दान से धन की वृद्धि होती है—यह एक अलौकिक किन्तु प्राचीनकाल से बहुतो द्वारा परीक्षित सत्य है कि दान से धन बढता है। आपकी आय कितनी भी कम हो, परन्तु यदि आप उसमे से कुछ सुपात्र को दे दे तो उससे पुण्य का नही तो कम से कम आत्म-बल का सचय अवश्य होता है और मन मे यह भावना उठती है कि पैसा कुछ धर्मार्थ हुआ ; दूसरे, लोक-प्रतिष्ठा मिलती है। बड़े पैमाने पर देखिए तो ज्ञात होगा कि दान द्वारा प्रकारान्तर से आर्थिक लाभ होता है। बिड़ला को लीजिए जो दान के लिए प्रसिद्ध है। दान से बिडला के नाम का जो विज्ञापन होता है, उससे जनता मे उनके व्यापार के प्रति अनुराग उत्पन्न होता है। यह अनुराग और यश वे कोरा विज्ञापन करके नहीं कमा सकते थे। उनकी बहुत-सी वस्तुए तो बिडला नाम की लोकप्रियता के कारण बिकती है।

२१. धनी का भेस न बनाइए—अर्थात् अवध के ताल्लुकदारो की तरह रईसी का मिथ्या विज्ञापन मत कीजिए। जैसी आपकी आर्थिक स्थिति है, उसीके अनुसार अपना रहन-सहन बनाइए।

२२. बनिये की तरह बनिए—धन कमाना है तो पंडित की तरह ज्ञानी और भावुक तथा ठाकुर की तरह अक्खड़ न बनकर बनिये की तरह सरल, मधुर, सावधान और 'अर्थंकरी विद्या' के जानकार बनिए। दार्शनिक बुद्धि अथवा धनुर्वेद के ज्ञान से नहीं बल्कि वणिक्-बुद्धि से ही रुपया आता है। बनिया एक-एक पैसे को जिस प्रकार पकड़ता है, उसी प्रकार पकड़िए। देशी बनिया बनना न पसन्द हो तो अंग्रेज़ बनिये की तरह बनिए जो 'सात समुन्दर पार' भारतवर्ष मे आकर व्यवसाय करते-करते बनिये से राजा बन गया था।

२३. इन पांच नीति-वाक्यों को ध्यान में रखिए :

१

श्रीमङ्गलात्प्रभवति प्रागल्भ्यात् संप्रवर्धते।
दाक्ष्यात्तु कुरुते मूल संयमात्प्रतितिष्ठति ।। (विदुर)

—धन उत्तम कर्मो से उत्पन्न होता है, प्रगलभता (साहस, योग्यता, कीर्ति, वेग, दृढ़ निश्चय) से बढता है, चतुराई से फूलता-फलता है और संयम से सुरक्षित होता है।

२

यथा मधुसमादत्ते रक्षन् पुष्पाणि षट्पदः।
तद्वदर्थान्मनुष्येभ्य आदद्यादविहिंसया ।। (विदुर)

—जैसे भौरा बिना पुष्प को नष्ट किए उसमे से मधु ग्रहण कर लेता है, उसी प्रकार मनुष्य को भी धन के मूल साधन को नष्ट किए बिना उसमें से धन ग्रहण करना चाहिए।

३

कारणात् प्रियतामेति द्वेषो भवति कारणात्।
अर्थार्थी जीवलोकोऽयं न कश्चित्कस्यचित्प्रियः ।। (महाभारत)

—कारण से ही लोगो मे प्रीति और कारण से ही द्वेप की उत्पत्ति

होती है ; अर्थार्थी संसार मे कोई (निष्प्रयोजन) किसीका प्रिय नहीं है।

४

प्रसारयति कृत्यानि, सर्वत्र विचिकित्सते।
चिरं करोति क्षिप्रार्थे, स मूढो भरतर्षभ॥ (महाभारत)

—जो कार्य को लम्बा बना दे, सबपर सदेह करे, शीघ्रता के कार्य मे देर लगाए, वही मूढ कहा जाता है।

५

कार्ये कर्मणि निर्दिष्टे यो बहून्यपि साधयेत्।
पूर्वकार्याविरोधेन स कार्यं कर्तुमर्हति॥
न ह्येकः साधको हेतुः स्वल्पस्यापीह कर्मणः।
यो ह्यर्थं बहुधा वेद स समर्थोऽर्थसाधने॥ (रामायण)

—(लका मे हनुमान की उक्ति) कर्तव्य-कर्म के पूरा हो जाने पर उससे अविरुद्ध अन्य कार्यों को भी जो साधता है, वही अच्छा कार्यकर्ता है। जो अर्थ-सिद्धि करने के बहुत-से उपाय जानता है, वही अर्थ के साधन में समर्थ हो सकता है।

ऊपर के श्लोको पर विशेष रूप से कुछ लिखने की आवश्यकता नही है। हा, यह समझ लेना चाहिए कि अर्थ का अभिप्राय यहा कार्य से है। कार्य की सफलता के मूल्य-स्वरूप धन या मान ही मिलते है।

उपर्युक्त सभी बातों को ध्यान मे रखते हुए, अब हमें कुछ ऐसी अन्य आवश्यक बातो पर भी विचार करना चाहिए जो भिन्न-भिन्न उपायो से द्रव्योपार्जन करनेवालो के काम की है।

१. यदि आप व्यापारी या व्यापार-प्रेमी है

पूंजी, परिश्रम और योग्यता

व्यापार के लिए या तो पूजी और परिश्रम की आवश्यकता होती

है, अथवा योग्यता और परिश्रम की। यदि आपके पास पूजी है तो देखिए कि किस काम में उसको लगाने से वह फलित होगी। रचनात्मक बुद्धि से विचार कीजिए। लोगों ती आवश्यकता और रुचि को देखिए। आशा, विश्वास, उत्साह को जागरित करके अपनी इच्छाओं को क्रियात्मक रूप दीजिए और मूलधन के साथ अपने तथा दूसरों के परिश्रम को सयुक्त कीजिए। यदि पूजी नही है तो योग्यता से आप दूसरों द्वारा धन लगवाकर स्वय अपने परिश्रम से व्यापारी बनने का उद्योग कीजिए। बड़ी पूजी है तो यन्त्रों का साधन लीजिए ; थोड़ी पूजी या योग्यता का ही सम्बल हो तो घरेलू उद्योग-धधों को अपनाइए और क्रमशः बढ़िए। गाधीजी के इस उपदेश को याद रखिए कि तुम बढना चाहते हो तो नीचे से शुरू करो।[1]

प्रतियोगिता के लिए तैयार रहिए

फौजी काम और व्यापारिक कार्य-प्रणाली मे बहुत कुछ समता होती है। एक को हिसात्मक युद्ध कह सकते है तो दूसरे को अहिंसात्मक। फौज से देश पर अधिकार किया जाता है ; व्यापार से बाजार पर। दोनो मे सगठन, अनुशासन और कौशल की आवश्यकता पड़ती है। फौजे बैंड बजाती हुई आगे मार्च करती है और व्यापार विज्ञापन करता हुआ बढ़ता है। जिस प्रकार आमने-सामने की दो फौजो मे प्रतियोगिता होती है, उसी प्रकार दो व्यापारो मे भी होती है। अवसर का उपयोग भी दोनों मे समान रूप से होता है, फौज के भिन्न-भिन्न अग जैसे एक ही उद्देश्य की प्राप्ति के लिए परस्पर सहयोग करते हुए एक लक्ष्य की ओर बढ़ते हैं।

इन बातो को समझते हुए आप सैनिक उत्साह के साथ व्यापार

---

१. If you want to start, start from below

मे पडिए। नये ढंग के अस्त्रों से जैसे विजय-सिद्धि होती है, वैसे ही नई वस्तुओं के आविष्कार, आकर्षक तथा उपयोगी वस्तुओं के निर्माण से अर्थ-सिद्धि होती है। नई सूझ के साथ समय पर सबसे पहले नई वस्तु निर्माण करके और नये ढग से विज्ञापन करके ही उसका प्रचार बढाया जा सकता है। इसे याद रखिए कि यह 'प्रोपेगैण्डा' (प्रचार) का युग है। प्रोपेगैण्डा का मूल रहस्य है, पुनरुक्ति। बार-बार एक ही बात को प्रकाशित करने से वह लोगो के मन मे बैठ जाती है। अपनी एक विशिष्ट वस्तु रखिए और उसीको सर्वोत्तम प्रमाणित करने की बार-बार चेष्टा कीजिए। अपनी सभी वस्तुओ को सर्वोत्तम बनाने या बताने की यदि आप चेष्टा करेगे तो असफल होगे। एक ही वस्तु को विशिष्ट बनाकर उसीके प्रचार पर अपनी शक्तियो को केन्द्रित कीजिए। उसीके पीछे अन्य वस्तुए भी चलेगी जैसे गांधीजी की देश-सेवा के पीछे समस्त लोक-सम्मनिया। उनके निर्माण की अपेक्षा उनके विक्रय पर अधिक ध्यान दीजिए। रुपया उसीसे आता है।

व्यापार लोकप्रियता से बढता है

अपने व्यापार को व्यापक बनाने के लिए जनता की सहानुभूति प्राप्त कीजिए। उसके लिए सर्वप्रथम तो जनता की माग का ध्यान रखिए। माग के अनुसार वस्तुए देकर उनके मूल्य के बहाने जनता को लूटने का प्रयास न कीजिए। जनता तभी सतुष्ट होती है जब वह समझती है कि उसको उसके पैसे से अधिक मूल्यवान् वस्तु मिली है अथवा मूल्य के अनुसार ठीक वस्तु मिली है। इसीलिए थोड़ा त्याग कीजिए। दूसरों को जितनी छूट आप देगे, उतना ही लाभ आपको मिलेगा। यदि लोगों से आप कम से कम लाभ लेगे तो उनका पैसा बचेगा और वह पैसा प्रकारान्तर से फिर आप ही के पास पहुचेगा। एक बार सतुष्ट होकर वे आपके स्थायी ग्राहक बन जाएगे। थोड़े लाभ के साथ

अधिक बिक्री कैसे हो सकती है, इसीको ध्यान में रखिए। स्थायी लाभ के लिए क्षणिक लोभ का त्याग करना अत्यावश्यक है।

सब वस्तुओं में उपयोगिता

किसी भी वस्तु को उपयोगी बनाया जा सकता है। यदि आप लोगों की सामयिक आवश्यकताओं और रुचियों को यथासमय ही भांपकर उनके अनुकूल व्यापार करे तो किसी भी वस्तु का उपयोग कर सकते है। गत युद्ध में जब वस्तु-सकट था तो चतुर लोगो ने छोटी-छोटी वस्तुओं को भी उपयोगी बनाकर काफी रुपये कमाए थे। जॉन-ट्रैल नाम के एक व्यक्ति ने युद्ध छिड़ते ही हज़ारों रुपये के पुराने कागज़ खरीद लिए थे क्योंकि उसने समझ लिया था कि शीघ्र ही कागज़ न मिलने से पुड़ियों और कागज़ी थैलियों के लिए उनकी आवश्यकता होगी। परिणामतः युद्ध में उसने उन्ही अखबारी कागजो से लाखों रुपये कमाए। इसी तरह आलपिन की कमी को देखकर कुछ लोगो ने वबूल के कांटों का व्यवसाय कर लिया था। ऐसे सैकड़ो उदाहरण है। उक्त जॉनट्रैल का मत है कि प्रत्येक पदार्थ से रुपया निकल सकता है, यदि आपको यह ज्ञात हो कि किसको उसकी आवश्यकता है।[1]

व्यापारी अवसर का उपयोग इसी प्रकार करता है। अंग्रेजी में एक कहावत है कि जो आगा-पीछा करता है वह चूक जाता है[2]: विचार दृढ़ करके जो भी 'हथियार' मिले उसको लेकर मैदान में कूद पड़ना चाहिए।

---

१. Everything is worth money if you know who wants it.
—John Traille.

२. He who hesitates is lost.

प्रबन्ध

प्रबन्ध के सम्बन्ध में ऊपर भी बहुत कुछ कहा जा चुका है। कार्यालय के भीतरी प्रबन्ध के सम्बन्ध में कुछ और बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। पहली बात तो यह है कि प्रत्येक व्यापार का एक निश्चित कार्यक्रम होता है, एक सुसगठित कार्य-प्रणाली होती है। उसमें अस्त-व्यस्तता होने से एकसूत्रता नही होती। सघ-शक्ति की दृढता से ही सदा सफलता होती है। बड़े व्यापार को विभागों में बाटकर योग्य व्यक्तियो को उत्तरदायित्व देना चाहिए और उसपर विश्वास भी करना चाहिए। कार्यकुशल उपायज्ञ ही परिश्रमी लोगों से काम ले सकते है और प्रबन्धक की योग्यता इसीमें मानी जाती है कि वह तीन आदमियों से पूरे तीन आदमियो का काम ले सके।

कर्मचारियों के साथ सद्व्यवहार रखने से उनका पूर्ण सहयोग मिल सकता है। उनको झूठी आशा में न रखकर योग्यता और परिश्रम के अनुसार सम्मानपूर्वक वेतन देना चाहिए। उनपर यह न प्रकट होने देना चाहिए कि उनके साथ आप कोई मेहरबानी कर रहे है। वेतन मे अनावश्यक काट-कपट न करके यथासम्भव पुरस्कार देकर सबको उत्साहित करना चाहिए। छोटे व्यापार मे अधिक विभाजन न करना ही ठीक होता है। प्रत्येक दशा में कर्मचारियो में यह भाव भरना चाहिए कि वह उनका अपना काम है और यदि उनके द्वारा प्रस्तुत की हुई वस्तुओं का अच्छा आदर होगा तो लाभ मे उनको भी हिस्सा मिलेगा। जहां पैसे के लिए ही सब एकत्रित होते है, वहा पैसे से ही सब सन्तुष्ट हो सकते है। छोटे से छोटे व्यक्ति को उपयुक्त कार्य में लगाकर और उसको सन्तुष्ट बनाकर उससे लाभ लिया जा सकता है। व्यापार उसी प्रकार सहयोग से व्यवस्थित होता है, जैसे दोनो हाथो की उगलियों से गाठ बघती है।

कम से कम लागत से अधिक वस्तु निर्माण करना और अपव्यय को रोकना, यह भी प्रबन्ध-कुशलता का प्रधान अंग है। सभी वस्तुओं का कही न कही उपयोग करके उनकी व्यर्थता को बचाया जा सकता है।

प्रबन्ध ही के अन्तर्गत हिसाब-किताब और पत्र-व्यवहार को ले सकते है। आपका हिसाब-किताब ही आपके व्यापार का दर्पण है, इसको न भूलिए। उसका सुव्यवस्थित रहना और ठीक रहना नितान्त आवश्यक है। पत्र-व्यवहार तो व्यापार की जान है। पत्रों मे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे स्पष्ट, सरल और यथार्थता से पूर्ण हों। व्यापार मे भावुकता का स्थान कही भी नही है; चाहे पत्र-व्यवहार हो या बातचीत का प्रसग हो, इस बात का ध्यान रखिए कि कम शब्द और अधिक काम—यही व्यापारिक क्षेत्र का सर्वमान्य सिद्धान्त है। व्यापार में उन्ही विचारों का मान होता है जो तर्क-सम्मत और सार्थक हो।

मुनि की तरह ध्यान लगाइए

यदि आप व्यापार खोलकर बैठे है तो दूरदर्शी बनिए, तत्काल लाभ की आशा न कीजिए; मुनि की तरह आशा-विश्वास के साथ धन की प्रतीक्षा कीजिए, साधना कीजिए। छाती कड़ी करके बैठिए, बड़े-बडे आघात पड सकते है। जो भी बड़े व्यापारी इस समय हैं वे यो ही नही बाजार मे खडे है। भवसागर की बड़ी-बड़ी लहरें उनसे रोज़ टकराती है, परन्तु वे अपने आसन से डिगते नही। जो जितना बडा होता है उसको समय के उतने ही प्रबल धक्के लगते है। निरन्तर उद्योग से ही पैसे की धारा अखण्ड बनती है और यही व्यवसाय का प्रयोजन है। यदि आप एक बार भी परिस्थितियो से हार मानकर बैठ गए तो वे बड़ी निर्दयता से सपरिवार आपके ऊपर हमला करेगी क्योकि उनकी-आपकी शत्रुता तो प्रतिदिन चलती है।

राष्ट्र-सम्पत्ति की वृद्धि कीजिए

व्यापार से राष्ट्र-सम्पत्ति की वृद्धि कीजिए—व्यापार द्वारा जो सबसे बड़ा सार्वजनिक कार्य होता है वह यह है कि उससे देश-सेवा उच्चस्तर पर हो सकती है। इस बात-को ध्यान मे रखिए कि वस्तुओं के वदले बाहर से जो रुपया देश में पहुचता है, उसीसे राष्ट्रीय धन की वृद्धि होती है। अतएव ऐसी वस्तुए तैयार कीजिए जो विदेशों में बिक सके। साथ ही, ऐसी वस्तुए तैयार कीजिए जिनकी यहा माग हो और जो विदेशों से यहां आती हों। इस तरह राष्ट्र का धन सुरक्षित रहेगा।

२. यदि आप अधिकारी है

यदि आप किसी व्यापारिक सस्था अथवा किसी सरकारी पद के अधिकारी है तो इन बातो को ध्यान में रखिए।

नेतृत्व कीजिए

अधिकारी में एक नेता के सभी गुण होने चाहिए। आतकबल से नहीं बल्कि अपनी योग्यता, अपने साहस और अपनी कार्य-कुशलता से लोगों को प्रभावित करके वशीभूत कीजिए, उनकी सहानुभूति प्राप्त कीजिए। विचारपूर्वक एक योजना बनाकर स्वय उसके अनुसार कार्य करने की जिसमें क्षमता होती है वही दूसरो का नायकत्व कर सकता है। अतएव स्थिरमति से एक लक्ष्य बनाइए और दृढतापूर्वक उसी ओर चलिए। लोग उसके पीछे चलते हैं जिसके सम्बन्ध मे वे यह जानते है कि वह एक निश्चित दिशा मे जा रहा है और उस दिशा में जाना मगलमय है। पहले सबको अपना विचारानुगामी बनाइए, इसके बाद वे स्वतः आपके पदानुगामी होगे। इसी प्रकार उनका सहयोग प्राप्त होगा। अनुभवशून्यता और शक्तिहीनता का परिचय न दीजिए। हलकेपन

और आत्महीनता का परिचय न दीजिए।

निष्पक्ष और विश्वासपात्र बनिए

आपके प्रति आपके आश्रितगण अपना विश्वास तभी दिखलाएंगे, जबकि आप पक्षपात-रहित होंगे, न्याय में कठोर और दृढ होंगे तथा सहज स्वभाव से सच्चे होंगे। लोगों पर आपकी न्याय-परायणता, कर्तव्यनिष्ठा और बुद्धिमत्ता का प्रभाव पड़ना चाहिए। कुर्सी पर बैठ जाने से ही आप सबके हृदय-सिंहासन पर नहीं बैठ सकते।

गम्भीर, शान्त और रहस्यमय बनिए

काम मे, प्रबन्ध मे और कर्मचारियो के साथ व्यवहार मे यथा-सम्भव गम्भीर और अविचल बनिए। मौन रहने से अधिकार-बल बढ़ता है। एक फ्रेंच विचारक (आन्द्रे मौरिस) ने अपने एक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ[1] में लिखा है कि अधिकारी को इतना गम्भीर रहना चाहिए कि एक हद तक उसके आश्रितों को उनका व्यक्तित्व रहस्यमय प्रतीत हो। जब तक घनिष्ठता नहीं होती तब तक दूरवाला व्यक्ति उच्च पदाधिकारियों को विलक्षण, अलौकिक समझता है और उनकी सत्ता को स्वीकार करता है। निकट होने पर वह 'घर की मुर्गी दाल बराबर' की उक्ति चरितार्थ करता है। 'अति परिचय ते होत है अरुचि अनादर भाय।' (वृन्द)

गम्भीर होने का यही अर्थ नही कि अधिकारी चुपचाप गौतम बुद्ध की मूर्ति बना रहे। उसका अर्थ यह है वह उच्छृंखल न हो, कान का कच्चा न हो, वाचाल न हो, रसिया न हो और भावुक भी न हो। जो व्यक्ति चचल स्वभाव का होता है और क्षण-क्षण पर प्रसन्न-अप्रसन्न होता रहता है, उसकी प्रसन्नता को भी लोग भयकर मानते हैं :

---

१. The art of living.

क्वचिद्रुष्टः क्वचित्तुष्टो रुष्टस्तुष्टः क्षणे क्षणे।
अव्यवस्थितचित्तस्य प्रसादोऽपि भयङ्करः ।।

स्वभाव और वाणी से सरल रहिए

कर्तव्य-पालन ही मे कठोर बनिए; स्वभाव और बातचीत से अपनी उद्दण्डता न प्रकट कीजिए। वेदकालीन ऋषि-मुनि भी भगवान से यही प्रार्थना करते थे कि कठोर वचनवाला व्यक्ति हमारा प्रभु न हो: 'मा नो दु.शस ईशत' (ऋग्वेद)। अपनी सज्जनता और सहृदयता पर किसीको सन्देह करने का अवसर न दीजिए। दूसरे के गुणो की मुक्तकठ से सराहना कीजिए और अपनी गुण-ग्राहकता को लोगों पर प्रकट कीजिए। लोगों की कठिनाइयों में व्यक्तिगत सहानुभूति प्रदर्शित कीजिए और व्यक्तिगत सकटों मे आत्मीयता भी। पद-मद मदिरा से भी अधिक उन्मादक होता है। उन्मत्त होकर अपने सद्भाव, शील को न भूल जाइए। इस बात को याद रखिए कि आपके सहकारी भी मनुष्य हैं, उनके भी हृदय है, उनकी भी विवशताए है और व्यक्तिगत रूप से वे आपसे अधिक निर्बल है। उनको धमकी न देकर मनुष्यता-पूर्वक उनसे कार्य लीजिए। उजाड़ने की अपेक्षा लोगो को बसाने का प्रयत्न कीजिए। शोषक न होकर आश्रितों के पोषक-पालक बनिए।

औरों से ऊपर रहिए

व्यक्तित्व में, वेश-भूषा में, काम की जानकारी मे, मर्म समझने में सबके आदर्श बनकर रहिए जिससे लोग आपका लोहा मान सकें। व्यक्तित्व का प्रभाव तत्काल पड़ता है। वेश-भूषा के प्रभाव को इसी बात से समझिए कि एक साधारण व्यक्ति भी पुलिस का पहनावा धारण करते ही प्रभावशाली बन जाता है। जब तक आप काम के विशेषज्ञ न होंगे तब तक दूसरों के काम का निरीक्षण और नियन्त्रण कैसे करेंगे? अधिकारी को अपने विषय का अधिकारी होना चाहिए। उसकी जान-

कारी मे कुछ ऐसी बातें होनी चाहिए जो सर्वसाधारण की जानकारी मे न हों। उसमे मन्त्र को गुप्त रखने की क्षमता होनी चाहिए। विलक्षणताओं से ही वह सबका आदर्श और पथ-प्रदर्शक बन सकता है। अपने विभाग के समस्त कार्यों का ठीक-ठीक विवरण जानकर और कार्य-प्रणाली को समझकर ही कोई अधिकारी अपने उत्तरदायित्व को सभाल सकता है। समय की पाबन्दी और अनुशासन-सम्बन्धी जिन नियमों का पालन आप दूसरों से कराना चाहते है, उनका पालन सर्वप्रथम स्वयं कीजिए, जिससे लोग आपसे शिक्षा ले और आपकी कडाई पर आक्षेप न करे। इस सम्वन्ध में हिटलर के अन्तिम दिनो का, सम्भवतः अन्तिम वाक्य याद रखिए। जिस समय बर्लिन पर गोले बरस रहे थे और जर्मनी की पराजय निश्चित हो चुकी थी, लोगों ने हिटलर को राय दी कि वह आत्मरक्षा के लिए वहां से चला जाए। हिटलर ने स्वाभिमानपूर्वक उत्तर दिया कि यदि मेरी मृत्यु हो जाती है तो उससे जर्मनी का गौरव बढ़ेगा—क्योंकि एक सिपाही होने के नाते मुझे स्वय अपनी अन्त तक बर्लिन की रक्षा करने की आज्ञा का पालन अवश्य करना चाहिए।[1]

सर्वोपरि साहसी बनिए

भय से आत्मसम्मान नष्ट हो जाता है, ऐसा नेपोलियन का मत है।[2] एक अन्य किसी नीतिकार का मत है कि साहस द्वारा अपने से अधिक मनुष्यों की सख्या पर भी विजय प्राप्त होती है[3] : परिस्थितियों

---

१. If I die, it is for the honour of Germany It is because as a soldier, I must obey my own command to defend Berlin to the last. —World Digest.

२ Fear destroys self-respect.

३. Courage overcomes numbers

और आलोचनाओ से न घवड़ाइए। यह तभी सम्भव है जबकि आप अपने कर्तव्य में स्थिर रहे।

कर्तव्य को करते समय आप निश्चय कीजिए कि आप विफल नही हो सकते। यह दृढ निश्चय आपको साहस देगा। साहसी ही वनिए, दुस्साहसी नहीं। निर्णय करने के बाद रुकिए नही, आत्म-शक्ति लेकर निश्चित मार्ग पर चल निकलिए। जिस क्षेत्र मे रहिए, उसमे अपने ढग के एक ही रहिए।

काम करना और लेना जानिए

जब तक आप स्वय काम करना न जानेगे, तब तक दूसरो से ठीक काम न ले सकेगे और न उनको काम के लिए प्रेरित ही कर सकेगे। काम लेना एक बडी कला है। उसके कुछ रहस्य ये है :

१. जो जिस कार्य के उपयुक्त हो, उसको वही कार्य सौपना चाहिए। इस सम्बन्ध मे शुक्राचार्य की यह नीति मान्य है कि कोई ऐसा अक्षर नही है जिसका प्रयोग मन्त्र-रचना मे न हो सके, कोई ऐसा वृक्ष नही है जो किसी न किसी व्याधि की ओषधि न हो; कोई ऐसा व्यक्ति नही है जो किसी न किसी कार्य के योग्य न हो—सबका सयोजक मिलना कठिन है :

अमन्त्रमक्षरं नास्ति, नास्ति मूलमनौषधम्।
अयोग्यः पुरुषो नास्ति, योजकस्तत्र दुर्लभः॥

साधारण व्यक्ति से भी कार्य लिया जा सकता है : 'जहां काम आवै सुई, कहा करै तरवारि।' कोई शरीर से दुबला-पतला होकर भी बडे काम का हो सकता है। शेखसादी ने कहा है कि अरबी घोड़ा अगर दुबला-पतला हो तो भी गदहो के पूरे अस्तबल से अच्छा है। वास्तव मे, किसीको काम देकर, समझकर उसके परिणाम को देखना चाहिए और तत्पश्चात् उसकी योग्यता-अयोग्यता का निर्णय

करना चाहिए।

२ इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कोई बेकार न बैठने पावे। सुकरात ने लिखा है कि केवल वही व्यक्ति बेकार नहीं है जो बैठा रहता है बल्कि वह भी बेकार माना जाएगा जिसकी योग्यता का पूर्ण लाभ नही लिया जाता।[१]

३. यथासम्भव कार्य के सम्बन्ध मे लिखित और निश्चित आज्ञा देकर कर्मचारियों के काम पर नियमित नियत्रण रखना चाहिए। एक विलायती लेखक ने लिखा है कि मालिक की आंख उसके दोनों हाथों से अधिक काम करती है।[२] आंख के आगे काम अधिक होता है, इसको सभी मानेगे। यदि आख के आगे भी गड़बड़ी होती है और कोई जान-बूझकर नियमोल्लघन करता है तो उसके अपराध को प्रमाणित करके उसको अवश्य दडित कीजिए जिससे दूसरों को शिक्षा मिले। किसीके प्रति मन मे क्रोध बनाए रखने की अपेक्षा उसको तत्काल प्रकट कर देना अधिक अच्छा होता है। व्यास ने लिखा है कि पल-भर मे जल जाना देर तक सुलगने से ज्यादा अच्छा है:

क्षणार्द्धं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम्। (महाभारत)

४. जान-बूझकर अपने सहयोगियों पर दोषारोपण न करना चाहिए। उनकी साधारण त्रुटियों को देखना ही न चाहिए। एक विदेशी नीतिज्ञ (फुलर) ने लिखा है कि यदि तुम स्वामी हो तो कभी-कभी अन्धे बन जाया करो।[३]

---

१. Not only he is idle, who is doing nothing but he too that might not be employed better. —Socrates.

२. The eyes of a master will do more work than both his hands.

३. If thou art a master be sometimes blind.

५. जिनसे आपको काम लेना है उनको यह सच्चा भरोसा दे रखिए कि उनके भविष्य का द्वार खुला है और वे अपनी योग्यता, कार्य-पटुता से आगे उन्नति कर सकते है। मनुष्य का जीवन सरस तभी बनता है जब उसके पास करने को कोई काम होता है और मन की आशा को टागने की कोई खूटी होती है। इस बात को याद रखिए कि 'बांधे बनियां बाजार नही लगता।' सबको उत्साहपूर्वक रखिए।

६. अपने आश्रितो की पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर लीजिए। उनके मन मे यह भ्रम न होना चाहिए कि मौके पर आप पिछड़ जाएगे और वे ही किसी त्रुटि के उत्तरदायी होगे।

७. अपने विशेष अधिकारों का प्रयोग बार-बार न कीजिए। यदि रोज आधी ही चले तो कुछ दिनो में लोग उसको सहन करने में इतने अभ्यस्त हो जाएगे कि वे उसको साधारण हवा ही समझने लगेगे। लोगों को बेहया न बनने दीजिए।

८. युक्तिपूर्वक कही-कही झुक जाने से भी कार्यकर्ता लोग मोहित हो जाते है: 'सबहिं नचावत राम गोसाईं, अपुवा रहत दास की नाईं।' (तुलसी)। जहा किसी महत्कार्य को शीघ्र करना हो वहां उसी तरह झुक जाना चाहिए जैसे सुरसा के आगे हनुमान झुक गए थे।

९. अधिकारी की प्रसिद्धि से कार्यकर्ता प्रभावित होते है। यदि आप यशस्वी, प्रभावशाली है तो लोग स्वभावतः चेष्टा करेगे कि वे आपके सुयोग्य सहकारी कहलाने का गौरव प्राप्त करे। इसलिए ऐसी कीर्ति रखिए कि आपके न रहने पर वह दूसरों की नसों में बिजली भर सके।

गुरुत्व ही पतन का कारण होता है—अधिकार ग्रहण करने पर इसको भी याद रखिए कि जो वस्तु भारी होती है वही पृथ्वी पर गिरती है। ऊची पहाड़ी पर से लुढकने का अधिक डर रहता है। बाल

जब बहुत बढ जाते है तो नाई की कैंची तैयार मिलती है। इसलिए सभलकर, सावधानी से चलिए।

३. यदि आप कर्मचारी है

यदि आप कर्मचारी है तो उपर्युक्त बातो में से आत्मोपयोगी बातों के अतिरिक्त निम्नलिखित बातो को भी ध्यान में रखिए :

१. साधारण पद पर रहते हुए भी अपनी आकाक्षा को प्रबल रखिए और इस बात को ध्यान में रखकर आत्मोत्थान का प्रयत्न करते रहिए कि ससार में योग्यता के अनुसार अधिकार मिलता है; आध सेर के गिलास मे सेर भर दूध नही भरा जा सकता। प्रतिदिन उत्साहपूर्वक अपनी योग्यता को बढ़ाइए, वही आपकी मूल सम्पत्ति होगी। कार्य-सम्बन्धी ज्ञान के अतिरिक्त अन्य उपयोगी ज्ञान का सचय भी करते रहिए। एक ही लकीर के फकीर न बने रहिए। बहुज्ञ होना लाभदायक ही होता है। रोज अनुभव का सचय करते रहिए। अपनी स्मरण-शक्ति पर अधिक विश्वास न करके, अपनी नोट-बुक को काम में लाइए।

२. इस लक्ष्य को सामने रखकर अर्थोपार्जन न कीजिए कि किसी तरह शाम को रोटी मिल जाए। दिन की सन्ध्या को नही, बल्कि जीवन-सन्ध्या को अपना लक्ष्य बनाइए। यह कहना अनुचित न होगा कि अपना बीमा करा रखिए क्योकि पता नही कब आपकी जीविका-सन्ध्या या जीवन-सन्ध्या आ ही जाए। कुछ न कुछ बचाइए।

३ जितना आपको वेतन मिलता है, उससे अधिक कार्य करके दिखलाइए। अपने काम को पैसे से कम कीमती न बनने दीजिए। कार्य को सांगोपाग पूर्ण कीजिए और प्रतिदिन वैसा ही कीजिए। ऐसा न हो कि कुछ दिन अच्छा काम दिखलाकर और अपने अधिकारियों का

विश्वास प्राप्त करके वाद में आप ढीले पड़ जाएं। जब काम ही की कमाई आप खाते है तो उसको दूषित या खंडित न कीजिए। अपनी वस्तु को पागल या पशु ही तोड़ते-फोड़ते हैं। कर्तव्य-पालन में सच्चे रहिए। अपने गुणों को चमकाते रहिए। अंग्रेजी में एक कहावत है कि अपने तारो को चमकने दो।[1] आशा से अधिक आप अपनी सफलता दिखाएगे, तभी आपके नक्षत्र चमकेगे। इस वात को याद रखिए कि कठिन परिश्रम की उतनी प्रतिष्ठा नही होती जितनी कि सफल परिश्रम को। सफल परिश्रम भी वही मान्य होता है जिसकी सफलता का क्रम न टूटे।

४. अपने को अपरित्याज्य अथवा किसी कार्य के लिए सर्वोपयुक्त न मानिए। ऐसा मानने से अभिमान बढता है और आप धोखे मे रहते है। यह मानकर कार्य कीजिए कि आपसे स्पर्द्धा करनेवाले और लोग भी है और आपको अभी अधिक उपयुक्त बनना है। कार्य करने मे निश्चिन्तता और अनिश्चिन्तता न होनी चाहिए। अपने ऊपर तथा दूसरों के ऊपर आवश्यकता से अधिक विश्वास न कीजिए। प्रतियोगिता के लिए अधिक आत्मवल का सचय करते चलिए।

५ मिट्टी में वीज की तरह अपने काम में आप समाइए। सफल होने का यही प्राकृतिक उपाय है। कुछ दिनों में आप शाखावान् हो जाएगे। स्पष्ट शब्दो में, काम के समय काम की धुन रखिए। अपना सारा ध्यान उसीपर केन्द्रित कीजिए। काम मे अपनी व्यक्तिगत बातों को अलग रखिए। दूसरो की व्यक्तिगत चर्चा से भी अधिक बचिए। 'काम से काम' यही सिद्धान्त बनाइए; और सचाई, परिश्रम तथा एकाग्रता को सफलता का मूलमन्त्र जानिए। एक दिन मे सफलता न

---

१. Let your stars shine.

मिलेगी; निरन्तर दैनिक अभ्यास से ही सफलता मिलती है, उन्नति होती है। कठिनाइयों को पीछे ठेलिए, शक्ति का उपयोग एव विज्ञापन कीजिए और काम मे रस लीजिए। इसी प्रकार आप पनप सकेंगे।

६. जहां आप काम करते है वहा के नियमो का ठीक-ठीक पालन कीजिए। जिसके नीचे है उसके प्रति कृतज्ञता का भाव रखिए; उसके हानि-लाभ को अपना समझिए; हिसाब-किताब में सच्चे प्रमाणित होइए—आवश्यकता से अधिक काम के सिलसिले में भी खर्च न कीजिए; काम को लटकाइए मत; पेच न मारिए; पुरस्कार के लोभ से कोई कार्य न कीजिए; मेहरबानी की आशा न कीजिए क्योंकि काम ही के लिए आप वेतन पाते हैं; किसीकी पीठ पीछे निन्दा न कीजिए और विदा होते समय भी सद्भाव के साथ विदा लीजिए जिससे आगे का सम्बन्ध तो बना रहे। कृतघ्नता की प्रवृत्ति आत्मनाशी होती है।

७. किसी काम मे क्रिया-द्वेषी, हठी, दुराग्रही न बनिए और अपनी भूलों को तत्काल स्वीकार करके पूरी जिम्मेदारी लेने का साहस रखिए। अनुमान द्वारा नही, परीक्षा द्वारा यथार्थता को समझिए। यदि कोई कार्य आपसे असाध्य हो तो उसके करने का झूठा आश्वासन न दीजिए।

८. जो भी कार्य आपके ज़िम्मे हो उसमें अपनी प्रतिभा की झलक दिखाइए; शीघ्रातिशीघ्र उत्तम ढग से पूर्ण करके बुद्धिमत्तापूर्वक अपनी सेवाओं को प्रकट करते रहिए। कार्य की उपयोगिता को समझिए, योजना बनाकर उसको ठीक रीति से कीजिए। बीच-बीच मे मुरझाइए न; हरे-भरे बने रहिए, नही तो फलिएगा कैसे?

९. व्यवहार में सावधान रहिए। अपने से बड़ो को अग्निवत् मानिए। आवश्यकता पड़ने पर ही उनके निकट जाइए; अन्यथा दूर ही रहिए। अपने सहयोगियो के दृष्टिकोण का सम्मान कीजिए। उनसे

पूछते रहिए, सम्मति लेते रहिए। यथासम्भव सर्वोपयोगी बनिए; प्रत्येक परिस्थिति में शिष्ट, सभ्य बने रहिए; ठंडा लोहा गरम लोहे को काट देता है। व्यवहार से अपने को शान्तचित्त, सद्गुणी और चतुर ही प्रकट कीजिए।

१०. आवश्यकता से अधिक परिश्रमी और कार्य मे सतर्क न बनिए। एक से स्वास्थ्य की हानि होती है, दूसरो से स्वार्थ की, क्योंकि इनसे कार्य भारस्वरूप हो जाता है। स्वास्थ्य और स्वार्थ को नष्ट करके रुपया बटोरने का अर्थ है अपना घर फूककर वैरागी होने के लिए राख बटोरना।

११. जहां रहिए वहां पेड की तरह अपनी जड़े फैलाइए—अर्थात् नये-नये मित्र बनाइए और अपने पूर्व-परिचितों को भी अपने साथ काम मे लगाने का प्रयत्न कीजिए। विपत्ति की आधी में वही जड़े आपको सभालेगी। धक्का खाकर उखड न जाइए। फिर पूर्ववत् खड़े हो जाइए। यदि आप भाग्यवादी है तो महापडित व्यास के इस कथन को याद रखिए कि जैसे अयाचित दुःख आते रहते है, वैसे ही सुख आएगा, फिर दु.ख से घबराना और सुख के लिए व्याकुल होना केवल अपनी दीनता दिखलाना है :

> अप्रार्थितानि दुःखानि यथैवायान्ति देहिनम्।
> सुखानि च तथा मन्ये दैन्यमत्रातिरिच्यते ॥ (महाभारत)

१२. कार्य-सम्बन्धी ज्ञान के विशेषज्ञ होने के साथ अपनी लोकप्रियता बढाने के लिए किसी मनोरजक विषय में प्रवेश रखिए, जिससे आप काम के बाद लोगों को अपने मे आकर्षित कर सकें।

१३ उभयस्वामिक न बनिए अर्थात् एकसाथ ही दो समान अधिकारियो का आधिपत्य स्वीकार न कीजिए। आपके ऊपर जो अधिकारी है उसकी उपेक्षा न कीजिए। यदि सर्वप्रधान अधिकारी

आपपर विशेष अनुग्रह रखता हो तो भी अपने ऊपर के अधिकारी का पूर्ण सम्मान कीजिए और किसी कार्य से ऐसा न प्रकट होने दीजिए कि आप सर्वप्रधान से सीधा सम्बन्ध किए है या करना चाहते है। बीच वाले अधिकारी की उपेक्षा बडी घातक होती है। इस सम्बन्ध मे हनुमान का आदर्श मानिए। वे राम के विशेष कृपापात्र थे, फिर भी अपने स्वामी सुग्रीव को नही भूलते थे। लका में अपना पराक्रम दिखलाकर वे अभिमान-मद से अपनी मर्यादा को नहीं भूले। उन्होने शत्रु के राज्य मे सिहनाद करके राम की जय बोलते हुए कहा—रामचन्द्र से रक्षित राजा सुग्रीव की जय हो; महाशक्तिशाली राम की जय हो; महाबली लक्ष्मण की जय हो :

> जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
> राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥ (रामायण)

१४. यदि किसी काम मे आपको अपना भविष्य उज्ज्वल नही प्रतीत होता है तो आप विवश होकर उसीको न करते रहिए। बल्कि अपने लिए उपयुक्त अवसर और स्थान ढूढते रहिए। परन्तु कुछ दिन परीक्षा और प्रतीक्षा करके तब स्थान परिवर्तन कीजिए। एक अनुभवी ने कहा है कि जो चक्कर नही काटता, वह दूर तक दौड़ता है।[1] इसका दूसरा अर्थ भी हो सकता है : जो इधर-उधर नही देखता चलता उसको लम्बी दौड़ लगानी पड़ती है। जो अर्थ आपकी परिस्थिति के अनुकूल पड़े उसीको स्वीकार कीजिए।

४. यदि आप कार्यार्थी है

यदि आप बेकार हैं तो पहली आवश्यकता इस बात की है कि आप उदासीन न बनिए। उदासीनों का युग बहुत पहले ही समाप्त हो चुका है। यह आशावादियों का युग है। हतोत्साह होते ही आदमी की

---

१. He runs far who never turns.

चेतना-शक्ति हत हो जाती है। जब मनुष्य अपने भविष्य को अधकार-मय देखता है, तभी उसके मन मे आत्मघात की भावना अकुरित होती है। बेकारी की दशा मे ही आत्मविश्वास और आत्मशक्ति की सर्वाधिक आवश्यकता होती है, अन्यथा मनुष्य की कमर टूट जाती है, वह डग-मगाने लगता है और अपने व्यक्तित्व को सस्ते मूल्य पर बेच देना चाहता है। बेकारी मे भय बढ जाता है।[1]

१. चित्त के भय और निराशा को निर्मूल कीजिए और सैकड़ों-हजारों उदाहरणो से सिद्ध उस शास्त्र-वाक्य मे विश्वास कीजिए कि अध्यवसाय से कुछ भी असाध्य नही है 'नाऽसाध्य तपसा किंचित्' (महाभारत)। उस बात मे विश्वास कीजिए कि सासारिक जीवन मे यह प्रमाणित हो चुका है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वय ही अपनी रुपया बनाने की टकसाल है।[2] यदि आप यह सोचकर निराश हो कि आपकी आयु अधिक है, अतएव मौके आपके हाथ से बाहर निकल गए है तो यह स्मरण रखिए कि ससार मे चौंसठ प्रतिशत लोगो ने पैंतालीस से पैंसठ वर्ष की आयु मे ही बडी-बडी सफलताए प्राप्त की है। जो उत्सुक हो वे अमरीका से प्रकाशित 'साइस डाइजेस्ट' नामक बहु-प्रसिद्ध पत्रिका के नवम्बर, १९४६ के अक मे इसका विस्तृत विवरण देखे।

२ स्वावलम्बी बनने का सकल्प कीजिए और आशा-उत्साह के साथ कीजिए। कमजोर बैटरीवाली मोटर की तरह न बनिए कि जब स्त्री-बच्चे पीछे से आपको ठेले तभी आप रवाना हो। स्वय चेतिए। गृहमोही बनकर न बैठिए। ससार की बडी सम्पत्तिया, जैसे प्रकाश,

---

१ Fear increases in inactivity.

२. Every man is his own mint.

हवा, रुपया, आपकी श्रीमती, वाहर ही से आती हैं ; वे घर मे नही पैदा होती ! अतएव कर्मक्षेत्र में पधारने का निश्चय, दृढ निश्चय कीजिए। सजीव होते हुए स्थिर होना अप्राकृतिक कर्म है। पक्का निर्णय कीजिए कि आप समर्थ है, कुछ करके ही रहेगे। अपने सामने किसी उद्योगी महापुरुप का आदर्श रखिए और उसके जीवन-वृत्त से प्रेरणा लीजिए।

३ अपनी स्थिति को देखते हुए भविष्य की एक योजना बनाइए। इस वात को ध्यान में रखिए कि आपके पास क्या है या आप स्वयं क्या है—इन्हींमें से एक आधार पर आपका अर्थागम निर्भर करेगा। यदि आपके पास धन नही है तो गुणों का सचय और विकास कीजिए। चरित्र-स्वभाव को सुन्दर बनाइए क्योकि यही निर्धन के धन है। दूसरो को प्रभावित और अपने को ठीक-ठीक व्यक्त करने की कला का अभ्यास कीजिए। योग्यता प्राप्त कीजिए। जिस कला में आपकी विशेप रुचि हो उसकी विशेष योग्यता प्राप्त कीजिए। अपने को उसीका विशेपज्ञ बनाइए। कोई भी उपयोगी ज्ञान या कौशल कर्मजीवी का मूल द्रव्य होता है। काव्य-कला नही, व्यवसायात्मक ज्ञान और व्यावहारिक कला को अपनाइए। किसी पद को लक्ष्य बनाकर अपने को उसके सर्वथा योग्य वनाइए और ऐसे ही काम को चुनिए जो श्रमसाध्य हो। सार-रूप मे, इस विपय के एक सुप्रसिद्ध लेखक के शब्दों मे जिस नवयुवक के पास धन नही है, उसका पहला व्यवसाय, धर्म या कर्तव्य यह है कि वह स्वय अपने व्यक्तित्व को अधिक से अधिक मूल्यवान वनाए।[१]

---

१ The first business duty of every young man who is not rich is to put more and more value into himself.

—Casson (How to Make More Money This Year)

यदि आप व्यापार करना चाहते है तो आत्म-सबल को मूलधन, बुद्धि को प्रबन्ध और हाथ-पैर को मजदूर बनाकर अपने कार्यालय की स्थापना करने की कल्पना कीजिए।

४ अधिक से अधिक परिचय बढाइए; वह आगे कार्य देता है। अपने से बड़ो की सगत कीजिए। सभा-सोसाइटियों मे भाग लीजिए, अवैतनिक रूप से भी दूसरो की सेवा करने मे कभी न चूकिए, भाषण दीजिए, लेख लिखिए अथवा लोकप्रिय बनने का कोई भी गुण प्रकट कीजिए। राह पर चलते रहिए, कोई न कोई रीझनेवाला मिल जाएगा।

५. काम के लिए निकलिए। घर बैठे काम नही आ जाएगा। विदुला ने अपने आलसी पुत्र सजय को जो उपदेश दिया था उसको ध्यान मे रखिए। उसने कहा था कि जिन कार्यों का आरम्भ ही नही किया जाता, वे कभी सिद्ध नही हो सकते : 'अथ ये नैव कुर्वन्ति नैव जातु भवन्ति ते।' (महाभारत)।

काम के लिए निकलने मे सकोच न कीजिए · 'जब नाचन निकसी बावरी तब घूघट कैसा ?' (कबीर)। हा, भिक्षुक बनकर न निकलिए। अपने को किसीका दासानुदास न मानिए। नौकरी के लिए जाने मे भिक्षाटन की प्रवृत्ति रखना मूर्खता, कायरता है। अपने गुणो को उचित मूल्य पर विक्रय करने का भाव लेकर चलिए। यथासम्भव नियुक्त करनेवाले अधिकारियो का साक्षात्कार कीजिए। प्रार्थना-पत्र पर ही पूरा भरोसा न कीजिए। उससे आपकी योग्यता और आपके व्यक्तित्व का पूरा परिचय नही मिलता। इसीलिए प्रत्येक नियोजक प्रार्थी का साक्षात् दर्शन करना चाहता है। सामने जाने मे कांपिए मत। यह न समझिए कि आप उससे ऋण या दान लेने गए है। यही समझिए कि आप अपनी योग्यता बेचने जाते है। सप्रभाव मिलिए। आत्मविश्वासहीन होने पर

आप अपना बुरा प्रदर्शन करेंगे।

अपने साथ और अपने प्रार्थना-पत्र के साथ दो-चार प्रतिष्ठित व्यक्तियों के प्रमाण-पत्र रखिए। वही आपके मामले मे आपके वकील होगे। आत्मप्रशंसा से अधिकारी प्रभावित न होगा, क्योकि वह आपसे भी चतुर होता है, तभी तो वह अधिकारी है और आप बेकार। प्रार्थना-पत्र मे स्वस्ति-वचन और भावुकता की इस तरह की बाते न लिखिए कि यदि आप हमे शरण मे ले लेंगे तो हम जन्म-जन्मान्तर में परमपिता परमात्मा से आपकी दीर्घायु के लिए प्रार्थना करेंगे। उसमे अपनी योग्यता और अपने अनुभव का ही उल्लेख कीजिए और व्यावहारिक भाषा का प्रयोग कीजिए—अलकृत का नही।

६. कही विफल होने पर मिट्टी के ढेले की तरह गिर न पडिए। गेद की तरह उछलते रहिए। भाग्य का द्वार वार-वार खटखटाते रहिए। वह सोता भी होगा तो झुझलाकर ही सही, एक वार द्वार खोल देगा। द्वार खुलते ही एक वार साधिकार भीतर घुस जाइए। गाधीजी ने लिखा है कि कैसा भी छोटा मौका मिले, उसको हाथ से जाने न देना चाहिए।[1] डिज़रायली ने लिखा है कि निरन्तर उद्योग करना ही कृतार्थता का मन्त्र है।[2]

अतएव पख फैलाकर उड़ते रहिए। नीति-वचन है कि वैठा हुआ गरुड भी वैठा रह जाता है, एक पद भी आगे नही वढ़ता, और चलनेवाला चींटा भी कुछ समय मे कई योजन दूर पहुच जाता है। योग्यता लेकर वैठे न रहिए। उसमे मोरचा लग जाएगा। इसको सत्य मानिए कि अधिकाश लोग कर्म-दोप के कारण नही वल्कि अपने अकर्म-दोप के

---

१ No opportunity should be missed however trifling.

२. The secret of success is constancy to purpose.

कारण दु ख भोगते है । महाभारत मे कथित विदुला के इस उपदेश को कठस्थ रखिए . "तुम सेवकों से हीन, अन्य के भोजन से पलनेवाले दीन, पुरुपार्थहीन पुरुपो की वृत्ति का अनुवर्तन न करो । जैसे पके फल के वृक्षो से पक्षीगण जीव धारण करते है, वैसे ही जिसके आश्रय मे अनेक प्राणी रहे, उसीका जीवन सफल है ।"

५. बातचीत

वाणी-बल की महत्ता

किष्किन्धा के निकट वाक्-प्रज्ञ हनुमान की बातो से मुग्ध होकर राम ने लक्ष्मण से यह कहा था : 'शब्दप्रपचरहित, पद और वर्णो के सन्देहरहित, न बहुत शीघ्र, न बहुत विलम्बयुक्त, हृदयस्थ और कठगत (मध्यम) वाक्य, मध्यम स्वर मे वर्तमान है। यह संस्कारयुक्त, क्रमयुक्त, शीघ्रतारहित, विलम्बरहित, कल्याणी, मनोहर वाणी का उच्चारण करता है।...हृदय (अर्थात् सरस), कठ (अर्थात् ठीक से ध्वनित) और सिर (अर्थात् विचारपूर्ण) मे स्थित इस चित्रवाणी से किसका चित्त सतुष्ट नही हो सकता ?—खड्गधारी वैरी का भी हो सकता है !'

हनुमान के वाग्वैभव से राम विशेष प्रभावित हुए थे और हम जानते है कि उसीके कारण राम-सुग्रीव की मित्रता स्थापित और दृढ हुई। सुग्रीव सौ चिट्ठिया लिखकर भी राम की वह मित्रता प्राप्त नही कर सकते थे जो उन्होने अपने वाक्पटु मत्री को भेजकर सहज में प्राप्त कर ली। इस घटना के बाद भी हम रामायण मे अनेक प्रसग ऐसे देखते है जहा हनुमान की रणवीरता से ही नही, उनकी वाक्-वीरता से अनेक कार्य सफल हुए है। महाबली रावण की लंका में जाकर, वहां वन्दी होकर भी अकेले हनुमान अपने वाणी-बल के प्रभाव से बचकर और प्रयोजन को सिद्ध करके वापस आ सके थे। वन्दी बनाए जाने पर उन्होने केवल अपनी वाणी-शक्ति का आश्रय लिया था। उसके द्वारा रावण के राजसम्मान पर आघात किए बिना उन्होंने आत्मसम्मान की रक्षा की थी। रावण ने जब उनसे उत्पात करने

का कारण पूछा तो उन्होंने कहा कि मैं तो राज-दर्शन का इच्छुक था; साधारण अवस्था में आप तक पहुचना कठिन था, इसलिए मैंने वन को विनष्ट किया ; तदुपरांत आपके युद्धाकांक्षी वीरगण मुझसे युद्ध के लिए आए और आत्मरक्षा के लिए मुझे लड़ना पडा। इस प्रकार मै आपके दुर्लभ दर्शनो को प्राप्त कर सका। इसके बाद हनुमान ने पुनः विनम्र होकर कहा, "मैं राज-कार्य से यहा आया हूं ; आपके भाई वानरराज (सुग्रीव) ने आपका कुशल पूछा है और आपके हित के लिए एक सदेश कहलाया है···।" इस प्रकार अपनी शिष्ट और समयोचित वाणी से हनुमान ने रावण को विशेष प्रभावित किया। सीता के समीप भी उन्होंने बुद्धिमत्ता से बाते करके उनके विश्वास और धैर्य को दृढ़ किया था। रावणकी सवलता और राम की निस्सहायावस्था पर विचार करके जब सीता निराश थी तो हनुमान ने उनको प्रबोधन देते हुए कहा, "हे देवी, वानराधिपति सुग्रीव करोड़ों वानरोंसहित शीघ्र यहा आएगे। वे सब वानर मुझसे अधिक या मेरे समान है, मुझसे कम कोई भी नहीं है, जब मैं ही यहां चला आया तो उनका क्या कहना , काम करने के लिए छोटे ही भेजे जाते है, बडे नही : 'नहि प्रकृष्टा प्रेष्यन्ते, प्रेष्यन्ते हीतरे जनाः।' " इस प्रकार अपनी वाक्पटुता से रामदूत ने अपने दोनों प्रयोजनो को सिद्ध किया—एक ओर तो उन्होने राक्षसराज की नगरी में प्रवेश करके राम और सुग्रीव के बल-वैभव का प्रदर्शन किया तथा प्रदर्शन के वाद भी अपने जीवन को सुरक्षित रखा और दूसरी ओर सीता का पता लगाकर उन्होंने उनसे राम का सन्देश ही नही कहा, बल्कि उनके सशय को मिटाकर उनके आत्मबल को भी सुदृढ किया। इससे राम का कार्य ही नही सफल हुआ, हनुमान की प्रतिष्ठा भी शतगुणित हो गई। वे सफल होकर जब लौटे तो प्रतीक्षातुर वानरो ने उनको आखो पर उठा लिया : 'हनूमन्तं महावेग वहन्त इव दृष्टिभिः।' सबकी

दृष्टि मे हनुमान का महत्त्व बढ गया।

वाणी-बल का प्रभाव बतलाने के लिए हमने ऊपर हनुमान का उदाहरण दिया है। वर्तमानकाल में भी देखते है कि राजनीति और व्यापार आदि की बडी-बडी समस्याए बातो द्वारा सुलझाई जाती है। बडी-बड़ी उलझने जो लिखा-पढी और युद्ध से भी नही सुलझती वे चतुर वाक्-विशारदों के मिलने-जुलने से तय हो जाती है। मनुष्य का सार्वजनिक जीवन बातों ही से चलता है। हम अपने दैनिक जीवन मे प्रत्यक्ष देख सकते है कि बातो से लोग कितने प्रभावित होते है। हास्य-विनोद के दो-चार वाक्य सुनकर लोग हसने लगते है, क्रोध-तिरस्कार के वचन सुनकर उबलने लगते है और आदर-सत्कार के शब्दों को सुन-कर पिघलने लगते है। उन बातों से न तो किसीके शरीर पर चोट लगती है, न किसीको कुछ आर्थिक हानि-लाभ होता है, फिर भी उनका प्रभाव मनुष्य पर बहुत पडता है, यह स्पष्ट है। बातो द्वारा वशीकरण और उच्चाटन दोनो सिद्ध होते देखे जाते है। इसलिए शब्दो की मत्र-शक्ति को कौन न स्वीकार करेगा ? सुन्दर शब्दावली के प्रयोग से लोग एक-दूसरे के प्रेमपाश मे बध जाते है। अच्छे वक्ता श्रोता को मत्रमुग्ध कर लेते है। इसके विपरीत कर्कश बातो से बड़े-बड़े कलह होते हैं, लोग बिना मारे ही मर जाते है और सुकुमार हृदय के व्यक्ति कभी-कभी आत्महत्या तक कर लेते है। मनुष्य पर बातो का उतना ही असर पडता है जितना पशु पर डडे का। इसका कारण यह है कि मनुष्य एक भावना-प्रधान जीव होता है। बाते उसके अन्तस्तल के स्वभाव एव ज्ञान को वहन करती है और श्रोता के भावना-क्षेत्र मे जाकर पैठ जाती है। वायु द्वारा जिस प्रकार किसी पुष्प का सौरभ एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुंचता है, उसी प्रकार वाणी द्वारा एक की भावना दूसरे के अन्तस्तल मे सुगमता से पहुंच जाती है। मूलत भावनामय होने के

कारण मनुष्य वाणी द्वारा सचालित भावो की चोट से आन्दोलित हो जाता है। यदि ऐसा न होता तो बातो की साधारण हवा से न तो कोई झूमने लगता और न कोई उद्विग्न होता। विचारवान एव भावुक होने के कारण मनुष्य बातों के मर्म को ग्रहण करके अपने मर्मस्थल में प्रभावित होता है। मनुष्यो ही मे जो मूढ और हतबुद्धि होते है, उनपर वाणी का कोई प्रभाव नही पडता।

मनुष्य के भीतर व्यक्तित्व की पहचान उसकी वाणी से ही होती है। ज्ञान, स्वभाव, चित्त-दशा, विचारधारा सभी का पता वाणी से लगता है। जिस प्रकार घडे को बजाकर देखा जाता है कि वह टूटा तो नही है, उसी प्रकार बातचीत से देखा जाता है कि मनुष्य का मस्तिष्क परिपक्व है या नही? वाणी से मनुष्य के अन्तस्तल की खिड़की खुल जाती है, उसके चरित्र की नाप मिल जाती है। लिखित भाषा उतनी प्रभावशाली नही होती। इसका कारण यह है कि लिखित भाषा के साथ स्वर नही सयुक्त रहता। स्वर मे स्वय एक शक्ति होती है। वह उन वायु-तरगो को आन्दोलित करता है जो हमारे शरीर को ही नही अन्तस्तल को भी स्पर्श करती है। उदाहरण के लिए वीणा या किसी वाद्य-यन्त्र के स्वर को लीजिए। उस स्वर मे कोई अर्थ नही होता, फिर भी हृदय पर उसका प्रभाव पडता है। स्वर के साथ जब सार्थक वाणी का सयोग होता है तो भाव, जो वाणी के मूल तत्त्व होते है, विशेष उद्दीप्त हो जाते हैं। स्वर-सयुक्त होकर वाणी वायु-तरगो को आन्दोलित करती हुई अपने स्वाभाविक मार्ग—कान—से होकर श्रोता के अन्तस्तल मे जाती है। उसकी छाप गहरी पडती है। शब्दों मे जो मत्र-शक्ति आती है, वह शब्द-रचना के साथ स्वर-सयोग से आती है। इस वैज्ञानिक सत्य को समझकर ही ऋषिगण स्तोत्रो को उच्च-स्वर से उच्चारित करने का विधान बता गए है। ध्वनि से सोता

हुआ मनुष्य उठकर चैतन्य हो जाता है, फिर उसके भाव क्यो न जगेगे? लिखित भाषा इस सहयोगी से वचित रहती है। वह अस्वाभाविक रीति से ज्ञान-क्षेत्र मे प्रवेश करती है और उसको ग्रहण करने के पूर्व अपने भावो को उत्तेजित करना पड़ता है। स्वरयुक्त भाषा की तरह वह अपने ही आघात से श्रोता के भावना-भवन को नही खोल सकती। इसीलिए हम देखते है कि चिट्ठियो का उतना प्रभाव नही पडता जितना मिलकर बाते करने का। चिट्ठियो या लेखो के शब्द उतनी चोट नहीं कर पाते जितना भाषण, वार्तालाप के शब्द। इस रहस्य को दूसरे ढग से आप यो समझिए—कोई स्त्री देखने में या चित्र में परम रूपवती हो सकती है, उसके रूप की ओर आप आकर्षित हो सकते हैं, परन्तु मिलने पर यदि कर्कशा निकली तो अपनी निराशा और वेदना को आप ही समझ सकते है। इसके विपरीत यदि कोई असुन्दर स्त्री मधुरभाषिणी हो तो सभवत: आप उसके रग-रूप को उतना महत्त्व न देगे। सुन्दर चित्र या आकृति-मात्र से जिस प्रकार व्यक्ति-विशेष की सरलता और कुटिलता का पता नही चलता, उसी प्रकार लिखित वाणी से भी भाव के उत्कर्ष का पूरा पता तब तक नही चलता जब तक पाठक मन मे स्वय उसके अनुसार अभिनय न करे। अतः हमे मानना चाहिए कि प्राण की शुद्ध सन्तति अर्थात् भाषा का जन्म प्राण-पत्नी के गर्भ से ही होता है। (संस्कृत मे स्वर या वाणी को प्राण-पत्नी कहते है)। स्वर से ही हमारे भाव सजीव बनते है और सजीव होकर वे विशेष प्रभावशाली भी होते है। लिखित रूप मे भावो का स्मारक बनता है जिसको देखकर लोग अपने भावो को जागरित करते है।

वाणी के महत्त्व को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से देखकर अब हमें उसकी कला पर विचार करना चाहिए। उसके प्रभाव के सम्बन्ध मे

किसीको सन्देह नहीं हो सकता और इसमे भी किसीको भ्रम नहीं हो सकता कि सांसारिक व्यवहार का वही प्रमुख साधन है। व्यक्तिगत सफलता-विफलता बहुत अशों तक लोगो की वाक्पटुता या वचन-दरिद्रता पर अवलम्बित रहती है। अतएव अब हमे यह देखना चाहिए कि किन गुणो या विशेषताओं से वाणी-शक्ति का विकास होता है। दूसरे शब्दो मे किस प्रकार मनुष्य अपनी इस शक्ति का उपयोग सफलतापूर्वक कर सकता है, या अच्छी बातचीत के ढग क्या है और कैसे उनका उपयोग किया जा सकता है।

यह स्मरण रखना चाहिए कि बातचीत करना या वाणी द्वारा भाव-व्यजना एक बड़ी कला होती है। अन्य कलाओ की भाति वह अभ्यास से ही सिद्ध होती है। उसका अभ्यास केवल शब्द-कोष रटने से और व्याकरण कठस्थ करने से नही होता। बहुत-सी विद्याए सीख लेने पर भी यह कला मनुष्य मे अपने-आप नही पैदा हो जाती। यह देखा गया है कि बडे-बडे विद्वान भी कभी-कभी वाणी द्वारा अपने ज्ञान का ठीक-ठीक विज्ञापन नही करते। इसके विपरीत परिमित ज्ञानवाले व्यवहारकुशल एव चतुर लोग जो कुछ जानते है, उसके आधार पर अपनी बुद्धि को सुन्दर ढग से व्यजित कर लेते है और अपने भावो के चेक को समाज के बैंक मे सफलतापूर्वक भुना लेते है। महाकवि भारवि ने 'किरातार्जुनीयम्' मे सत्य ही लिखा है कि विद्वानों मे वे ही सर्वोत्तम है जो अपने मानसिक भावो को वाणी द्वारा प्रकाशित करते है; उनमे उनका स्थान और भी ऊचा होता है जो मनोगत गम्भीर अर्थों को चतुरतापूर्ण शब्दों मे व्यक्त करते है, किन्तु ऐसे लोग बहुत कम होते है :

> भवन्ति ते सभ्यतमा विपश्चिता,
> मनोगतं वाचि निवेशयन्ति ये।

नयन्ति तेष्वप्युपपन्ननैपुणाः,
गम्भीरमर्थं कतिचित् प्रकाशताम् ॥ (भारवि)

वास्तव मे, सब अवसरों पर एक-सी वाणी बोलने का विधान नही बनाया जा सकता। स्थान, अवसर, प्रयोजन और व्यक्ति-भेद से वाणी के रूप मे भी भेद होता है; उसके शब्दो ही में नहीं, उसके स्वरों मे भी भेद होता है। इसलिए गणित की तरह उसके सिद्धान्त निर्धारित नहीं किए जा सकते। उसके लिए मानव-स्वभाव का ज्ञान, परिस्थितियों का ज्ञान और आत्मज्ञान भी आवश्यक होता है। शास्त्रीय ज्ञान से उसका विशेष सम्बन्ध नही है क्योकि वह एक व्यापारिक कला है जो चन्द्रकला की तरह बदलती रहती है। वह देश-काल और विषय के अनुसार बदलती है।

यह सत्य है कि संभाषण के सम्बन्ध मे कुछ निश्चित नियम नहीं बनाए जा सकते, फिर भी कुछ बाते ऐसी है जो सामाजिक बातचीत मे ध्यान रखने योग्य हैं। उनका अभ्यास और यथाअवसर उपयोग वाणी को बल देता है। भावो की स्पष्ट और सार्थक व्यंजना के लिए उनका आश्रय लेना आवश्यक होता है। संक्षेप में, हम आगे उनपर विचार करेंगे।

मानसिक संयम और योग्यता

वाणी बुद्धि का ही एक अवयव है, अतएव विचारो के अनुसार ही उसका रूप बनता है। कंठ कितना भी मधुर हो, यदि उसमे से विचार-युक्त वाणी नहीं ध्वनित होती है तो वह व्यर्थ है। कुशल वक्ता वही हो सकता है जो अच्छा विचारक हो, जो अपने मस्तिष्क-पट पर अच्छे भाव-चित्र बनाने मे प्रवीण हो और जो सूक्ष्म-दृष्टि से तत्त्व को ग्रहण करने मे समर्थ हो। विचारो की प्रौढता, स्पष्टता, क्रमबद्धता, सजगता, गंभीरता और सरसता तथा ओजस्विता के अनुरूप ही वाणी

का शरीर बनता है। एक अंग्रेज़ विद्वान ने लिखा है कि शब्द विचारो के 'लेवल' (नामाकित पत्र) होते है।[1]—अर्थात् जिस प्रकार किसी शीशी या पार्सल पर लगे हुए 'लेबल' से पता चलता है कि उसमे क्या वस्तु है, उसी प्रकार शब्दो से पता चलता है कि मस्तिष्क के विचार क्या है और कैसे है ? वाक्य-दृढता या वचन-अस्थिरता से मानसिक दृढता तथा विचार-अस्थिरता का पता चलता है। टूटे-फूटे वाक्यो से मानसिक दीनता का ज्ञान होता है। वाणी-बल को सुदृढ बनाने के लिए पहले विचार-बल को सुदृढ़ बनाना आवश्यक होता है। सुलझे हुए विचार होने से वाणी भी सुलझी हुई होती है। मस्तिष्क मे यदि सन्देह, दुर्भाव या अहकार रहता है तो वचनों मे भी वही झलकता है। विचारो की सरलता और स्पष्टता से ही वाणी सरल एव स्पष्ट होती है और यह स्मरण रखना चाहिए कि सरलता और स्पष्टता ही उसके विशेष गुण होते है। सयत और सुबोध न होने से उसकी सार्थकता नष्ट हो जाती है।

इसलिए पहले अपने ज्ञान-केन्द्र को सुदृढ कीजिए; कल्पना-शक्ति, विवेचन-शक्ति और स्मरणशक्ति को सबल एव सजग कीजिए। प्रत्येक विषय को सुनकर उसके मर्म को समझकर, उसपर तर्क-बुद्धि से, न्याय-बुद्धि से विचार करने का अभ्यास कीजिए। जो भी विषय हो उसपर निश्चयात्मक मति से विचार करके, यथार्थता को ध्यान में रखकर तब उसके प्रयोजन को और परिणाम को देखिए। आपका ज्ञान-क्षेत्र जितना विस्तृत होगा, और उसीके अनुसार आपका दृष्टि-कोण जितना व्यापक होगा, उतना ही आपका व्यवहार-क्षेत्र भी व्यापक होगा। बहुज्ञ होकर आप अनेक क्षेत्रो मे प्रवेश करके अनेक

---

१ Words are the labels of thought

विषयो पर वार्तालाप कर सकेंगे, जिसके कारण आपका प्रभाव भी व्यापक रहेगा। अतएव जीवन-सम्बन्धी ज्ञान का संचय उपयोगिता की दृष्टि से करना आवश्यक है। उस ज्ञान की यथार्थता का अनुमान करके सार-मात्र को ग्रहण कीजिए और निस्सार को भूल जाइए।

मन मे सन्देह, निराशा, असहनशीलता और आत्म-असमर्थता के जो दुर्विचार हो उनको निर्मूल करके तब योग्य वक्ता बनने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि मन मे सन्देह रहेगा तो प्रायः आप सन्देह-ग्रस्त वाणी ही बोलेगे और आपमे तथा आपके श्रोता मे सहृदयता की भावना उत्पन्न नही होगी। निराशा लेकर बाते करने मे आप सफलता न प्राप्त कर सकेंगे और अंधेरे मे यथार्थ को टटोलते फिरेंगे। असहन-शील होने पर दूसरो की यथार्थ वाणी को आप नहीं सह सकेंगे और किसी बात पर तर्क-वितर्क न कर सकेंगे। अपने को असमर्थ मान लेने पर आप अपने विचारो को स्वतन्त्रतापूर्वक नही व्यक्त कर सकेंगे। आत्मविश्वास पहला गुण है जो किसी कुशल वक्ता मे होना चाहिए। जब आप किसीसे मिलते हैं तो यह विश्वास मन में रखिए कि आप तुच्छ नही हैं, आप उसको प्रभावित करेंगे और सफल होंगे। यदि आत्मविश्वास हिल जाएगा तो जो कुछ मस्तिष्क में होगा वह भी समय पर भूल जाएगा और सभवतः आप हकलाने लगेंगे अथवा वहां से किसी तरह जान छुडाकर भाग निकलने के लिए छटपटाने लगेंगे। आत्मविश्वास से ही दृढता आती है, और हमें नेपोलियन का यह मत ध्यान में रखना चाहिए कि दृढ़ता सब कार्यों में सफलता देती है।[1]

जब आप किसीसे मिलते हैं तो आत्मविश्वास के साथ दूसरो पर भी विश्वास कीजिए—इस बात का विश्वास कीजिए कि वे भी

---

१. Firmness prevails in all things. —Napoleon

विचारवान हैं और विचारों द्वारा प्रभावित हो सकते है—इस बात का विश्वास कीजिए कि वे भी बुद्धि रखते है, इसलिए आप बनावटी बाते करेंगे तो वे उसको भाप सकते है—और इस बात का विश्वास कीजिए कि वे भी उतने ही भावुक हो सकते है जितने कि आप है। अतएव अपने मन मे उनके लिए तथा उनके विचारो के लिए स्वागत का स्थान बनाकर तब बाते कीजिए। यदि आप स्वय सकीर्ण विचारो के होगे तो उनके विचारो को स्थान कहा देगे? इसलिए विचार-क्षेत्र को खुला रखिए, अर्थात् सुनिए सबकी, चाहे करिए मन की। पहले से ही किसी-के सम्बन्ध में दुर्विचार लेकर न मिलिए। बुरे आदमी के प्रति भी सद्भाव लेकर बातचीत करने से सदा सफलता मिलती है। दुर्भाव रखने से मनुष्य दूसरो के दुर्गुण ही देखता है जिससे उसको कोई लाभ नही होता। अग्रेजी के एक विचारवान लेखक ने कहा है कि अपने मन में कम दोष होने से ही हमारा पर-छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति कम होती है। हम दूसरो पर दोषारोपण तभी करते हैं जब स्वय हमारी ही मनोवृत्ति दूषित होती है।[१]

इसलिए पहले अपने स्वभाव को शुद्ध करना आवश्यक है। साथ ही अपने स्वभाव को नियन्त्रण मे रखना भी आवश्यक है। यदि आपमे झूठ बोलने या बातो को अतिरजित करने का स्वभाव होगा तो आपकी बाते हल्की हो जाएगी। उस दशा मे आप तिल का ताड बना लेगे और स्वय विवेक न कर सकेगे कि यथार्थ क्या है? नेपोलियन ने लिखा है कि जो व्यक्ति सीधी बात को घुमा-फिराकर कहने का और अनुचित रीति से सफलता प्राप्त करके प्रसन्न होने का आदी हो जाता है वह उचित-अनुचित मे कठिनाई से भेद कर सकता है। अर्थात् वह वचन-

१. The fewer faults we possess ourselves the less interest we have in pointing out the faults of other people

वक्रता से कार्य-सिद्धि करने का व्यसनी हो जाता है।[1]

ऐसा स्वभाव बनाकर आप दो-चार स्थानो पर बाते करने मे भले ही सफल हो जाए, किन्तु बाद में आपकी बातों की असत्यता प्रमाणित होने पर समाज मे उनका मूल्य घट जाएगा। बातों को मनोरजक बनाना आवश्यक है किन्तु झूठ के लेप से नही। विचारो के स्वाभाविक सौंदर्य, शब्दो के सौन्दर्य और स्वर के आकर्षण से उनको भूपित करना अधिक अच्छा होता है।

स्वर पर अधिकार

ज्ञान, विचार और स्वभाव के अतिरिक्त अपने स्वर पर ध्यान दीजिए। बाजा बेसुरा रहने से गानेवाला ठीक नही गा सकता। स्वर से ही वाणी के विचार मे बल आता है। उसीके अनुसार वाणी ओजस्विनी, मधुर, हृदयहारिणी या प्रभावशालिनी बनती है। उसीसे मनुष्य की आत्मशक्ति का पता चलता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण तो यही है कि बीमारी मे अशक्त होने पर बीमार का स्वर मन्द पड जाता है। स्वस्थ रहने पर स्वर ठनकने लगता है। स्वर के उतार-चढाव से शब्दो के अर्थ और वक्ता के अभिप्राय मे भेद पड़ जाता है। स्वर पर अधिकार रखने से ही विचारो का ठीक-ठीक विज्ञापन होता है।

यह आवश्यक नही कि अपनी शक्तिमत्ता दिखलाने के लिए चिल्लाकर बोला जाए। गला फाडकर चिल्लाने से वीरता का बोध नही होता। बच्चे और अशक्त लोग ही प्राय. चिल्लाते है। चिल्लाना असमर्थता का द्योतक होता है! स्वर का उच्चारण स्पष्ट और कर्णप्रिय

---

१ The man who habituates himself to the distortion of truth and to exultation at the success of injustice will at last hardly know right from wrong —Napoleon

होना चाहिए। उसमे गम्भीरता होनी चाहिए, पर कर्कशता नही; ओजस्विता होनी चाहिए, पर सुकुमारता के साथ। उसको वही तक उठाना चाहिए जहां तक उसकी स्वाभाविकता विनष्ट न हो। उसको इतना गिराना भी न चाहिए कि आधी बात मुह में रह जाए। उच्चारण की स्पष्टता और कर्णप्रियता वाणी के विशेष गुण हैं। अस्पष्टता और कर्ण-कटुता उसके प्रधान अवगुण है। शब्दोच्चारण से न तो शब्दों की ताप दागिए और न ओले बरसाइए। विचार के अनुसार ही उसको सुकुमार, गम्भीर, तीव्र या मन्द बनाइए। स्वर पर जिनका अधिकार नही रहता वे विनय की बात करते समय भी ऐसे प्रतीत होते हैं मानो किसीको डांट रहे हों। यह स्मरण रखिए कि स्वर की मिठास या कटुता से प्रायः लोग दूसरो की दृष्टि मे प्रिय या अप्रिय बनते है :

> भले-बुरे सब एक सौ जब लौं बोलत नाहिं।
> जानि परत है काक पिक ऋतु बसन्त के माहिं॥ (वृन्द)

शब्द और व्याकरण

शब्द ही वाणी के हाथ-पैर होते है। शब्दों का पर्याप्त ज्ञान होने से ही उनके द्वारा भावो की ठीक-ठीक व्यजना हो सकती है। ठीक समय पर ठीक भाव के लिए ठीक शब्द तभी मिल सकता है जब आपका शब्द-ज्ञान, अर्थ-ज्ञान और शब्द-सग्रह विशाल हो। इसमे असावधानी होने पर आप कुछ का कुछ कह सकते है और बार-बार आपको अपनी ही बात की भाषा ठीक करनी पडेगी। शब्दो पर जिनका अधिकार नही होता उन्हीको बार-बार कहना पडता है कि मेरा अभिप्राय यह नही था। ठीक अर्थ को व्यजित करनेवाले शब्दो का ज्ञान होने से मनुष्य अपनी वाणी को सार्थक बना सकता है और ठीक निर्णय पर पहुच सकता है। उसी प्रकार शब्दों के ठीक अर्थ जानने से वह दूसरो के

अभिप्राय को ठीक-ठीक समझ सकता है। शब्द-सामर्थ्य मनुष्य का विशेष गुण माना जाता है। यह देखा गया है कि जो लोग उच्च-पद पर होते है उनका शब्द-सग्रह साधारण लोगों से अधिक होता है। दूसरे शब्दो में, आत्मोन्नति के लिए अधिक शब्दों का ज्ञान आवश्यक है। बिना उसके मनुष्य अपने को ठीक-ठीक व्यक्त नहीं कर सकता और न दूसरों पर अधिकार ही जमा सकता है।

शब्द-सग्रह के समान ही उनका चुनाव और उनकी रचना भी आवश्यक है। कोष का रटना आवश्यक नही है; उसके उपयोगी और प्रचलित शब्दों का ज्ञान होना आवश्यक है। शब्दों के चुनाव और उनके द्वारा वाक्य-रचना से व्यक्ति की सुरुचि, सज्ञानता का पता चलता है। अच्छे कवि केवल सुन्दर शब्दो के चुनाव और उनकी क्रम-बद्ध रचना या शैली से ही भावों की तीव्रता बढ़ाकर उनको सजीव बना देते है। जब शब्दों का चुनाव ठीक नही होता और मनुष्य उनको एक शृखला में नहीं बांध पाता, तभी वह शब्दों का घटाटोप खड़ा करता है या शब्द-कुठार चलाता है। किसीसे बात करते समय इसका ध्यान रखिए कि आप मछली फंसाने नही, एक विचारवान जीव को वशीभूत करने निकलते है। कोई बुद्धिमान शब्द-जाल में नही फसता। कठिन शब्दो की झडी लगाने से भी कोई प्रभावित नही होता। सरस एव सरल शब्दो मे व्यंजित अकाट्य तर्क द्वारा ही दूसरों को प्रभावित या पराजित किया जा सकता है। उसी वक्ता की वाणी का प्रभाव पड़ता है जो थोड़े शब्दों मे अधिक से अधिक विचार भर सकता है। शब्दों की सख्या भावों की सख्या से सदैव कम होनी चाहिए और उनसे भावो की एकता और क्रम-बद्धता ही प्रकट होनी चाहिए। वास्तव में, उपयुक्त अवसर के लिए उपयुक्त शब्दों का चुनाव करके सारयुक्त वाणी बोलने से ही सफलता मिलती है। निरर्थक शब्दों

से विषय उन्हींमें खो जाता है और श्रोता को कभी इतना अवकाश नहीं रहता कि वह वक्ता के लिए बैठकर नीर-क्षीर-विवेक करे।

शब्दो मे आप सरल, मर्मस्पर्शी और विचारोत्तेजक शब्दों का चुनाव कीजिए और उनको यथास्थान प्रयुक्त करने की योग्यता प्राप्त कीजिए। जिस भाषा मे आप बोलते है, उसीके शब्दों का व्यवहार कीजिए। भाषा की वर्ण-सकरता उसके प्रवाह को नष्ट कर देती है। शिष्ट और सयत शब्दावली मनुष्य में बडप्पन को बढाती है। गन्दे शब्दो से अपना मुह पहले गन्दा होता है, दूसरे का चाहे हो या न हो। भारती का कण्ठहार उज्ज्वल शब्द-रत्नो से ही बनता है। शब्द-योजना में व्याकरण का ध्यान भी वाणी को स्वस्थ बनाता है। इसपर विशेष लिखने की आवश्यकता नही है, क्योकि यह सभी जानते है कि व्याकरण के बिना भाषा का सगठन ठीक नहीं हो सकता और वह उच्छृङ्खल हो जाती है। शुद्ध और मुहावरेदार भाषा अधिक हृदयहारिणी होती है।

मानव-स्वभाव का ज्ञान

विचार, स्वर और शब्द से अलंकृत भाषा भी यदि श्रोता के स्वभाव के विपरीत होती है तो वह उसपर प्रभाव नही डालती। जैसे, नायिका के हावभाव का वर्णन किसी रसिक को प्रिय लग सकता है किन्तु किसी कामकाजी को महा अप्रिय लगेगा। उसको उसकी अपेक्षा बाजार-भाव की चर्चा अधिक प्रिय लगेगी। लोगों की रुचि जानकर, उनकी परिस्थिति को ध्यान में रखकर उनके अनुकूल बातचीत करने से साधारण बाते भी उनको प्रिय लगती हैं। इसलिए अन्तर्वेदी अर्थात् मर्मज्ञ बनिए।

यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति एक अश तक स्वार्थी और स्वाभिमानी होता है। सबका अलग-अलग दृष्टिकोण होता है।

आप सबसे यह आशा नही कर सकते कि वे आपकी बातों को वेद-प्रमाण मानकर शिरोधार्य कर ले। उनका विरोध करते हुए भी यदि आप उनको अपनी बातो से जीतना चाहते है तो आपको उनके स्वभाव और उनके व्यक्तित्व का ध्यान रखना पड़ेगा। मानव-स्वभाव का ज्ञान अनुभव से ही हो सकता है। कुछ अन्य आवश्यक बातो का उल्लेख हम नीचे करेंगे।

छोटे मुह बडी बात न कीजिए—आत्मविश्वास और स्वाभिमान रखते हुए भी अपनी वास्तविक स्थिति का ध्यान रखिए और अपनी मर्यादा का ध्यान रखिए। उससे भी अधिक दूसरे की पद-मर्यादा और आत्मसम्मान का ध्यान रखिए। आत्मशक्ति के अनुसार ही अपना विज्ञापन करना शोभा देता है। अनधिकार-चेष्टा अप्रिय लगती है।

मैं-मैं न कीजिए—बहुत-से लोग अपने ही विषय मे इतने अनुरक्त हो जाते हैं कि वे हर बात में अपनी ही चर्चा करते है और आदतवश 'मैं' शब्द का प्रयोग अधिक करते हैं। 'मैंने किया', 'मैंने कहा', आदि उनकी बात-बात मे रहता है। दूसरो के सम्बन्ध मे वे बात नही कर सकते और करते भी है तो दोपारोपण के साथ। ऐसा स्वभाव होने पर बातो से वे दूसरो को धराशायी बनाने के आदी हो जाते हैं और आत्मप्रशंसा की बौछार करने लगते हैं। इसीको लक्ष्य करके एक विलायती विद्वान (ई० एफ० वीस्ट) ने कहा है:

You may have become a knocker and unconsciously slipped into the habit of finding fault It is also easy to acquire the 'I' habit and to become self-centred and to incessantly talk about your own affairs

इसका भावार्थ ऊपर दिया जा चुका है। सभ्य समाज में अधिक मैं-मैं करना बकरीपन या छिछोरापन का द्योतक होता है। दूसरो को

उनके विषय में अधिक बोलने का अवसर देना बातचीत का सुन्दर ढग है। आपकी लीला आपके लिए रामलीला हो सकती है, पर दूसरों की दृष्टि में वह एक नाटक से भी कम मूल्यवती होगी। अतएव अपनी ओर किसीको विशेष आकर्षित करने के लिए अधिक बातचीत उसीको करने दीजिए और आप उसके ठीक विचारो को उत्तेजित कीजिए। दूसरे जैसा अपने को समझते है, उनको वैसा ही बताना वाक्पटुता है और वैसा ही बताकर उन्हे अपनी ओर आकर्षित करना व्यवहारकुशलता है। उनको गिराकर और उनकी छाती पर भार-रूप होकर काम निकालने का प्रयत्न न कीजिए। वचनवीर सदा कायर गिने जाते है।

✓नाक मे दम न कीजिए—किसी बात को बार-बार घोंटकर दूसरों के गले में उतारने का प्रयत्न न कीजिए। उससे सुननेवाला ऊब जाता है और उसको बातो का भयंकर अजीर्ण हो जाता है। एक बात को बार-बार दुहराने से विचार-सकीर्णता का पता चलता है। जो बड़े बक्की होते है वे प्रायः झक्की और शक्की होते हैं।

✓आग लगाकर कौतुक न देखिए—किसीके विचारों को भड़काकर अथवा दो आदमियों में भेद डालकर स्वय अपना काम निकालने की चेष्टा न कीजिए। बिना वेतन के अपने को किसीका जासूस बनाना महामूर्खता है। इधर की बात उधर लगाने से स्थायी लाभ नही होता, उलटे आत्मसम्मान घट जाता है।

✓आकाश के तारे न तोडिए—बातचीत मे कल्पना-प्रसूत बातो का विशेष आश्रय न लीजिए। पैर को ज़मीन पर रखकर ऐसी बाते कीजिए जो सम्भव हों। बोलते-बोलते हवा मे न उड़ जाइए, नहीं तो जिसके पास आप बैठे होगे वह आपसे बहुत दूर हो जाएगा। बढ-चढ़-कर बातें करने से तुच्छता प्रकट होती है।

✓अपनी निन्दा-स्तुति न कीजिए—यदि आप अपनी प्रशसा करेंगे

तो सर्वप्रथम तो कोई इसपर विश्वास न करेगा क्योंकि नीच से नीच भी आत्मप्रशसा करता है। दूसरे, कोई इसमे रस न लेगा क्योंकि अपने मुख से अपनी प्रशंसा दूसरो को स्वभावत. प्रिय नही लगती। यदि आप मूर्खतावश या चालाकी से अपनी निन्दा करेंगे तो लोग समझेंगे कि जब यह स्वय अपने को इतना बुरा समझता है तो वास्तव में न जाने कितना बुरा होगा। निन्दा और स्तुति वही है जो दूसरों के मुख से निकले। अपने हाथ से अपने सिर पर फूल चढाने या जूता मारने का प्रयत्न क्यों करे। यह अस्वाभाविक है।

✓सिद्धान्तवादी न बनिए—छोटी-छोटी बातो को भी सिद्धान्त मानकर काठ की तरह जड़ न बनिए। शब्दों द्वारा अपने सिद्धान्तों का विज्ञापन करके उनकी ओट में बैठनेवाले लोग प्रायः सिद्धान्तों पर दृढ़ नही रहते। सिद्धान्तों का पालन कर्म से होता है वचन-चातुरी से नही। दूसरों के न्याय-सम्मत विचारों के अनुसार अपने विचारो में परिवर्तन करने की गुजाइश रखकर तब लोगों से विचारों का आदान-प्रदान कीजिए। ढोग और पाखड से सफलता नही मिलती।

✓काटने मत दौड़िए—कोई अप्रिय प्रसग उपस्थित होने पर भी यथासभव रसना की सरसता को विनष्ट न कीजिए। तुलसी की इस उक्ति को याद रखिए :

> तुलसी मीठे वचन तें सुख उपजत चहुं ओर।
> बसीकरण इक मत्र है, परिहरु बचन कठोर॥

कबीर का भी एक उपदेश स्मरण रखने योग्य है :

> ऐसी बानी बोलिए मन का आपा खोय।
> औरन को सीतल करै आपौ सीतल होय॥

प्रज्ञाभिमानी और प्रतिकूलवादी होने से बच रहिए। मूर्खता और दुष्टता के अतिरिक्त इन्ही दो कारणो से लोग अनर्गल प्रलाप करते

है। विचारहीन लोग ही बहुवक्ता होते हैं।

✓ न्यायाधीश या समालोचक न बनिए—बातचीत में न तो जज की तरह नपे-तुले शब्दों में फैसला देने की मनोवृत्ति रखिए और न समा-लोचक की तरह दूसरों को छानबीन करने की। उससे बातचीत की स्वाभाविकता नष्ट हो जाएगी। कोरे उपदेश से किसीपर प्रभाव नहीं पड़ता। अभियोगजनक या आक्षेपजनक वाणी सदा असह्य होती है। महामहोपदेशक बनने का प्रयत्न भी न कीजिए।

✓ ज्ञान को कण्ठस्थ रखिए—दीर्घसूत्री बनकर बाते करने न बैठिए और न पुस्तको के भरोसे रहिए। ज्ञान तो वही है जो आवश्यकता पडने पर अवतरित होने के लिए कण्ठ मे आ जाए। यदि ऐसा न होगा तो आप समय पर अपने मत की पुष्टि न कर सकेंगे। सुन्दर सूक्तियां और प्रामाणिक वचन कण्ठस्थ रहने से समय पर बड़ा काम देते हैं। वे ही आपके वकील हो जाते है।

✓ मौलिकता और सामयिकता का ध्यान सदैव रखिए—सफल वक्ता होने के लिए प्रत्युत्पन्नमति, कुशाग्रबुद्धि और प्रतिभाशाली होना आव-श्यक है। नई सूझ का सभी सम्मान करते है। उधार लिए हुए विचारों का प्रभाव विशेप नही पड़ता। सामयिकता का ध्यान रखना तो आव-श्यक है; क्योकि :

> नीकी पै फीकी लगे, बिन अवसर की बात।
> जैसे बरनत युद्ध में, रस सिंगार न सुहात॥ (वृन्द)

समय की सूझ ही तो सफलता की कुञ्जी है। प्रसंग के अनुसार भाषा के रूप मे अन्तर पड जाता है। जहां काव्य की चर्चा हो वहां अलकारयुक्त और भावुकतापूर्ण वाणी ही सर्वप्रिय मानी जाती है। जहां राजनीति का प्रसग हो वहा युक्तिपूर्ण और व्यापार तथा काम-काज में नपी-तुली खरी बातों का ही मान होता है। वहां गोलमोल बातों

से काम नही चलता।

सप्रयोजन और सप्रभाव बोलिए—जो कुछ भी आप बोलिए किसी उद्देश्य को सामने रखकर तर्क-सम्मत वाणी मे बोलिए। जिस प्रकार वकील अपने मामले को तैयार करके अपने पक्ष के समर्थन मे सावधानी से बोलता है, उसी प्रकार आप अपने विषय को तैयार करके गौरवपूर्ण ढंग से व्यक्त कीजिए। न घबराइए, न छटपटाइए और न निराशावादी बनिए। अन्त तक स्थिरमति से आशावन्त बनकर वाक्-शक्ति का प्रयोग कीजिए और तथ्य को तर्कपूर्ण शब्दावली मे सामने रखने का प्रयत्न कीजिए। अपने विषय पर अधिकारपूर्वक किन्तु विनययुक्त भाषा में बोलिए। विनययुक्त भाषा का अर्थ 'हे-हे' करना नही, बल्कि शिष्टतापूर्वक बोलना है। बातचीत मे शिष्टाचार और वेश-भूषा का भी बड़ा प्रभाव पडता है। वकील की तरह या बनिये की तरह एक-एक शब्द तौलकर बोलिए। शीघ्रता से शब्द-प्रयोग करना प्रायः हानिकर होता है। अपने मत के समर्थन के लिए वकील ही की तरह प्रमाण दीजिए और ध्यान रखिए कि स्वय आप ही के बयान से आपकी बात कही खडित न हो। सामाजिक वाक्पटुता के सभी गुण भी वकीलो से न लीजिए। उनकी तरह मनगढन्त बातो का सहारा लेना प्रतिष्ठानाशक हो सकता है। उनके जिरह करने के गुण को भी अपनाना ठीक नही। बातचीत मे पहेली बुझाना उसकी धारा को रोक देता है। वकीलो की तरह बात का बवडर भी न खड़ा कीजिए। हां, सत्य उन्हीकी तरह बनिए।

धारा-प्रवाह बोलिए—किसी विषय में निश्चित मत स्थापित करके जमकर बोलिए और शीघ्र न उखड़िए। धारा-प्रवाह का यह अर्थ नहीं कि आप बडबड़ाने लगे और वाणी के प्रवाह मे विषय, व्याकरण सब बह जाएं। उसका अर्थ है विचारो की शृङ्खला को जोड़े रखना और ग्र

निश्चित दिशा में आगे बढ़ना।

✓ चित्रवाणी बोलिए—चित्रवाणी का यह अर्थ नहीं है कि आप आंख-भौंह मटकाकर नाटकीय ढंग से बात करें। इस अध्याय के आरम्भ में हनुमान की वाणी के सम्बन्ध में हमने रामायण का जो अंश उद्धृत किया है उनमें चित्रवाणी का उदाहरण मिलेगा। चित्रवाणी का अर्थ है अपने भावों और उद्गारों को स्वाभाविक एवं मनोरंजक ढंग से व्यक्त करना; वाणी के साथ-साथ आकृति और अंग-चेष्टाओं की अनुकूलता अर्थात् भाव को सचित्र बनाना। आकृति, संकेत, गति, चेष्टा, बातचीत, नेत्र तथा मुख के विकारों से मन की बात ठीक-ठीक प्रकट होती है।

आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च।
नेत्रवक्त्रविकारैश्च लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः॥

वाणी को सरस बनाने के लिए उसके विषय में रस लीजिए और यथासंभव नीरस और अनावश्यक चर्चा से बचिए। हंसकर, उपमाएं देकर, कल्पना से रंजित करके, कलापूर्ण ढंग से व्यक्त की हुई भाषा विशेष प्रभावशालिनी होती है। शील और सौजन्य तो स्त्री की लज्जा और सदाचार की तरह भाषा के स्वाभाविक आभूषण होते हैं। हास्य-विनोद और भावुकता से भी वह सचित्र बन जाती है। किसी सुन्दर कला में रुचि रखने से भी उस विषय में वक्ता सुन्दर ढंग से बातें कर सकता है। चित्रवाणी का प्रयोजन यह है कि श्रोता वर्णित विषय को अपने कल्पना-नेत्र से भी देख ले :

तैं बरनें निज बैनन सों सखि।
मैं निज नैनन सों मनु देखे॥ (मतिराम)

✓ गुण-ग्राहक बनिए—स्वयं गुणी होकर भी दूसरों के गुणों का सम्मान कीजिए। पूजा करते समय जिस प्रकार आप जूते उतार देते

हैं, उसी प्रकार दूसरों से बाते करते समय दूसरों के दोष जो आपके मस्तिष्क के पैर में धारित हों, उनको उतार दीजिए। मक्षिका-वृत्ति लेकर आप केवल दूसरो की मवाद ही पा सकेंगे किन्तु भ्रमर-वृत्तिधारी होने पर आप मधु का सचय कर सकेंगे। निन्दक का कहीं सम्मान नही होता। जिससे आप बाते करते है, उसकी बातों से भी सार-अश को ग्रहण कीजिए और यथाअवसर उसकी प्रशसा हृदय खोलकर कीजिए। प्रशंसात्मक शब्दों में कंजूसी न कीजिए। आपकी प्रशंसा से दूसरे को आत्मसतोष होगा और वह आपको गुणज्ञ समझेगा। इस प्रकार दोनों एक-दूसरे की तरफ आकर्पित रहेगे और तभी प्रयोजन सफल होगा। प्रशंसा के पुल न बांधकर स्वाभाविक रीति से दूसरे पर यह प्रकट कीजिए कि आप उसकी बातों के मर्म को समझ रहे हैं। उसके अनुकूल बनकर आप अपने भी सुझाव दीजिए जिससे कि वह समझे कि उसकी बातें आपके भावों को जगा रही हैं। वह कोई हित की बात कहे तो तत्काल धन्यवाद देने में न चूकिए। कोई आपका उपकार करे तो यथाशीघ्र उसके प्रति विनम्रतापूर्वक कृतज्ञता प्रकट कीजिए। दूसरे यदि अपने सम्बन्ध मे कोई बात करते हों तो उपेक्षा न करके उसमे अपना व्यक्तिगत अनुराग प्रकट कीजिए और बोलनेवाले को उत्साहित कीजिए, उसकी उचित आकाक्षाओं को अधिक प्रबल बनाइए। लोगों से सहमत और एकमत होने की चेष्टा कीजिए, लेकिन औचित्य और प्रयोजन तथा परिणाम को ध्यान में रखकर। किसीके सिद्धान्तों पर तथा लोक-प्रथा और धर्म पर शब्द-बाण न चलाइए। सहानुभूति प्राप्त करने के लिए दूसरों के साथ सहानुभूति प्रदर्शित कीजिए। सहनशील होकर ही आप गुणग्राही और लोकप्रिय हो सकते है।

हितकर वाणी बोलिए—बातचीत में सत्य का ध्यान रखना आवश्यक है, किन्तु साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि वह कठोर

सत्य न हो। जहां कठोर सत्य कहने की विवशता हो और न्याय का प्रश्न हो वही अप्रिय सत्य भी कहना चाहिए अन्यथा अपने तथा दूसरों के हित को ध्यान मे रखकर बोलना ही सत्य का सच्चा स्वरूप होता है। इस विषय में आप मर्यादा-पुरुषोत्तम राम की इस सम्मति को ध्यान में रखिए, जो उन्होने वन गमन के समय सुमत्र को दी थी। राम जब रथ में बैठकर अयोध्या से जाने लगे तो राजा दशरथ अधीर होकर रथ के पीछे दौड़े और दूर से चिल्लाकर सुमत्र को आज्ञा देने लगे कि रथ को खड़ा कर दो, किन्तु राम ने आज्ञा दी कि रथ तेज़ करो। सुमत्र को धर्म-सकट में पड़े देखकर राम ने कहा कि लौटने पर यदि राजा तुमसे रुष्ट होकर पूछे कि राजाज्ञा का पालन क्यों नही किया तो कह देना कि रथ के चलने के शब्द के कारण आपका कहना सुनाई नहीं पड़ा—हम (झूठ बोलने के लिए) इस हेतु कहते है कि दुःख को बहुत काल तक रखना पाप का मूल होता है।

इस नीति को ध्यान मे रखकर प्रियवक्ता बनिए, पर अत्यधिक नहीं। अत्यधिक प्रियवक्ता होने से झूठा होना पडता है और 'प्रियवादी भवति धूर्त्तजनः।' यथासभव सत्य को भी विनम्रतापूर्वक ही बोलिए और अवसर देखकर झुक भी जाइए। अकड़े रहने से पेड़ की तरह आधी में टूटने का डर भी रहता है। दूसरों का प्रबल वेग देखकर झुकनाभी सीखिए क्योकि उनका वेग शान्त होने पर आप फिर खड़े तो मिलेगे। स्वयं झुककर दूसरों पर विजय करना[१] आजकल की एक विशेष युक्ति मानी जाती है।

अनुभवहीनता न प्रकट कीजिए—किसी बात मे दूसरो पर यह न प्रकट कीजिए कि आप बिलकुल कोरे है। यदि कोरे हों तो यथासभव

१. Stoop to conquer.

मौन रहिए (मौन सर्वार्थसाधनम्) और दूसरे को अपना ज्ञान उगलने दीजिए। उसकी बातो मे से आपको बातो के लिए सामग्री मिल जाएगी। बीच-बीच मे उससे सहमत होते रहिए। यदि आप विशेष बुद्धिमान है तो आदर्शवादी नही बल्कि यथार्थवादी बनकर बाते कीजिए अन्यथा आपके ज्ञान की शुष्कता और निरर्थकता प्रकट होगी। दूसरे पर अपनी बुद्धि की सर्वमान्यता न प्रकट कीजिए। विचारो का स्वतन्त्र आदान-प्रदान कीजिए, पर अपने सभी रहस्यों को खोलकर दूसरों के सामने न रखिए। इस सम्बन्ध में एक अनुभवी लेखक ने लिखा है कि दूसरों से बुद्धिमान बनो किन्तु उनको अपनी बुद्धि की थाह मत लेने दो।[1]

बातचीत करते समय आप दूसरों की बातों से ही नही उनकी आकृति आदि से भी उनके मर्म को तौड़िए, और चुपचाप उनके अभिप्राय को समझकर सावधान होकर बाते कीजिए। शब्दों ही से किसीके सम्पूर्ण भाव की गहराई न नापिए। शेक्सपियर ने लिखा है कि शैतान अपना काम निकालने के लिए धर्मशास्त्र का पाठ भी कर सकता है।[2] अतएव बातों मे विशेष न फंसिए। दूसरों के मस्तिष्क को पढ़िए और उसके अनुसार बाते कीजिए।

बातों मे उलझने या झगडने से भी अनुभवहीनता प्रकट होती है। प्रायः वही लोग झगड़ते है जिनमें तर्क-बुद्धि नहीं होती अथवा जो असहिष्णु होते है। विरोधी के साथ भी तर्क कीजिए और उसको यह विश्वास दिलाइए कि आप उसकी बात के तथ्य को समझकर तर्क कर रहे है। वह आपकी गुण-ग्राहकता पर अवश्य रीझेगा। किसी साधारण विषय मे अपनी अनभिज्ञता प्रकट करके चौकने से आपका

१. Be wiser than other people but do not tell them so

२. The devil can cite scripture for his purpose.

छोटापन सिद्ध होगा। गोल्डस्मिथ का यह कथन याद रखिए कि छोटी वस्तुए उन्हीको महान लगती है जो स्वय छोटे है।[1]

✓ बडो से मिलिए—यथासभव अपने से बडो में प्रविष्ट होने का और उनसे बाते करने का सौभाग्य प्राप्त कीजिए। मूर्ख के साथ सम्पूर्ण जीवन बिताने की अपेक्षा अनुभवी व्यक्ति के साथ एक घंटा बिताना अधिक फलदायक होता है। अपने से बड़ो से मिलने पर शिष्टाचार का ध्यान रखिए, उनकी प्रतिष्ठा का ध्यान रखिए, उनके साधारण निवेदन को भी उनकी आज्ञा मानिए और मिलने के बाद उनकी बातों को बाटते न घूमिए। उनको आप जो भी वचन दे उसका अक्षरशः पालन कीजिए। बातचीत मे और उसके बाद भी न तो उनकी बात को काटिए और न उसको खाली होने दीजिए। उनको सिर और आंखों पर रखिए।

✓ व्यक्तित्व से प्रभावित कीजिए—व्यक्तित्व में बडा आकर्षण होता है। जब आप किसीसे मिलते है तो अपने व्यक्तित्व को उद्दीप्त करके मिलिए। उसीको व्यक्तिगत आकर्षण-शक्ति[2] कहते हैं। व्यक्तित्व की सौम्यता और शील-सुजनता तथा मनोहर वाणी से सभी वश में हो जाते हैं। मिलने पर निर्भय रहिए; आख से आंख मिलाकर और समय-समय पर श्रोता को उसके नाम या उसकी पदवी से सम्बोधित करके बाते कीजिए। इससे आपके व्यक्तित्व का ठीक विज्ञापन होगा। श्रोता का कम से कम समय लीजिए और प्रथम परिचय मे दस मिनट से अधिक समय न लीजिए। उस दस मिनट मे कोई स्वार्थ की चर्चा न कीजिए; नव-परिचित के ही सम्बन्ध मे पूछताछ कीजिए। पूर्व-परिचित से मिलने पर भी उसके स्वास्थ्य आदि के सम्बन्ध मे कुशल-प्रश्न

१ Little things are great to little men.

२. Personal magnetism.

तो पूछ ही लीजिए। यथासम्भव लोगों के घर पर मिलिए ; कार्यालय में काम से ही मिलिए। जहा भी मिलिए वहां कातरोक्तिया न सुनाइए। बिना अधिक भूमिका बाधे हुए मूल विषय पर यथाशीघ्र पहुंचिए और उस विषय में यदि कोई न कोई नई बात सूझती है तो उस सूझ का श्रेय स्वय न लेकर दूसरों को लेने दीजिए। उससे आपका बड़प्पन ही प्रकट होगा। अपने मुख से दूसरों को श्रेय देकर भी दूसरों के मन के सारे श्रेय के भागी आप ही होगे।

यदि आप किसी पद पर हों तो अपने व्यक्तित्व को सर्वसुलभ न बनाइए। उस दशा मे अधिक घुलना-मिलना नहीं, बल्कि अधिक गम्भीर बने रहना ही आपके अधिकार को दृढ करेगा। सुप्रसिद्ध लेखक बर्नार्ड शॉ ने अपने विषय में लिखा है कि मैं बहुत बोलता हू ; धीर-प्रकृति होकर शक्तिमान बनने का प्रयत्न मैने कभी नहीं किया।[1]

मौन रहने से और वचन-गभीरता से निश्चित ही अधिकार-शक्ति बढ़ती है।

ध्यान से सुनिए—ध्यान से सुनना भी अच्छी बातचीत का एक प्रधान अंग है। कभी-कभी स्वय बोलने की अपेक्षा दूसरों की बाते ध्यान से सुनना अधिक प्रभावोत्पादक होता है। दूसरो को रिझाने की यह सर्वोत्तम युक्ति है। अग्रेजी में किसीकी एक छोटी-सी कविता है जिसमें इस कला की महत्ता बतलाई गई है। वह यह है .

"दूसरों को रिझाने का उपाय जानते हो ? बहुत सरल है—उनकी बातो को ध्यान से सुनो ; मुग्ध होकर, सरल बनकर, सूक्ष्मता और सावधानी से सुनो ; समझदारी के साथ आश्चर्यचकित होकर, वाक्पटुता या चाटुकारिता के साथ सुनो। इस प्रकार की मनोहर ढग

१. I talk a great deal I have never set up to be a strong silent man. —G. B. Shaw.

की बातचीत मे उनको अपार आनन्द मिलेगा अर्थात् इस प्रकार वे आपकी ओर अत्यधिक आकर्षित होगे।"[1]

इसमे सन्देह नहीं कि पर-सतोषण के लिए दूसरों की बातों को मत्रमुग्ध होकर सुनना सर्वोत्तम साधन है। किसी अहकारी से पाला पड़ने पर इसी साधन का प्रयोग कीजिए। उस प्रसग में यह भी ध्यान में रखिए कि सुननेवाला भी मूर्ख और अनुदार बुद्धि का न हो।

बातचीत के प्रभाव, उपयोग और ढग के सम्बन्ध में यही कुछ मुख्य बाते हैं। देश, काल और पात्र के अनुसार ही निर्णयात्मक बुद्धि से इस शक्ति का प्रयोग करना उचित है। मानव-जीवन में बातों का बड़ा महत्त्व है, क्योकि प्रत्येक विषय में सब यही देखते है और जानना चाहते हैं कि लोग क्या कहते है।

---

१. Would you know the way to woo him ?
It is simple—listen to him !
Listen graciously and sweetly,
Listen subtly and discreetly,
Listen with intelligence ;
With wide-eyed awe and eloquence,
He'ld find endless fascination,
In such brilliant conversation !

६. व्यवहारकुशलता

किसी विषय का विषयी या विशेषज्ञ होने की अपेक्षा व्यवहारज्ञ या उपायज्ञ होना अधिक सांसारिक सफलता देता है। विद्या-वारिधि होकर भी यदि कोई व्यवहार-चतुर न हो तो उसकी विद्वत्ता घर ही में रखी रह जाती है। इसके विपरीत विद्याशून्य होकर भी मनुष्य यदि व्यावहारिक बुद्धिवाला होता है तो वह अपनी साधारण योग्यता से भी बड़ा काम निकाल लेता है और लोकप्रिय बन जाता है। सारा ससार व्यापार-व्यवहार के आधार पर चलता है।

व्यवहार-ज्ञान की कोई एक रूपरेखा नही बनाई जा सकती। स्थान, कार्य, परिस्थिति, काल और व्यक्ति-भेद से उसकी कला में अन्तर पड़ जाता है। जो बात एक स्थान पर अनुचित एव अधर्म मानी जाती है, वह दूसरे प्रसग में उचित, अतएव कर्तव्य बन जाती है। दैनिक जीवन में सत्य से बढकर कोई धर्म नही है, परन्तु राजनीति तथा व्यवसाय में युक्तिपूर्ण व्यवहार ही सर्वमान्य है। युक्ति के साथ कुछ छल अवश्य मिश्रित रहता है। शुक्राचार्य ने लिखा है कि युक्ति प्रायः छलयुक्त होती है : 'युक्तिः छलात्मिका प्राय.।' और यह भी लिखा है कि जहा युक्ति-शक्ति दोनो संयुक्त रहती हैं वहां चारों ओर से विजय मिलती है :

यत्र नीतिबले चोभे तत्र श्रीस्सर्वतोमुखी। (शुक्रनीति)

इसलिए यह नही कहा जा सकता कि शुद्ध सत्य ही एकमात्र व्यावहारिक धर्म है। कही-कही युक्ति द्वारा ही सत्य-धर्म की रक्षा होती है। कृष्ण के जीवन-चरित्र से यह बात ठीक-ठीक समझी जा सकती है। जो कृष्ण महाभारत के आदि मे अर्जुन को गीता-धर्म का उपदेश

देते थे, वही परिस्थितिवश अर्जुन से विजय-लाभ के लिए कहते थे कि तू अब धर्म को त्याग दे . 'धर्ममुत्सृज पाण्डव ।' (द्रोण पर्व)। इससे यही प्रमाणित होता है कि समयानुकूल कल्याणकारी आचरण ही श्रेष्ठ व्यवहार-धर्म है। बृहस्पति ने कहा है कि केवल प्राचीन शास्त्रों के आधार पर अपने कर्तव्य का निर्णय नही करना चाहिए ; युक्तिहीन विचारो से धर्म-हानि होती है, अर्थात् कर्तव्य-कर्म पूर्ण नही होता :

केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्तव्यो विनिर्णयः ।
युक्तिहीने विचारे तु धर्महानिः प्रजायते ।। (बृहस्पति)

दूसरे शब्दो में कोरे आदर्शवादी न होकर यथार्थवादी होना चाहिए; धर्मावतार न बनकर समय-चतुर (अवसरवादी नही) बनना चाहिए। समय-चतुर वह है जो इस बात को जाने कि कब, कहा और किसके साथ कैसे व्यवहार करना चाहिए ? वह व्यवहार युक्तिपूर्ण होकर भी जब नैतिकता पर अवलम्बित रहता है तभी सफल होता है । सत्य-पक्ष की दृढता के बिना केवल बुद्धिकौशल या उपाय से विजय नही होती। जिससे अन्त मे सत्य की प्रतिष्ठा हो, वही श्रेष्ठ युक्ति है और वही मानव-धर्म है।

इस विषय को विशेष विस्तार न देकर हम जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रो मे व्यवहृत आचार के मूल सिद्धान्तों की ओर सकेत करेंगे। उनसे यह विषय अधिक स्पष्ट हो जाएगा और यह भी ज्ञात होगा कि कहां शुद्ध सरल आचरण ही व्यवहार-धर्म है और कहा युक्तिपूर्ण आचरण सत्य-धर्म की मर्यादा को बचाता है।

१. गृह-नीति

घर एक ऐसा स्थान है जहां पर शुद्ध सत्य-अहिसा-विश्वास-समन्वित व्यवहार ही सुखदायी होता है। पारस्परिक सद्भाव और

सद्व्यवहार से ही घर स्वर्ग हो जाता है। दाव-पेच, कलह, छल-कपट से वही नरक हो जाता है। गृह-नीति-सम्बन्धी इन मुख्य बातो पर ध्यान दीजिए :

१. परिवार किसी एक का नही, प्रत्येक पारिवारिक प्राणी का होता है। अपने घर मे सब बादशाह होते है, सब अपने अधिकारो की रक्षा चाहते है। उस स्वराज्य मे कोई अपमानित या तिरस्कृत नही होना चाहता। बाहर के अपमान लोग सह लेते है, परन्तु अपने घर में घरवालो द्वारा किया हुआ अपमान नही सह सकते। बाहर निर्धन होकर रह सकते हैं, परन्तु भाई-बन्धुओं के बीच मे निर्धन बनकर कोई नही रहना चाहता : 'न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम्।' मानव-स्वभाव ऐसा ही होता है। इसीलिए घर के छोटे से छोटे प्राणी की मान-रक्षा, स्वार्थपूर्ति होने से वह सतुष्ट रहता है और गृह सुसगठित रहता है। उपेक्षा, अन्याय से भीतर-भीतर विष फैलता है। पारस्परिक सहानुभूति, त्याग और प्रेम-व्यवहार से ही गृह-मर्यादा स्थापित रहती है।

कम से कम आजकल घरो में भी प्रजातन्त्र होना चाहिए। किसी एक की स्वेच्छाचारिता या निरंकुशता से घर का वातावरण पुराने हैदराबाद जैसा हो जाता है। गृह-स्वामी अब पत्नी को गृह-दासी बनाकर नहीं रख सकता। यह समानाधिकार का युग है। समय-परिवर्तन से स्वाधिकार और स्वतन्त्रता की भावनाए समस्त वायुमण्डल में भर गई है। अतएव किसी एक व्यक्ति का स्वच्छन्द शासन या अत्याचार दूसरों पर न होना चाहिए और सर्वसम्मति तथा पारस्परिक सहयोग से ही घर का शासन चलाना चाहिए। घर में कोई तुच्छ प्राणी नही होता। घर के छोटे प्राणियो का सहयोग भी नितान्त आवश्यक होता है, क्योंकि चाणक्य के मत से, भूसी के बिना चावल नही उग सकते : 'तुषेणापि परित्यक्ता न प्ररोहन्ति तण्डुला.।'

२. गृह-प्रजातन्त्र का एक मुखिया अवश्य होना चाहिए। नीति का वचन है कि जिस कुल में सभी अभिमानी नेता हो अथवा सभी अभिमानी हों या सब महत्त्व की इच्छा रखते हों, वह कुल नष्ट हो जाता है:

सर्वे यत्र विनेतारः सर्वे यत्राभिमानिनः ।
सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति कुलं तदवसीदति ॥

मुखिया का अर्थ पुलिस-कप्तान नही है। बहुत-से गृहपति या पिता पुलिस-कप्तान जैसे लगते है। उनको चौबीसो घण्टे कोप का प्राकृतिक बुखार चढा रहना है। वे आतक-बल से सब पर प्रभुत्व रखना चाहते है, अहकार प्रदर्शित करते हं और घर मे एक-दूसरे के पीछे जासूस लगाकर सबका भेद लेना चाहते है। घर में ऐसा सरकारी ढग का मुखिया न चाहिए, वहा तो सत्य-अहिसा और सेवा-भाव को अपनानेवाला अनुभवी नेता चाहिए, अर्थात् गृह-पालक को ऐसा व्यवहार करना चाहिए जिससे लोग स्वाभाविक रीति से उसके बड़प्पन का सम्मान करें। घर मे फौजी व्यवहार की क्या आवश्यकता ? वहां उद्दण्डता या सशय का वातावरण बनाना घर को कवायद का मैदान या खुफिया पुलिस का दफ्तर बनाना है। पिता के लिए एक सस्कृत शब्द 'क्षातु' है जिसके अर्थ मे ही उसका धर्म इगित है। पिता अर्थात् गृहाध्यक्ष की शोभा और शक्ति उसके सहनशील एव क्षमावान होने मे ही है। उसके साधु-व्यवहार से गृह-निर्वाह होता है और अहकारात्मक व्यवहार से गृह-दाह।

३. घर के तीन प्रकार के मुख्य प्राणियों के साथ तीन प्रकार का व्यवहार करना पड़ता है। बच्चो के साथ शुद्ध स्नेह और सरलता का व्यवहार करना उचित है। शास्त्र के मत से पुत्र-तीर्थ सब तीर्थों में श्रेष्ठ माना गया है। स्त्रियो के सम्बन्ध में शास्त्र का मत है कि उनका अपमान होने से घर में लक्ष्मी नही ठहरती। उन्हे हिन्दूशास्त्र गृह-

लक्ष्मी मानता है। तीसरे प्रकार के मुख्य प्राणी वृद्ध-जन है। वृद्धों के साथ व्यवहार मे बहुत सावधान रहना चाहिए क्योकि अशक्तता के कारण उनके स्वभाव मे नीरसता, निराशा, युवकों के प्रति द्वेष-भावना, उत्साहहीनता रहती है; अतएव वे ससार को इन्ही दृष्टिकोणों से अपनी थकी हुई आंखों से देखते है। उनके साथ युवकों का दृष्टिकोण प्राय: नही मिलता। इस विषमता को देखकर ही सम्भवत. प्राचीन मनोवैज्ञानिकों ने यह विधान बनाया था कि निश्चित आयु के बाद वे जगल-निवासी हो जाएं। अब यह सम्भव नही है। गृह-शान्ति के लिए यही आवश्यक है कि वृद्धों के साथ उचित व्यवहार किया जाए। अग्रेजी की इस कहावत को याद रखना चाहिए कि बुढापा दूसरा बचपन है।[१]

४ गृह-व्यवहार मे अतिथिसत्कार का विशेष ध्यान रखना पडता है। उससे घर की प्रतिष्ठा और मर्यादा बढती है। चाणक्य ने एक श्लोक मे लिखा है कि 'आइए, यहा विराजिए, यह आसन है; वहुत दिनों के बाद दिखलाई पड़े, क्या नई वात है, बाल-बच्चोसहित कुशल से तो है ? मैं आपके दर्शन से वहुत प्रसन्न हुआ—इस प्रकार जो घर आए हुए का आदर से स्वागत करता है, उसके घर नि शक मन से जाना चाहिए।' सद्‌गृहस्थ का यही श्रेष्ठ धर्म है कि वह घर पर आए हुए छोटे व्यक्ति को अपने से बड़ा माने। वामन भी यदि अतिथि होकर आए तो उसको विराट समझना चाहिए।

२. मित्र-नीति

१ मित्रता के व्यवहार मे यह स्मरण रखना चाहिए कि मित्रगण एक-दूसरे के गोद लिए बन्धु होते है। अत. परस्पर बन्धुवत् व्यवहार

---

१. Old age is second childhood.

ही उचित है। पराये को अपना बना लेने मे मनुष्यता की बड़ी भारी विजय होती है। वह तभी सिद्ध होती है जब परस्पर सद्भावना, सवेदना प्रकट होती रहे और दोनो ओर का स्वार्थ दबा रहे। सम-स्वभाववालो की ही मित्रता टिकती है।

२ सहसा न तो किसीको मित्र बनाना चाहिए और न किसीका मित्र बन जाना चाहिए। बहुत-से लोग सामने स्वार्थवश मित्र और पीठ-पीछे महास्वार्थवश या स्वभाववश शत्रु का आचरण करते है। अंग्रेजी की इस नीति को याद रखना चाहिए कि प्रकट शत्रु, सदिग्ध मित्र से अच्छा होता है।[1] रूप और मीठी बातो के धोखे मे भी न पडना चाहिए। तुलसी की यह उक्ति प्राय' चरितार्थ होती है 'मन मलीन तन सुन्दर कैसे। विप रस भरा कनक घट जैसे ॥' इसलिए पहले परि-चित बनना चाहिए, फिर परस्परज्ञ, तब सुहृद्। सबको अतरग मित्र मानकर मित्रोचित व्यवहार करना घातक होता है। जो केवल समय और स्वार्थ के साथी होते है, उनसे बुद्धिमान लोग दूर रहना पसन्द करते है। वही मित्र श्रेष्ठ होता है जो सम्पत्ति-विपत्ति मे एक-सा व्यवहार करे। विपत्ति के दिनों मे जो मित्रता जमी रहती है वही चिरस्थायी होती है। तुलसी ने कहा है कि सकट ही मे मित्र की परीक्षा होती है 'आपतिकाल परखिये चारी। धीरज धरम मित्र अरु नारी ॥'

३. विद्वानो के मत से अच्छे मित्र के ये लक्षण है वह अपने साथी को अपराध करने से रोकता है, उसको हितकर कार्य मे लगाता है, उसकी गुप्त बातो को छिपाता है, उसके गुणो का ढिंढोरा पीटता है, विपत्ति मे साथ नही छोडता और समय पडने पर आर्थिक सहायता भी करता है.

---

१ An open enemy is better than a doubtful friend.

पापान्निवारयति योजयते हिताय,
गुह्यं निगूहति गुणान् प्रकटीकरोति ।
आपद्गतं च न जहाति, ददाति काले,
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ॥

किसीका सहृदय मित्र बने रहने के लिए इन गुणो को अपनाना चाहिए। एक मित्र को दूसरे पर इतना विश्वास होना चाहिए कि वह परस्पर वैदिक ऋषियो की भाषा मे साभिमान यह कह सके कि तुम्हारे जैसे व्यक्ति का मित्र कभी विनष्ट नही होता : 'न रिष्येत्त्वावतः सखा।'

४ एक-सी स्थिति अथवा एक-सी विषम स्थिति मे रहनेवाले व्यक्तियो मे प्राय: अधिक घनिष्ठता और पारस्परिकता होती है। कांग्रेसवालो की जेल-मित्रता इसका स्पष्ट उदाहरण है। गाढ़े दिनो की मित्रता प्राय: खण्डित नही होती। इसलिए किसीके हृदय पर पूर्ण विजय करनी हो तो उसके दु:ख के दिनों मे उसकी सहायता करनी चाहिए। वही मनुष्यता जागती है और जब मनुष्यता जागती है तो निश्चय ही एकात्मता होती है।

५. मित्रता करना सरल है, परन्तु उसको निभाना कठिन है। निभाने के लिए कुछ विशेष बातों पर ध्यान देना चाहिए। पहली बात तो यह है कि किसी मित्र से अनुचित लाभ लेने का दुष्प्रयास न करना चाहिए। आपस मे लेन-देन का व्यवहार पारस्परिक स्नेह को कम करता है। देनेवाला बडा बन जाता है और लेनेवाला छोटा। इस प्रकार समानता का भाव नष्ट होने से मित्रता का तराजू ऊपर-नीचे होने लगता है। दूसरी बात यह है कि मित्रो के व्यक्तिगत जीवन में हस्तक्षेप न करना चाहिए और न किसी अवसर पर उनका उपहास ही। मित्र होने के कारण कोई अपना व्यक्तित्व नही खो देता। इसके

अतिरिक्त स्वय अधिकाधिक सहनशील होना चाहिए। जल्दी भड़कनेवाले लोगो की संगति किसीको प्रिय नही लगेगी। किसी विषय मे दुराग्रह या छल-कपट करके अथवा दम्भ दिखलाकर मित्र को वशीभूत करने का प्रयास न करना चाहिए।

कैसा भी मित्र हो, उससे अत्यधिक आशा नही की जा सकती। सबके स्वतन्त्र स्वार्थ और सबकी स्वतन्त्र विवशताए होती है। सज्जन से सज्जन मित्र भी एक सीमा तक ही अपने स्वार्थ का त्याग कर सकता है। अतएव अपनी मित्रता को किसीके लिए भारस्वरूप न बनाना चाहिए। शास्त्र का यह कथन एक अश तक मान्य है कि मित्र का भी अत्यधिक विश्वास न करना चाहिए क्योंकि मित्र के भी मित्र होते है, जिनसे वह गुप्त भेद प्रकट कर सकता है अथवा कभी स्वयं वैरी होकर उन बातो का दुरुपयोग कर सकता है।

६ मित्रता मे छोटे-बडे का ध्यान नही होता, परन्तु इसका अर्थ यह नही है कि कोई मित्र उच्च-पदाधिकारी हो जाए और आप बाबू ही बने रहे तो भी उसके साथ समानता का दावा करें या उसके बल पर स्वय ऐंठने लगे। इस सम्बन्ध मे अग्रेज़ो की यह नीति मान्य है कि उच्च-पदस्थ मित्र को अपना खोया हुआ मित्र समझना चाहिए।[१] सभी तो नहीं खो जाते, परन्तु अधिकाश व्यक्ति पद-मद में उन्मत्त होकर या वहकर अवश्य खो जाते है। यदि सज्जनतावश ऐसे लोग मित्र बने रहे, तो भी उनके बल पर स्वय बलान्ध न होना चाहिए। चिकित्सक के भरोसे कोई जानबूझकर विष थोडे ही खाता है! पर-बल से कोई स्वय बलवान नही बनता।

७. मित्रता के व्यवहार में सदैव सतर्क रहना चाहिए। थोड़े सशय

---

१ A friend in power is a friend lost

से भी उसका मूल नष्ट हो जाता है। बार-बार मिलने-जुलने से ही वह जीवित रहती है। परन्तु बहुत मिलने-जुलने से भी वह फीकी पड़ जाती है। 'अति सर्वत्र वर्जयेत्।'

३. लोक-नीति

लोक में व्यवहारकुशलता की सर्वाधिक आवश्यकता होती है, क्योकि वहां पर भिन्न-भिन्न स्वभाव और श्रेणी के व्यक्तियों के सम्पर्क में रहना पड़ता है। लोक-व्यवहार-सम्बन्धी कुछ मुख्य-मुख्य बाते ये है :

१. शिष्टता ही लोक-व्यवहार की आत्मा होती है। शिष्टाचार और सौजन्य के प्रदर्शन से मनुष्य का बडप्पन प्रकट होता है। इस सबध में हमें राम-रावण-युद्ध के बाद की एक घटना याद आती है। रावण रणभूमि मे पड़ा था ; राम ने लक्ष्मण से कहा, 'राक्षसराज लोक-नीति का और राजनीति आदि का प्रकाण्ड पडित है, उससे मृत्यु-पूर्व कुछ उपदेश ग्रहण कर आओ।' लक्ष्मण रणस्थली मे जाकर उसके सिरहाने खड़े हो गए। रावण के पूछने पर उन्होंने अपने आने का कारण बतलाया। नीतिज्ञ रावण ने स्वाभिमानपूर्वक कहा, 'तुम राजपुत्र होकर भी लोक-शिष्टाचार नही जानते ; शिक्षा की भिक्षा मागनेवाला शिक्षक के सिर पर नही, उनके पैर के पास खड़ा होता है और जब तक तुम लोक-मर्यादा का पालन नही करते तब तक मै तुम्हें ज्ञानदान नही दे सकता।' लक्ष्मण तत्काल सचेत हो गए और उसके पैरो के पास विनम्रतापूर्वक खड़े हो गए। रावण ने उनको उपदेश दिया कि कभी किसी कार्य को वादे पर न टालना।

शिष्टाचार का पालन बड़ो के साथ ही नहीं, छोटो के साथ भी उतना ही आवश्यक है। सुप्रसिद्ध विद्वान कार्लाइल ने लिखा है कि

छोटो के साथ सद्व्यवहार करके ही बडा आदमी अपने बड़प्पन को प्रकट करता है।[1]

इस सम्बन्ध मे हमें राम का आदर्श सामने रखना चाहिए। राम अपने व्यवहार में कभी मर्यादा का उल्लघन नही करते थे। उदाहरणार्थ वे विभीषण के भाग्य-विधाता थे, परन्तु रावण की मृत्यु के बाद जब सीता को अशोकवन से लाना था तो उन्होने हनुमान से कहा कि राजा विभीपण की आज्ञा लेकर लका मे प्रवेश करो और सीता को लाओ। साथ ही उन्होने विभीपण से निवेदन किया कि सीता को लाने की अनुमति दीजिए। लका-विजेता राम के लिए यह सब आवश्यक नही था, परन्तु विजयी होकर भी वे अपनी स्वभावसिद्ध शिष्टता की मर्यादा को कैसे त्यागते !

२. सामाजिक जगत् में कहीं भी अन्धा न बनना चाहिए—न स्वार्थान्ध होना चाहिए, न मदान्ध और न धर्मान्ध। जिसको रतौन्धी होती है उसको आकाश के नक्षत्र भी नही दिखलाई पड़ते। अपने को दूसरों की परिस्थिति में रखकर उनके दृष्टिकोण से भी किसी वस्तु को देखना चाहिए। सार्वजनिक बातों में व्यक्तिगत बातों का समावेश न करना चाहिए। अपनी दृष्टि मे लोकाचार यदि मिथ्याचार समझ पड़े, तो भी उसको सदाचार ही मानना चाहिए। कितना भी शुद्ध लोकाचार हो, व्यक्तिगत दृष्टि से वह कुछ कृत्रिम होता ही है। समाज की रुचि के अनुकूल अपने को बनाना पडता है।

३ समाज मे अपनी शान्तिप्रियता ही प्रकट करनी चाहिए। वाणीव्यवहार से ऐसा न प्रकट होना चाहिए कि लोग हमे नारद का वशधारी समझे। लोकप्रियता से लोक-सम्पत्तियां सुलभ हो जाती हैं :

---

१. A great man shows his greatness by the way he treats little men. —Carlyle.

'जनानुरागप्रभवा हि सम्पदः ।' (भारवि) ।

४ व्यवहार में अपने स्वाभिमान और दूसरो के मानापमान का भी ध्यान रखना चाहिए। गाधीजी के इस उपदेश को ध्यान मे रखना चाहिए कि बिना अपनी स्वीकृति के कोई व्यक्ति आत्मसम्मान नहीं गवाता ।[१]

कोई ऐसा कर्म न करना चाहिए जिससे अपनी हसी हो अथवा दूसरों का मान-मर्दन हो। हास-परिहास, चाल-ढाल, रहन-सहन, वेश-भूषा सभीसे अपना गौरव प्रकट करना चाहिए। यदि कोई सुपात्र हुए बिना ही चाहता है कि लोग उसका अभिनन्दन करे तो ऐसा नही हो सकता। लोग उसीके आगे नतमस्तक होते है, जिसको वे अपने से योग्य और सबल मानते है। मिथ्याभिमान से अपना अपमान होता है।

५ समाज मे निर्बलों का मान सदैव रक्षणीय है। मुख्यत. स्त्रियों पर आख और हाथ उठाना असभ्यता है। स्त्रियो के साथ दारुण व्यवहार भी समाज मे असह्य होता है। वाल्मीकि का मत है कि सज्जन लोग स्त्रियों पर कभी अत्याचार नहीं करते। लक्ष्मण जब सुग्रीव पर भयकर कोप करके किष्किन्धा में पधारे थे तो सुग्रीव को यही नीति याद आई थी। उसने तारा से कहा कि तुम्हीं आगे जाकर मिलो क्योंकि तुम्हारे जाने से लक्ष्मण जैसे नर-श्रेष्ठ का क्रोध शान्त हो जाएगा: 'नहि स्त्रीषु महात्मान क्वचित्कुर्वन्ति दारुणम् ।' उसका अनुमान सत्य निकला।

६ यदि कही क्रोध करने की आवश्यकता पड़े तो वहा अपनी तेजस्विता का ही विज्ञापन करना चाहिए, उच्छृङ्खलता का नही।

१. No person loses honour or self-respect but by his consent.
—Mahatma Gandhi.

नीतिवाक्य है कि अपना तेज प्रकट करते रहना चाहिए ; काठ की अग्नि का सब उल्लघन करते है, परन्तु जलती हुई आग की उपेक्षा कोई नहीं करता। इसलिए शक्ति की अग्नि को प्रकट करते रहना चाहिए, परन्तु सप्रयोजन और सद्विचार के साथ। अनुचित क्रोध जो हठ, दुराग्रह या दु शीलता से जन्मता है वह आत्मनाशी होता है। बार-बार कोप करने से वैर-भाव दृढ होता है · 'वैर प्रीति अभ्यास वश, होत होत ही होत।'

७. समाज मे सर्वगुणसम्पन्न व्यक्ति कही न मिलेगा। अतएव यथा-सभव पर-छिद्रान्वेषण न करना चाहिए। गुण-ग्राहक स्वय गुणी गिना जाता है। दूसरो के सद्गुणो से अपना लाभ लेना चाहिए, उसके दुर्गुण उसीके पास रहने देने चाहिए। सबसे सुन्दर उपदेश यह है कि लोक-सुधारक बनने से पहले अपने सिद्धान्तों का स्वय प्रयोग करके अपना सुधार करे। स्वय बिगड़ा हुआ सुधारक या सज्जनवेशी दुर्जन मान नही पाता।

८. व्यवहारकुशल वही माना जाता है जो पर-स्थिति और परि-स्थिति को ठीक-ठीक पढ लेता है, दूसरो के मनोभाव को शीघ्र ताड़ लेता है और समयानुकूल सहानुभूति, हर्ष-शोक उद्गार प्रकट करके आत्मीयता स्थापित कर लेता है। वह न तो विरुद्ध-धी (उलटी बुद्धि-वाला) होता है और न द्विजिह्व (दो तरह की बाते करनेवाला)। मन, कर्म, वचन से एक रूप प्रकट होना ही सज्जन का लक्षण है : 'मनस्येक, वचस्येक, कर्मण्येकं महात्मनाम्।' बहुरूपिये के कृत्रिम भाव-प्रदर्शन का कुछ भी मूल्य नही है।

९ सामाजिक व्यवहार मे इन दोषो का त्याग करना चाहिए : झूठे वादे करना, किसीको धर्म-सकट में डालना, चालाकी से काम निकालना, अपनी पहुच के बाहर की किसी वस्तु को पाने का दुस्साहस

और लोभ। इनके अतिरिक्त दो बड़े सामाजिक अपराध है, जिनसे प्रत्येक चतुर व्यक्ति को बचना चाहिए। प्रथम है कृतघ्नता ; द्वितीय ईर्ष्या। नेपोलियन कृतघ्नता को सबसे बड़ा सामाजिक अपराध मानता था। ईर्ष्या के लिए किसी पाश्चात्य विद्वान ने कहा है कि यदि किसीको दण्ड देना हो तो उसको किसीसे ईर्ष्या करना सिखा दो।

१० मौन रहने से समाज में गम्भीरता प्रकट होती है, परन्तु किसी अनीति को देखकर चुप रहने से आत्मदीनता व्यक्त होती है और स्वय दोषभागी होना पडता है, क्योंकि 'मौन सम्मतिलक्षणम्।' अतएव बातचीत की तरह मौन बनने मे भी सावधान रहना चाहिए। अपने व्यक्तिगत कष्टो के सम्बन्ध में यथासम्भव अवश्य मौन रहना चाहिए, क्योंकि :

रहिमन निज मन की व्यथा, मन ही राखै गोय।
हँसिहैं लोग जहान के, बाँटि न लेहैं कोय॥

नीतिकारों का मत है कि धन का नाश, मन का दुःख, घर का दुश्चरित, ठगी और अपमान—ये बातें बुद्धिमान दूसरों से न कहे :

अर्थनाशं मनस्तापं, गृहे दुश्चरितानि च।
वञ्चनं चाऽपमानं च मतिमान्न प्रकाशयेत्॥

गुप्त बातों के सम्बन्ध में शास्त्र का यह कथन सर्वथा मान्य है कि उनको छः कानों में पड़ने से बचाना चाहिए : 'षट्कर्णं वर्जयेत्सुधी'।'

४. व्यवसाय-नीति

कार्यवश सप्रयोजन जो व्यवहार किया जाता है, उसके लिए निम्नलिखित कतिपय बातो पर ध्यान देना चाहिए :

१ काम को (आतुर मति से) सहसा न करे ; बिना विचारे काम करना घोर आपत्तियो का स्थान है, विचार कर काम करनवाले को गुण-ग्राहक सम्पत्तिया स्वीकार कर लेती हैं :

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम् ।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ।। (भारवि)

२. कार्य मे समय का सदैव ध्यान रखना चाहिए। कोई भी कार्य हो, वह नियत समय के पूर्व ही तैयार मिलना चाहिए। समय पर न पहुंचने से रेल ही नही, भाग्य या सिद्धि की रेल भी छूट जाती है।

३. कार्य-सिद्धि के लिए किसीसे मिलना हो तो नियत समय पर ठीक वेशभूषा मे जाना चाहिए। मिलने पर पहला प्रभाव अधिक से अधिक गहरा डालना चाहिए। झेंपू या उद्दण्ड न बनकर प्रगल्भता, साहस और वेग (Push) का परिचय देना चाहिए। विषयानुकूल भाव-प्रदर्शन, वाक्य-प्रयोग और अंग-चेष्टा दिखलाकर मिलनेवाले को प्रभावित करना चाहिए। अपने को सब प्रकार से मनोज्ञ बना रखना चाहिए।

४. नैषधकार के इस मत को न भूलना चाहिए कि बुद्धिमान लोग तालाब और हृदय की गहराई को जानकर ही उसमे पैठते है :

ह्रदे गम्भीरे हृदि चावगाढे शंसन्ति कार्य्यावतरं हि सन्तः ।

मानव-स्वभाव का पारखी तत्काल दूसरों के मन को पढ सकता है और वही कार्य मे सफल होता है। अतएव जिससे मिलना है, उसकी थाह लेकर तब आगे बढ़ना चाहिए। उसकी मनःस्थिति को समझकर तब तर्क-आक्रमण करने से सफलता मिलती है अन्यथा अंधेरे में टटोलना पड़ता है।

५. प्रत्युत्पन्नमति होने का परिचय देना, सुननेवाले के प्रति सहज उत्सुकता प्रकट करना, रचनात्मक सुझाव देना, कोमल भाषा में कठोर तर्क देते हुए एकमत होने की चेष्टा दिखलाना, अपने मत का युक्ति-सम्मत समर्थन करना, दूसरे को अपना दृष्टिकोण ठीक-ठीक समझा देना और उसकी बातों को ध्यान से सुन-समझकर सप्रभाव

शीघ्रतर उत्तर देना—यही व्यवहार-पटुता प्रकट करते है। समझाने का अर्थ यह है कि आपकी बुद्धि जिस दिशा में दौड़ती हो, उसी दिशा में समझनेवाले की विचारधारा भी प्रवाहित हो चले। अपने काम के लिए दूसरे की बुद्धि का प्रयोग करना ही तो सच्ची व्यवहार-चातुरी है।

६. वार्तालाप मे स्पष्टवादिता और उक्ति-पटुता का आश्रय लेना चाहिए, चाटुकारिता और हठवादिता का नही। वार्तालाप या व्यवहार से कोई ऐसा छल न प्रकट होना चाहिए जिसके प्रकट होने पर आगे नीचा देखना पडे। व्यावसायिक चातुर्य (Tact) एक सीमा तक ही आवश्यक होता है। महगी चीज़ को सस्ती प्रमाणित करके बेचना छल नही है, परन्तु नकली चीज़ को असली कहना छल है। ऐसा छल पचता नही। यथार्थता का ध्यान सर्वत्र रखना चाहिए।

७. काम से मिलने पर मनोरजन की बाते न करके कार्य-सिद्धि के लिए ही अवसर का उपयोग करना चाहिए। सबसे बडी बुद्धिमानी तो इसमें है कि मनोरजन के प्रसंग को भी व्यर्थ न जाने दे और उससे काम बना ले। एक बार में सफलता न मिले तो हतोत्साह न होकर दुबारा 'चढ़ाई' करनी चाहिए। निराश होकर किसीसे सम्बन्ध-विच्छेद करना मूर्खता है। अंग्रेजी में कहावत है कि पहाड को समतल बनाकर पार करने की अपेक्षा उसको चढ़कर पार करना अधिक सुगम है।[१]

८. व्यवसाय में संघर्ष से सदैव बचना चाहिए। ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि न तो दूसरे की बात कटे, न अपनी। 'बात का खाली होना' सम्मान के विरुद्ध पड़ता है। बात बिगड़ने पर भी उसको सुलझाने का

---

१ It is easier to climb a mountain than to level it.

ही प्रयत्न करना चाहिए। आंख निकालने या लाल-पीले होने से व्यवहार मे कटुता आती है। कहा भी है कि जिसके पास क्रोध हो उसको शत्रु की कमी कैसे हो सकती है! क्षणिक उत्तेजना मे न पडकर दूरदर्शिता से काम लेना चाहिए।

९ पत्रव्यवहार मे विशेप सतर्कता की आवश्यकता होती है। किसी विपय मे अपने मत को निश्चित करके वकील-वुद्धि से शब्दो को तोलकर तव सक्षिप्त पत्र लिखने चाहिए। कार्य-सम्बन्धी पत्रो मे साहित्य-शैली अनर्थकारी होती है। ऐसा न लिखना चाहिए कि पढनेवाला खोदे पहाड और पाए चुहिया।

सक्षेप मे यही समझना चाहिए कि युक्तिपूर्ण स्पष्ट व्यवहार से ही कार्यक्षेत्र मे सफलता मिलती है। कार्यक्षेत्र मे व्यवहार-निपुण होना महत्त्व प्राप्त करने का सवसे सीधा मार्ग है।

५. मूर्ख-नीति

मूर्ख के साथ व्यवहार करना सवसे कठिन है, क्योकि वह अपनी ही वात सुनाता है और दूसरे की सुनता भी है तो कुछ का कुछ समझकर अर्थ का अनर्थ करता है। नीतिकारो ने लिखा है कि मूर्ख की कोई ओषधि नहीं 'मूर्खस्य नास्त्यौषधम्।' उपाय से उसके स्वभाव को नही वदला जा सकता, क्योकि वह तपाए पानी की तरह फिर ठडा हो जाता है। सुनते है, एक गुरु ने अपने एक मूर्ख चेले को एक वार वताया था कि सिर पर पगड़ी बाधने से मनुष्य का सम्मान बढ़ता है। गुरु-वचन सुनकर चेला कार्यवश बाजार को चला। रास्ते में उसे ध्यान आया कि वह पगडी बाध लेता तो सब उसकी वडी आवभगत करते। सो, पास मे अन्य वस्त्र न होने के कारण उसने अपनी धोती खोलकर सिर पर वांध ली और नग्न होकर वह यह विश्वास लेकर चला कि

अब जो देखेगा वही उसको महामहोपाध्याय समझेगा। कथा के तात्पर्य को समझिए। मूर्ख को सिखाने में भी अपनी और उसकी बुद्धि का लोप होता है।

सबसे बड़ी व्यवहारकुशलता इसमें है कि मूर्ख को छेड़ा न जाए। अंग्रेज़ी में एक कहावत है—साँड की अगाड़ी, घोड़े की पिछाड़ी और मूर्ख के चारो ओर से बचना चाहिए। मूर्ख को वश मे करना हो तो उसको कुछ खिला-पिला देना चाहिए, या उसके मनोरजनार्थ कोई मीठी कथा सुना देनी चाहिए। उसके मन के अनुकूल कुछ कर देने से भी वशीकरण होता है। परन्तु इससे आत्मप्रतिष्ठा के नष्ट होने का भय रहता है। ऐसे व्यक्तियो से अलग रहने ही में बुद्धिमानी है। कीचड़ लगाकर उसको धोने की अपेक्षा उसको न छूना ही अच्छा है।

मूर्खों की एक अर्धशिक्षित श्रेणी भी होती है। उस श्रेणी के व्यक्ति साधारण ज्ञान से अहकार-विमूढ हो जाते है। भर्तृहरि ने लिखा है कि मूर्ख को रिझाना सहज है, विद्वान को प्रसन्न करना बहुत ही सहज है, परन्तु अल्पज्ञान से अपने को महाज्ञानी समझनेवाले को ब्रह्मा भी नही समझा-बुझा सकते :

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि च तं नरं न रञ्जयति ॥ (नीतिशतक)

ऐसे व्यक्तियों के अहकार का पोषण करके उनको गद्गद बनाकर ही काम निकाला जा सकता है।

६. असाधारण नीति

मानव-समाज में सब साधु नही रहते, मायावी और दुष्ट भी रहते है और उन्हीका बहुमत है। धूर्त जन्तुओं (मनुष्यो) को महात्मागण योग तथा अपनी आत्मशक्ति से भले ही वश में कर ले, परन्तु प्राय: वे युक्ति से ही वश में होते है, इसलिए बुद्धिमानों को राज-

नीति, कूटनीति और दण्डनीति आदि का आश्रय लेना पड़ता है। सब एक स्वभाव के नही होते, अत. एक ही युक्ति से वश मे नही होते। परिस्थितियो के अनुसार कालज्ञ, युक्तिज्ञ और मर्मज्ञ लोग भिन्न-भिन्न उपायो से उनको वश में रखते है। प्रसगवश इस सम्बन्ध की कुछ उपयोगी बाते हम यहा देते है।

१. महामुनि व्यास का कथन है कि अधिक सरल न बनो; जाकर वन-तरुओ को देखो; वहां सीधे पेड कटे हुए और टेढ़े पेड़ खड़े मिलेगे :

नात्यन्तं सरलैर्भाव्यं गत्वा पश्य वने तरून् ।
छिद्यन्ते सरलास्तत्र कुब्जास्तिष्ठन्ति नीरुजः ॥

तुलसी ने इस बात को ढग से कहा है

टेढ़ जानि वन्दइ सब काहू ।
बक्र चन्द्रमहि ग्रसइ न राहू ॥

राम भी जब साधु-भाव से समुद्र को पार करना चाहते थे तो समुद्र उनको मार्ग देने को तैयार नही था। तब राम ने अपना क्षमा-भाव त्यागकर धनुष-बाण उठाया और कहा—असमर्थ समझनेवाले जन के ऊपर क्षमा करने को धिक्कार है : 'असमर्थं विजानाति धिक्-क्षमामीदृशे जने' (रामायण)। समुद्र तत्काल विनीति हो गया। हैदराबाद और भारत सरकार के विषय में भी यह बात सत्य हुई।

शॉ ने गाधीजी की हत्या के बाद कहा था कि परम सज्जन होना भयावह है।[१] कम से कम साधारण समाज मे बहुत सीधा बनना कष्ट-प्रद होता है। दुष्ट लोग सरल व्यक्ति को मेमना समझते है और मेमने के पीछे भेडिये स्वभावत लग जाते है। प्राचीन ऋषि-मुनियों को राक्षसगण घेरे रहते थे, परन्तु धनुर्धारी राम-लक्ष्मण के नाम से

१. It is dangerous to be too good.

भी दूर भागते थे। यह स्मरण रखना चाहिए कि 'सीधे का मुह कुत्ता चाटे।'

२. महाकवि भारवि ने लिखा है कि वे मूढ निश्चय ही पराभव को प्राप्त होते हैं जो मायावियों के साथ मायावी नही बनते :

व्रजन्ति ते मूढ़धियः पराभवं
भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः। (किरातार्जुनीय)

३ पचतत्रकार ने लिखा है कि उत्तम को प्रणाम करके, शूरा-शत्रुओं मे भेद-भाव पैदा करके, नीच को दे-दिलाकर और समान पराक्रमवालों के साथ युद्ध करके विजय प्राप्त करे :

उत्तमं प्रणिपातेन, शूरं भेदेन योजयेत्।
नीचमल्पप्रदानेन, समं शक्तिपराक्रमैः॥

४ कालिदास का मत है कि केवल नीति का आश्रम लेना कायरता है और केवल शक्ति का प्रयोग करना पशुता है :

कातर्यं केवला नीतिः शौर्यं श्वापदचेष्टितम्।

५ महाभारत में लिखा है कि जब तक अवसर न आए, शत्रु को कन्धे पर उठा रखना चाहिए; समय आने पर उसको वैसे ही पटककर फोड़ डाले जैसे पत्थर पर पटककर घड़ा फोड़ा जाता है :

वहेदमित्रं स्कन्धेन यावत्कालस्य पर्ययः।
अथैनमागते काले भिन्देद् घटमिवाश्मनि॥

सिंह भी पिछड़कर छलांग भरता है परन्तु सर्वत्र पिछड़ना भी ठीक नहीं होता है। जहां शत्रु द्वारा हानि की आशका हो, वहां पहले ही आक्रमण कर देने मे बुद्धिमानी होती है। इसीलिए नीतिकारों का मत है कि आक्रमरा ही सर्वोत्तम निवाररा है।[1]

६ कौटिल्य-अर्थशास्त्र में लिखा है कि अपने गुणो द्वारा शत्रु के

१. Offensive is the best defence

दोषो को और अपने सद्गुणों से उसके गुणों को ढक देना चाहिए :

परदोषान्स्वगुणैश्छादयेद् गुणान् गुणद्वैगुण्येन ।

७ कालिदास ने रघुवश मे लिखा है कि शत्रु के छिद्र अर्थात् दोष या कमजोरी को देखकर उसीपर आघात करने से विजय मिलती है : 'जयो रध्रप्रहारिणाम् ।'

८ पचतत्र का मत है कि बुद्धिमान लोग नाश करने योग्य शत्रु को बढ़ाते है क्योकि गुड़ से वृद्धि को प्राप्त हुआ कफ अपने-आप आसानी से निकल जाता है। हिन्दी की एक कहावत है कि 'जो गुड़ दीने ही मरै, क्यो विष दीजै ताहि ।'

९ अग्रेज़ी में एक कहावत है कि जब चूहा बिल्ली का उपहास करे तो समझना चाहिए कि पास ही मे कोई बिल भी होगा ।[1]

१०. जहा अकारण अत्यन्त आदर हो वहा परिणाम मे दु:ख होने की शका करनी चाहिए, क्योकि बिना प्रयोजन कोई चाटुकारिता का प्रदर्शन नही करता :

अत्यादरो भवेद्यत्र, कार्य-कारण-वर्जितः ।
तत्र शंका प्रकर्त्तव्या, परिणामेऽसुखावहा ॥

११. शेखसादी ने कहा है कि नाज उसीपर कर जो तेरा खरीदार हो । यह सत्य है क्योंकि 'अन्धे आगे नाचते कला अकारथ जाय ।'

१२. अपने स्थान पर दृढ रहनेवाला सदा बलवान होता है। घर के पालतू कुत्ते मे भी शेर का साहस होता है। पानी मे रहने पर मगर हाथी तक को खीच लेता है, परन्तु उसके बाहर वह कुत्तों से भी तिरस्कृत होता है।

१३. एक विलायती विद्वान (फ्रैंसिस मीहन) ने अपने एक सुप्रसिद्ध ग्रथ ('दि टेम्पल ऑफ दि स्पिरिट'—मानस-मन्दिर) में सघर्ष

---

१. When the mouse laughs at the cat there is a hole.

के कारणो का विवेचन करते हुए लिखा है कि देशो मे, जातियो में और वर्गों मे होनेवाले नाशक सघर्षों के मूल का पता लगाओ तो तुम्हे ज्ञात होगा कि सारी कटुता को फैलानेवाला कोई एक ऐसा प्रतिभाशाली व्यक्ति है जिसके भीतर विरोधी मानसिक वृत्तियो का भयकर सघर्ष चल रहा है। वह अपनी अन्तर्व्यथाओ से पीड़ित होगा; अपने मानसिक द्वन्द्व पर विजय प्राप्त करने मे असमर्थ होगा; क्षुब्ध अहकारग्रस्त या भावोन्मत्त होगा; उसकी आत्मा भीतर ही भीतर पीडित होगी। इसलिए वह भीतर के विष से बाहर के वातावरण को दूषित करता है, अपनी कटुता को बाहर फैलाता है, अपने स्वभाव की शका और घृणा को दूसरों मे फैलाता है, जिसके परिणामस्वरूप बाहर कलह होती है। हम लोग ऐसे व्यक्ति को उठने का और उच्चस्थान प्राप्त करने का अवसर देते है और प्रभावशाली पदो पर बैठे रहने देते है, और उसके बाद आश्चर्य करते है कि विचारवान मानव-वर्ग शान्ति-पूर्वक क्यो नही रहता। एक के साथ दूसरे का सघर्ष चलता रहता है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने ही साथ सघर्ष करता रहता है।[1]

ऐसे व्यक्ति जो मानसिक द्वन्द्व को सयमित करके आत्मविजयी नही होते, समाज मे निश्चय ही द्वन्द्व भावना फैलाएगे। आन्तरिक अशान्ति को मिटाकर ही बाहर शान्ति की स्थापना की जा सकती है।

१४ राष्ट्र-प्रतीक प० जवाहरलाल नेहरू ने ७ सितम्बर, १९४८ को भारतीय पार्लमेण्ट मे हैदराबाद के सम्बन्ध में बोलते हुए कहा था कि मेरी राय मे जब कठिन परिस्थिति सामने हो तो उससे दूर भागना

---

१. Men are at war with one another because each man is at war with himself.

सकती बड़ी गलती है क्योंकि साधारणतया अपने स्थान पर जमे रहने-वाले की अपेक्षा भागनेवाला अपने को उसी खतरे में सामने डाल देता है जिससे वह बचना चाहता है।'

१५. अपने अधिकारों के लिए सदैव चिल्लाना चाहिए। बिना चिल्लाए बच्चे को मां का दूध भी नहीं मिलता। कम से कम राजनीतिक क्षेत्र में चिल्लाने से ही कष्ट दूर होते हैं। हरेक गवर्नमेण्ट ऊंचा सुनती है क्योंकि वह ऊंचाई पर बैठती है। चिल्लाना चाहिए परन्तु मनुष्य की तरह, गधे, सियार, कुत्ते, कौवे की तरह नहीं।

नीति-सार

एक श्लोक में एक नीतिकार ने सम्पूर्ण व्यावहारिक ज्ञान का सार भर दिया है। उनका कहना है कि मित्र को सरल व्यवहार से, शत्रु को युक्ति से, लोभी को धन से, स्वामी को कार्य से, विद्वान को आदर से, युवती को प्रेम से, बन्धुओं को समानता के व्यवहार से, महाक्रोधी को विनय से, गुरु को अभिवादन से, मूर्ख को कहानियां सुनाकर, विद्वान को विद्या से, रसिक को सरसता से और सबको शील से वश में करो :

मित्रं स्वच्छतया रिपुं नयबलैर्लुब्धं धनैरीश्वरं,
कार्येण, द्विजमादरेण युवतिं प्रेम्णा समैर्बान्धवान्।
अत्युग्रस्तुतिभिर्गुरुं प्रणतिभिर्मूर्खं कथाभिर्बुधं,
विद्याभी रसिकं रसेन सकलं शीलेन कुर्याद् वशम्॥

---

१. I think that when we have to face a serious situation nothing can be worse than running away form it, because a person who runs away exposes himself to that very danger more than the person who sits or stands normally ofcourse

७. आपका रूप कैसा है ?

अग-प्रत्यंग की बनावट का प्रभाव दूसरों पर पड़ता है, इसको कौन अस्वीकार करेगा ? मनुष्य का व्यक्तित्व उसके अग-प्रत्यंग से स्वतः बोलता है। सुन्दरी स्त्री प्रमाण-पत्र लेकर नही घूमती ; उसका रूप स्वयं दूसरों को आकर्षित कर लेता है। किसी सुडौल और सुदृढ़ शरीर-वाले व्यक्ति के प्रथम दर्शन से ही लोग उसकी सत्ता को मानने लगते हैं। अतएव यह मानना पड़ता है कि शारीरिक बनावट में मनुष्य का व्यक्तित्व आभासित होता है।

इस विषय का विवेचन करने से पूर्व हमे यह जान लेना चाहिए कि हमारा रूप वास्तव मे वैसा ही नही होता जैसाकि हम अपने विपय में कल्पना किए रहते है। मनुष्य अपने मनोभावो के अनुरूप अपने शरीर के रूप की एक मिथ्या धारण बना लेता है और समझता है कि सब उसको उसी रूप में पहचानते है। वह दर्पण के सामने भी अपना भावना-रजित रूप देखता है। प्रेमासक्त होने पर वह नारद की तरह बन्दर का मुख रखते हुए भी अपने को रूपवान समझता है। प्रेम में निराशा होने पर वह अपने सुन्दर शरीर को भी भद्दा मान लेता है। वास्तव मे, वह अपनी आकृति नही, बल्कि छायाकृति देखता है। यह कल्पना कर लेता है कि हम ऐसे लगते होगे और साथ ही यह सोचता है कि ऐसे लगते तो अच्छा होता। इस परिस्थिति मे उसका रूप कम से कम उसकी दृष्टि मे विचित्र हो जाता है। दूसरों की दृष्टि में वह जैसा बाहर से है, वैसा ही लगता है, परन्तु अपनी दृष्टि में वह चित्त-वृत्ति के अनुसार कुछ का कुछ प्रतीत होता है। मानसिक द्वन्द्व के कारण वह अस्वाभाविक चेप्टाए भी करता है और इस भ्रम मे

रहता है कि सब सूक्ष्म दृष्टि से घूर-घूरकर उसीको देखते रहते है। इसलिए वह अपनी कल्पित शारीरिक त्रुटियों को छिपाने की चेष्टा करता है।

मन की रूपरेखा का बडा प्रभाव पडता है। मन मे नारीत्व की भावना रहने से पुरुष नारीवत् आचरण करके सोचता है कि सब उसको सुन्दर स्त्री समझ रहे हैं। वह सुन्दरी तो नही, हिजडे जैसा लगता है। बहुत-से लोग मूछों को ऐंठते हुए अपने वीर-रूप की कल्पना करते है, पर दूसरो की दृष्टि में विदूषक जैसे लगते हैं। मनोबल क्षीण होने पर मनुष्य अपने सुदृढ शरीर को भी अशक्त मान लेता है। इसी तरह रहन-सहन का प्रभाव पडता है। कपडे गन्दे होने पर मनुष्य सभ्य समाज मे अपने को छोटा मानने लगता है। भव्य प्रासाद मे रहनेवाला नाटा भी अपने को बहुत बडा समझता है। फर्स्ट क्लास का यात्री अपने को थर्ड क्लासवालों की दृष्टि में बहुत बड़ा आदमी मान लेता है। कहीं जीतने पर ठिगना आदमी भी अकडकर चलता है और सोचता है कि सब उसके महान रूप को देख रहे हैं।

डॉक्टर शिल्डर नामक सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक का कहना है कि मानसिक सघर्ष की अवस्था मे मनुष्य को अपने ही शरीर का वज़न कुछ का कुछ जान पड़ता है। प्रसन्नता में लोग अपने ही शरीर को हल्का समझते है और सोचते है कि सब हमे हल्का ही समझ रहे है। चिन्ताग्रस्त होने पर शरीर भारी लगता है, परन्तु दूसरो की दृष्टि मे तो वैसा ही रहता है। उच्चपद पर रहनेवाला कभी अपने आकार की छोटाई को नही समझता। हट्टा-कट्टा चपरासी अपनी दृष्टि में अपने को झुका हुआ, दबा हुआ तथा अपने से दुर्बल साहब को भी बहादुर और भीमकाय समझता है। इसका कारण यह है कि मनुष्य की चित्त-वृत्तिया उसके ज्ञान-तन्तु को आन्दोलित कर देती है और उन्हीके अनुसार

मनुष्य का अपना मनोनिर्मित रूप अपनी आंखो के आगे दिखलाई पड़ता है।

जब अपने विषय मे मनुष्य अपनी एक धारणा बना लेता है तो वह उसीके अनुरूप आत्म-व्यजना भी करता है। वह अनायास नाना चेष्टाओ से अपने को सुधारने का प्रयत्न करता है। किसीकी गर्दन से अपनी गर्दन को लम्बी समझकर वह बाहर निकलने पर अपनी गर्दन को दबाए रहता है और सोचता है कि उसके कल्पित अवगुण को लोग भांप न पाएगे। पर उसका यह कृत्रिम रूप विचित्र बन जाता है। स्वर के विषय मे भी ऐसी ही भ्रान्ति होती है। बहुत-से लोग अपने स्वर को कर्णप्रिय समझते हैं, पर दूसरों के सुनने में वह कर्कश लगता है। यह वैज्ञानिक सत्य है कि हमारी अपनी ध्वनि अपने कानों मे जैसी सुनाई देती है, वैसी दूसरे के कानों मे नही। हम अपनी सुनी हुई ध्वनि के आधार पर अपने व्यक्तित्व का मिथ्या रूप अपने मन मे बना लेते है। बहुत-से लोगो की परीक्षा करके अमरीकन डाक्टरों ने देखा है कि वे पहले-पहल ग्रामोफोन पर अपनी आवाज सुनकर चौकते है और कहते है कि उनकी आवाज़ ऐसी नहीं है। बहुत-से लोग अपनी फोटो पहले-पहल देखकर चौकते है क्योंकि वे जैसा अपने को कल्पित किए रहते है उससे भिन्न रूप चित्र मे देखते है। अधिकांश नये लोग चित्र खिचाते समय मूर्ख बन जाते हैं क्योकि वे अपनी किसी कल्पित कुरूपता को दबाने या छिपाने का प्रयास अवश्य करते है और वैसी दशा मे उनकी आकृति विकृत एवं अस्वाभाविक हो जाती है।

इस मनोवैज्ञानिक रहस्य को समझकर तब हमे अपने या किसी अन्य के सत्य-स्वरूप को देखना चाहिए। अनुमानित रूप प्राय. सत्य नही निकलता, सत्य वह है जो प्रत्यक्ष हो। प्रत्यक्ष रूप मे शरीर के कुछ लक्षण होते हैं, जिनका प्रभाव दूसरों पर पड़ता है। हम अपने

को कैसा भी मान ले, हमारा रूप दूसरों की दृष्टि मे वैसा ही होता है, जैसाकि अग-प्रत्यंग से झलकता है।

अपने कल्पित रूप को भूलकर उन सामुद्रिक लक्षणों पर विचार करना चाहिए, जिनसे वास्तविक व्यक्तित्व प्रकट होता है। इनमें से जो लक्षण न हों, उनको यथासम्भव धारण करना चाहिए। इनको जानने से मुख्य लाभ यह है कि हम दूसरो को उनकी आकृति या शरीर-रचना से ठीक-ठीक पहचानकर व्यावहारिक सफलता प्राप्त कर सकते है। आगे इस उद्देश्य से हम शारीरिक लक्षणों का सक्षिप्त उपयोगी विवरण देते है :

उत्तम शरीर के मुख्य लक्षण

सामुद्रिक-शास्त्र के अनुसार स्वस्थ और सुन्दर शरीर मे ये लक्षण मिलते है :

१. शरीर के पांच अग दीर्घ होते है—बाहु, नयन, कुक्षि, नासा-पुट, वक्षस्थल।

२. चार अग ह्रस्व होते है—ग्रीवा, कान, पृष्ठदेश, जघा।

३. छः अंग उन्नत होते है—नाक, नेत्र, ललाट, दन्त, मस्तक, हृदय।

४. पांच अग सूक्ष्म होते है—अगुलिपर्व, दन्त, केश, नख, चर्म।

५. सात अग लाल होते है—करतल, पदतल, नख, तालु, जिह्वा, अधर और नेत्र।

६. ये तीन गम्भीर होते है—स्वर, बुद्धि, नाभि।

७. ये तीन विस्तीर्ण होते है—वक्षस्थल, मस्तक, ललाट।

वाल्मीकीय रामायण में सर्वसुलक्षणयुक्त राम के सम्बन्ध मे नारद के मुख से कवि ने इस प्रकार कहलाया है :

विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः।
महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिन्दमः।
आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः॥
समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान्।
पीनवक्षो विशालाक्षो लक्ष्मीवाञ्छुभलक्षणः॥

—राम बडे कन्धोंवाला, बड़ी भुजाओंवाला, शख के समान ग्रीवावाला, बड़ी ठुड्डीवाला, चौड़ी छातीवाला, विशाल धनुष को धारण करनेवाला, छिपी हुई हसली से युक्त और शत्रुओं का दमन-कर्ता है। उसकी भुजाए घुटनो तक लम्बी है, सिर सुन्दर है, मस्तक सुन्दर है और वह शुभागमनशील है। उसके अग न बहुत छोटे है, न बहुत बड़े। प्रत्येक अग अच्छी तरह विभक्त है। शरीर का वर्ण स्निग्ध है और वह तेजस्वी है। उसका वक्षस्थल स्थूल है, नेत्र विशाल है। वह शोभा-युक्त शुभ लक्षणो से सयुक्त है।

शरीर के ये प्रधान लक्षण है, जिनकी ओर आपका ध्यान चला ही जाता है। आप सामुद्रिक-शास्त्र के परिचित हो या न हों, इनमे से बहुत-से लक्षण जिस व्यक्ति मे मिलते है वह आपको प्रिय लगता है। उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली होता है। आप चुपचाप उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होते है। इनमे से बहुसख्यक लक्षण जन्मगत होते है, और यही यह मानना पड़ता है कि मनुष्य के व्यक्तित्व का बहुत बड़ा अश जन्मगत होता है। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' की उक्ति यहीं चरितार्थ होती है। इसी जन्मगत व्यक्तित्व को अग्रेजी में Prepossessing Personality, अर्थात् सहज व्यक्तित्व कहते है।

इन लक्षणो को ही सर्वस्व मानना भूल है। सबमें ये लक्षण नही मिल सकते क्योकि सभी पुरुषोत्तम नही होते। हां, ऐश्वर्यशाली पुरुषों

मे इनमे से अनेक लक्षण उनके शरीर में मिलते हैं। और जब आपको ऐसा लक्षण-युक्त पुरुप मिले तो उसकी व्यक्तिगत महिमा में विश्वास कीजिए। किन्तु पूर्ण विश्वास करने के पूर्व उसकी और वातों पर भी विचार कर लीजिए क्योंकि सभव है उसने अपने साथ ही विश्वासघात किया हो। प्रकृति ने उसे सुन्दर रूप और व्यक्तित्व दिया हो, किन्तु उसने अपने चरित्र से अपना मार्ग वदल दिया हो। चन्द्र में जैसे आप कलंक देखते हैं, वैसे ही इन अगो में भी कलक देख लीजिए। इस सम्बन्ध मे एक वात और समझने की है। यदि आपके शरीर मे ये लक्षण नहीं मिलते, तो अपने को अधम मानकर आप निराश न हो जाइए। यदि आपका मन वलवान हो, आपकी वुद्धि सचेत हो, तो आप साधारण अगो से भी निश्चय ही महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकते है। साहसी व्यक्ति मामूली लाठी से भी जगली जीवो का सामना कर लेता है। शरीर से वलवान किन्तु मन से अशक्त प्राणी यदि कधे पर तोप रखकर भी जाए तो वह दूर से ही किसी जीव का चीत्कार सुनकर अचेत होकर गिर पडेगा। अतएव मन की प्रवलता की परीक्षा और बुद्धि-बल की परीक्षा पहले कीजिए और शरीर के वाह्य लक्षणो को ही कसौटी न मानिए।

शरीर के भिन्न-भिन्न अगों से मानव-व्यक्तित्व की गहराई का पता कहा तक चलता है, इसपर कुछ लिखकर तब हम मनोभावो के पढने की प्रणाली पर विचार करेगे। जिस प्रकार एक आख या एक कान न रहने से आपका व्यक्तित्व भिन्न ज्ञात होता है, उसी प्रकार शरीर के विशेष अंगों पर कुछ लक्षणों के रहने या न रहने का असर पड़ता है।

१. सिर

सबसे प्रथम हम सिर को लेते है। 'सिर वडा सरदार का, पैर

बड़ा गवार का।'—यह युक्ति आपने अवश्य सुनी होगी। इसमें यथार्थता है। शरीर के हिसाब से यदि मनुष्य का सिर छोटा, कगारू जैसा होता है तो वह मूर्ख गिना जाता है। सिर सुन्दर, सुडौल, और बड़ा होने से अवश्य ही मनुष्य प्रतिभाशाली होता है, चाहे वह पढ़ा-लिखा हो या न हो। बड़े सिरवाले को आप सज्जन मान ले, यह आवश्यक नही है। उसकी बुद्धि किसी भी दिशा मे तीव्र हो सकती है। वह दुष्टता करने लगेगा तो उसमें भी अच्छा बुद्धि-प्रयोग दिखाएगा। उसकी बुद्धि तो बन्दूक की तरह होती है, जिसे वह सिपाही की तरह भी प्रयोग कर सकता है और डाकू की तरह भी। इसी प्रकार ऐसे व्यक्ति को आप सुखी भी मान ले, यह आवश्यक नहीं। बड़ा सिर लेकर भी यदि कोई बद्धकोष्ठता का रोगी हुआ तो उसका सिर तो भारी हो ही जाएगा। इतना ही मानिए कि बडे सिरवाला बड़ा दिमाग रखता है। उसमें विचार-शक्ति एवं तर्क-शक्ति होती है।

दूरदर्शी और विचारवान का सिर लम्बा होता है। ऐसे सिरवाला मेधावी, गंभीर, कीर्तिकामी और तत्त्वपारखी होता है, तथा साथ ही विद्यानुरागी भी। लोकमान्य तिलक का सिर ऐसा ही था। ऐसे व्यक्ति कल्पना-प्रेमी भी होते हैं। इसलिए विपरीत दिशा मे जाने पर वे सदेहग्रस्त और भयशील भी हो जाते है।

अहंकारी का सिर पीछे की ओर विशेष लटका रहता है। सिर के पीछे का हिस्सा नोकदार होने से आदमी वक्र-स्वभाव का : दोनो ओर उभरा होने से भावुक, रसिक और प्रेरणात्मक बुद्धिवाला होता है।

गोल सिर जो कच्छप की पीठ की तरह से उन्नत रहे, प्रशस्त माना जाता है। ऐसे सिरवाले पुरुषार्थी, स्वावलम्बी, निर्भीक, उर्वर मस्तिष्कवाले और कष्ट-सहिष्णु होते हैं। स्वामी दयानन्द और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के सिर ऐसे ही थे।

बहुत छोटे सिरवाला प्रमादी, प्रलापी, आलसी, मूर्ख या कंजूस होता है। बेडौल सिरवाला अविवेकी, चचल, कापुरुष और चाटुकार होता है।

सिर के बालों से भी मनुष्य की परीक्षा होती है। कोमल और चमकदार बालों से भीतर की सुकुमारता और स्वास्थ्य की कान्ति प्रस्फुटित होती है, रूखे या कड़े बालो से भीतर की अस्वस्थता और शुष्कता।

उन्नत और ताम्रवर्ण केशवाले प्रायः उन्मादी और भ्रमण करने के व्यसनी होते है। घुघराले बालोवाले प्रायः हरएक चीज़ ऐसी ही पसंद करते है जो गोल हो, मुड़ी हुई या पेचदार हो—ऐसे लोग गोल चश्मा लगाना पसन्द करेंगे, पहाड़ी छड़ी, तिरछी नोकवाले जूते या कलीदार कुरते के शौकीन होगे। उनकी चाल भी लहराती हुई होती है, बोल-चाल भी नमक-मिर्च लगी हुई और लिखावट भी गोल-मोल। इनको सीधे चलने को कहिए तो एक फर्लाङ्ग जाने पर थक जाएगे। यो घूमने-फिरने को कहिए तो शहर की सारी गलियो के चक्कर लगा आएगे। घुघराले बालवाले विलासी ही होते हैं, ऐसी बात नही है। वे व्यसनी अवश्य होते है—वह व्यसन चाहे विद्या का हो या कला का अथवा किसी दुराचार का। विद्या-व्यसनी होने पर ये लोग उपन्यास, कहानी, नाटक तथा रहस्यवाद की कविता के अनुरागी होते है। कलाप्रेमी होने पर सभी कलाओं में अच्छी प्रतिभा प्रदर्शित करते है। सगीत, साहित्य में इनकी अच्छी गति होती है। विलासी होने पर ये सबसे निर्लज्ज और दुस्साहसी हो जाते हैं। पुरुषार्थ-सम्बन्धी काम ऐसे लोग कर सकते हैं। घर की अपेक्षा बाहर ये अधिक स्फूर्तिवान रहते है।

खड़े बालोवाले अक्खड होते है। ऐसे लोग कारणवश मुख से मधुर हो सकते है पर प्रकृति से क्रूर, दभी या आत्माभिमानी होते है।

२. मुख-मंडल

मनुष्य की सबसे अच्छी परीक्षा मुखाकृति से होती है। मनुष्य का सारा इतिहास, चरित्र और स्वभाव उसके मुख पर अंकित रहता है। इनको प्राचीनकाल से केवल भारतीय तत्त्वज्ञ ही नहीं, पाश्चात्य विद्वान और लौकिकज्ञ भी मानते आ रहे है। मुख-मंडल की बनावट से हमारे स्थायी व्यक्तित्व का पता चलता है; उसके प्रकृति-विकृत होने से हमारे चरित्र, स्वभाव और मनोदशा का। आपने सुना होगा कि कुछ लोग किसीकी आकृति देखकर उसके चित्त का सारा हाल भांप जाते है। इसमे सचाई है। मनुष्य अपने को वाणी द्वारा तथा व्यवहार द्वारा छिपा सकता है, लेकिन चेहरे द्वारा नही। बहुत कम लोग ऐसे हैं जो हृदय के भाव को चेहरे पर नही प्रकट होने देते, किंतु उनके स्थायी भाव तो व्यजित हो ही जाते हैं। किसीकी मुखाकृति को आप उसके व्यक्तित्व का दर्पण मान सकते हैं, लेकिन कही-कही सावधान भी रहना पड़ता है। कुछ लोग चेहरे से भोले-भाले होकर भी हृदय से कुटिल होते है। वे इसका अभ्यास किए रहते है कि उनके भावों की छाप उनके मुख पर न पड़े। अभ्यास से ऐसा हो भी जाता है। पर सौ में नब्बे व्यक्तियों का वास्तविक रूप उनकी आकृति से जान सकते है। मुख-मंडल के भिन्न-भिन्न अगों से मानव-परीक्षा इस प्रकार होती है।

१ ललाट—जिसका ललाट उन्नत और विशाल होता है वह मेधावी, कुशाग्रबुद्धि, विचारशील, उन्नतिशील, यशस्वी, प्रभावशाली और विश्वासयोग्य होता है। मस्तक अर्द्धचन्द्र-सा हो और कान्ति-विशिष्ट हो तो वह व्यक्ति तेजस्वी, संयमी तथा आत्मविश्वासी होता है; अनेक रेखाओं से भरा हो तो चतुर, चिन्ताशील, किसी

मानसिक वेदना से ग्रस्त अथवा दार्शनिक होता है, निस्तेज, छोटा और अन्दर की ओर धसा हो तो वह व्यक्ति मूर्ख अथवा विलासी या दंभी होता है। मस्तक बहुत छोटा, ऊपर से बालो के छप्पर से छाया हुआ सा हो तो वह व्यक्ति लापरवाह, विनोदी, मानापमान के भाव से प्रमुक्त होगा। यदि ऊपर की ओर उठा और नीचे की ओर दबा हो तो वह मनुष्य मन्दबुद्धि, आलसी, मुसीबत का मारा हुआ सा होगा। प्रसन्न ललाटवाला उदार, शान्त, विनयी और व्यापारकुशल होता है।

२. नेत्र—आत्मा का सच्चा प्रतिबिम्ब आखो मे दिखाई पड़ता है। आपने तरह-तरह की आंखो की प्रभावशालीनता के विषय मे कुछ न कुछ सुना होगा। किसी न किसीकी आखे ऐसी लगती हैं मानो अभी बोल देगी। किसीकी आंखें भरी हुई पिस्तौल जैसी लगती है और किसीकी आंखे शराब की बोतल जैसी। किसीकी आंखों से करुणा टपकती है, किसीसे दया, किसीसे स्नेह, किसीसे क्रोध, किसीसे सरलता और किसीसे हृदय की चचलता। मां की ममता जैसी चीज़ कई आखो से टपकती है, तेजस्वी पुरुष का तेज उसकी आंखों से चिनगारी की तरह निकलता है। आंखों में विचित्र आकर्षण-शक्ति होती है, विचित्र प्रभावोत्पादक शक्ति होती है और एक मनुष्य के सारे व्यक्तित्व को खोलकर सामने रख देने की प्राकृतिक क्षमता होती है।

खिले हुए कमल जैसी बड़ी और स्वच्छ आखे सर्वोत्तम होती है। उनमें स्वाभाविक सरसता, कान्ति और सरलता हो तो ऐसी आखों-वाला व्यक्ति सुखी, कीर्ति-प्रेमी, उदार, सहृदय और प्रभावशाली अवश्य होता है। वह प्रेमी, रसिक और विद्याप्रेमी विशेष होता है। लोभी की आखे धसी हुई और तीक्ष्ण तथा चचल होती है। अहकारी

की दृष्टि फैली हुई या फटी हुई-सी भारी और विशेष लाल होती है। दार्शनिक की आखे बड़ी किन्तु पलको से दबी हुई, और मद्यप की आखे प्राय छोटी और झुकी हुई होती है। मूर्ख की आखे प्रायः उल्लू की आखो की तरह गोल होती हैं। धूर्त की आखे बिल्ली की तरह भूरी होती है। चचल हृदयवाले की आखे चाहे बड़ी हो या छोटी, स्थिर नही रहती। ऐसे व्यक्ति की पलके जल्दी-जल्दी चलती है। भयाकुल, क्षुधातुर और भ्रमाकुल व्यक्ति की आखें ऐसी लगती हैं मानो गिर पड़ेगी। कवि और वेदनाग्रस्त व्यक्तियो की आखे तैरती हुई सी प्रतीत होती है। चालाक, दुरात्मा और अविश्वस्त व्यक्ति की आखे फीकी, छोटी कौडी जैसी, प्रायः ऊची-नीची होती है। जिसके दोनो नेत्र बहुत छोटे और अन्दर को बहुत धस गए हो तो वह मनुष्य दूसरो की सम्पत्ति पर गुप्त दृष्टि डालनेवाला और रहस्यमह जोवन व्यतीत करनेवाला माना जाता है। जिसकी आखे एक-दूसरे के निकट होती है, वह सामुद्रिक मत से चालाक, धूर्त और उचक्का होता है। जिसकी आखे ऊपर को उठी हुई सी लगती हैं वह पुण्यवान, कवि या किंकर्तव्यविमूढ अथवा असमर्थ होता है। सीधे आदमी की दृष्टि सीधी और कुटिल की कुटिल होती है। भीरु, अपराधी और सकोची स्वभाववाले की दृष्टि झुकी रहती है तथा क्रोधी की वक्र।

जो जितना गम्भीर होता है उसकी पलके उतनी ही कम चलती है। कुछ देर गम्भीरावस्था मे बैठकर आप स्वय इसकी परीक्षा कर सकते है। गम्भीर व्यक्ति की दृष्टि भी अधिक स्थिर होती है। बहुत पलके भाजनेवाला झेपू, अनस्थिर और दुर्बल हृदय का होता है। दभी, अहकारी और शठ की भौहे धनुष की तरह चढ़ी रहती है। विचारक की भौहे घनी और अपनी पूरी लम्बाई मे बाल-चन्द्रवत् रहती है। भाग्यहीन की दोनो भौहे मिली रहती है। पतली पलकोवाला तीव्र-

बुद्धि, लम्बी पलकोंवाला कवित्वशक्तिपूर्ण होता है।

सक्षेप में, ऐसी आंखे जो कमलवत् या हरिण-नेत्रवत् हों, ज़िनका शान्त-भाग लाल हो, जो स्निग्ध हों और जिनका भ्रू-भाग उन्नत तथा विस्तृत हो, विशेष प्रभावशाली होती है। ऐसी आखे जो माजरिवत् हों, वक्र हों, जिनका भ्रू-भाग अर्द्धचन्द्रवत् या बहुत भिन्न हो या असम हो तो वे अशुभ होती है। रक्त-प्रान्त की लालिमा से मनुष्य की श्री व्यंजित होती है।

३. कान—क्रोधी के कान खिचे-से रहते है, सावधान व्यक्ति के खड़े रहते है। गृहमोही के कान भी खडे मिलते हैं। शकाकुल व्यक्ति के कान बाहर निकले हुए से और उभरे हुए प्रतीत होते है। मूर्ख और भीरु प्राय लम्बकर्ण होते हैं तथा चोर के कान चूहे की तरह होते है। जो बहुत चौकन्ना रहता है, उसका कान खरगोश की तरह होता है। बुद्धिमान का कान नीचे की ओर खिचा हुआ सा मिलेगा। छोटे कान-वाला कृपण और तस्कर तथा फैले हुए कानवाला धनी और उदार होता है। नोकदार कानवाला क्रूर, और मामल कानवाला सुखी एव स्वस्थ होता है।

यह स्मरण रखना चाहिए कि कान केवल ध्वनि-ग्रहण का ही कार्य नही करते। उनका बुद्धि से बहुत निकट सम्बन्ध है। शरीर की इन्द्रियो में कान ही बुद्धि के सर्वाधिक समीप है। कानो से कुछ नसे सीधे बुद्धि-स्थल तक जाती है। जब आप किसी विषय मे चिन्तालीन होते है तो स्वभावतः हाथ को कान पर रखकर सिर एक ओर को झुका लेते है। उससे बुद्धि पर विशेष दबाव पडता है। विद्यार्थियो के कान खीचते ही उनकी बुद्धि सजग और सावधान हो जाती है। आधु-निक वैज्ञानिको का कथन है कि कान की जड़ के पीछे मटर के बराबर दो ग्रथियां है, वही मनोभावों को उत्पन्न और ग्रहण करती है।

उनके अनुसार हृदय से नहीं बल्कि उक्त मर्मस्थलो से भावो की सृष्टि होती है। जो भी हो, कानों की बनावट से मनुष्य की आन्तरिक प्रबलता का पता चलता है। ढीले और झूलते हुए कानों से मनुष्य का बकरीपन अवश्य प्रकट हो जाता है।

४. कनपटी—जिसकी कनपटी उभरी रहती है वह व्यक्ति अध्ययनशील, सयमी, विचारवान और यशोभिलाषी माना जाता है। दबी हुई कनपटीवाला भोगी, धनलोलुप चिन्ताग्रस्त और दुस्साहसी होता है।

५. नाक—नाक द्वारा आदमी को पहचानना सबसे आसान है, क्योंकि वह सबसे आगे रहती है और किसी प्रकार न ढकी जा सकती है और न हिलाई-डुलाई जा सकती है। वह अशोक के शिला-स्तम्भ की तरह खड़ी ही रहती है।

जिसकी नाक तोते की तरह होती है, वह कुशाग्र-बुद्धि, चतुर और राजनीतिज्ञ होता है। दीर्घ नासिकावाला गम्भीर, कार्यकुशल और आत्मविश्वासी होता है। जिसका अग्रभाग कान्तियुक्त हो वह तेजस्वी, प्रबल आत्मशक्ति-समन्वित, संयमी, उत्साही और भाग्यशाली होता है। जिसका नासाग्र निस्तेज होता है वह प्रतिभाशून्य, संयमहीन, शुष्क और प्रभावहीन होता है। यदि नाक लम्बी हो और सिरे पर कुछ उठी या मुड़ी हो तो वह व्यक्ति विवेकी और निरीक्षक होता है। यदि सिरे पर झुकी हो या ऊपर को बहुत उठ गई हो तो वह व्यक्ति चतुर और विनोदी होगा। यदि बीच मे नाक दवी हो तो वह व्यक्ति जड़ होगा। चपटी नाकवाला कजूस होता है। फैली हुई नाकवाला लोभी, फूली नाकवाला क्रोधी, कामुक तथा दभी होता है। गोल और चपटी नाकवाला परधन इच्छुक, वक्र नासिकावाला क्रूर; स्थूल नासिका, अर्थात् शूकर जैसी नाकवाला परछिद्रा-

न्वेषी, निन्दक, आलसी, अल्पबुद्धि और गन्दे तथा मन्द स्वभाव का होता है। पतली नाकवाला चोर होता है और समोसे जैसी नाकवाला ऐसा विमूढ 'जिन्हहि न व्यापै जगत-गति।'

६. मुख—प्रफुल्लित कमल जैसा मुख मनुष्य का आत्मिक सौंदर्य प्रकट करता है। सुन्दर, सुडौल, सम और कोमल मुखवाला ऊंची मनोवृत्ति का एव प्रसन्न स्वभाव का होता है। बहुत बड़े मुहवाला दुःखी, भिक्षुक-वृत्तिवाला एव मूर्ख होता है। गोल मुहवाला शठ, विषम मुखवाला मुख-चपल और निकले हुए मुखवाला महामूर्ख होता है।

लाल होठोवाला व्यक्ति गुणी, मृदु और सुकुमार होता है। पतले होठोवाला वक्की, झक्की और शक्की होता है। बहुत सूक्ष्म होठोंवाला दरिद्र एव लोभी, विवर्ण होंठोंवाला अल्पधी एव सतप्त होता है ; वक्र होठोवाला वक्र-बुद्धि होता है, मोटे होंठोवाला आलसी, नासमझ, क्रोधी व महाकायर और व्यसनी होता है। दोनो होंठों का स्वाभाविक ढग से मिलना शुभ माना जाता है। यदि वे मिलकर अन्दर की ओर धसते हुए से दिखाई पड़े तो वैसा व्यक्ति चुप्पा, रहस्यमय और भीरु होगा। यदि वे मिलकर चोच जैसे निकले हों तो वैसा व्यक्ति अस्थिरमति, विवेकहीन, बक्की तथा चाटुकार होगा। यदि नीचे का होठ ऊपरवाले का ढक्कन जैसा लगे तो वैसा व्यक्ति दभी, पाखडी और स्वार्थी होगा। यदि ऊपरवाला, नीचेवाले के ऊपर छप्पर की तरह लटका रहे तो वह व्यक्ति हास्य-विनोदशून्य, रसिक तथा विवेकवान और शान्त होगा। जिसके होंठ सूखे हों वह हृदय से शुष्क व भीरु अवश्य होगा। जिसके होठ वक्र दिशा में मिलते हों वह चालाक होगा, जिसके दोनो अधर दोनों ओर कोनो पर ऊपर को मुड जाए वह हठी, दभी और क्रूर होता है।

७. दाढ़ी-मूछ—दाढ़ी-मूछ को लोग पुरुषत्व का परिचायक मानते हैं। जिस पुरुष के दाढ़ी-मूंछ जमे ही नही तो उसे धूर्त या नपुसक मानिए। उसके स्वभाव में चचलता, भीरुता और अविवेक होगा। ऐसा पुरुष अपने को स्त्रियों से भी निर्बल समझेगा। यदि बहुत कम बाल हों तो उनके स्वभाव में नारी-स्वभाव के लक्षण मिलेगे। बहुत-सी स्त्रियां भी ऐसी मिलती है जिनके श्मश्रु-देश में बाल होते है। उन्हें संस्कृत मे पोटा या नरमानिनी कहते हैं। ऐसी स्त्रियां पुरुषों की सी चेष्टा करती हैं और क्रूर स्वभाव की होती है। पाश्चात्य कामशास्त्रियों का कथन है कि स्त्रियो में कामेच्छा प्रबल होने से तथा निरन्तर अतृप्त रहने से उनके मुख पर बाल निकल आते है। ऐसी स्त्रियां स्वभावतः चिड़चिड़ी और दुःशील हो जाती है।

नोकदार मूछोवाले वीर स्वभाव के होते है। खुशामदी, कजूस, कायर और निर्वीर्य की मूछ तराजू के पलडे की तरह लटक जाती है। नुकीली, स्निग्ध, कोमल और नत दाढ़ी-मूछ को लोग अशुभ मानते हैं। दाढी-मूछ से बहुत अच्छी मनुष्य-परीक्षा नही हो सकती, क्योंकि उन्हें इच्छानुसार भी इधर-उधर किया जा सकता है अथवा मुख-देश से बिलकुल निर्वासित किया जा सकता है।

८ गाल—बहुत फूले हुए गालवाला आदमी या तो भोंदू होता है या विनोदी या व्यसनी अथवा आलसी। फूले हुए गाल होने पर भी हसते समय जिसके गाल मे गड्ढे पड़ जाते हैं; वह उद्योगी, रसिक, तीक्ष्ण-बुद्धि और आत्मविश्वासी होता है। बहुत छोटे या बहुत बड़े गालवाले आत्मशक्ति से हीन और परावलम्बी होते है। मांसल और कोमल गालोंवाले सुकुमार मनोवृत्ति के होगे तथा पतले और धसे हुए गालोवाले चिन्तनशील, परिश्रमी, यशोभिलाषी, नारी-प्रेमी और कठोर, कर्कश, उद्दण्ड तथा दृढ़ साहसी होगे।

९. दांत—दांतों से अन्दर की विद्युत् का पता चलता है। दांतों के चमकदार होने से ज्ञात होता है कि उस व्यक्ति के शरीर मे तेज है। धुंधले होने से ग्रान्तरिक मलिनता स्पष्ट होती है। मोती जैसे, बिजली जैसे, कुन्द जैसे धवल और आभाप्रद दांत सुन्दर स्वास्थ्य के द्योतक होते हैं। बड़े दातोंवाले प्राय: सुखी, प्रसन्नचित, सरलहृदय और बुद्धिमान तो अवश्य ही होते है। दातों की पंक्तियां घनी और सम होना शुभ है। वक्र दन्तवाला, हिसा-बुद्धिवाला, तथा बहुत छोटे दांतवाला धूर्त, चाटुकार और विश्वासघाती होता है। बहुत बड़े दांतोवाला अकर्मण्य, मूर्ख और मारा-मारा फिरनेवाला होता है। असम तथा बिखरे हुए दांतोवाला उच्छृङ्खल होता है। बगल के दांतों के ऊपर एक नोकदार दांतवाला कुशाग्रबुद्धि और शीघ्र-चेतन होता है। निस्तेज दांतोंवाले को सदा उत्साहहीन और भीतर से बुझा हुआ मानना चाहिए।

१०. ठुड्डी—विशेष चतुर की ठुड्डी नोकदार होती है। जिसकी ठुड्डी भरी और निकली रहती है वह ग्रानन्दी जीव होता है। छोटी ठुड्डी-वाला गृहमोही, कजूस, स्वार्थी और उद्दण्ड होता है। पतली ठुड्डीवाला प्रेमी और रसिक तथा चौड़ी ठुड्डीवाला उदार एव आवश्यकता से अधिक विनम्र होता है। बड़ी ठुड्डीवाला साहसी, कर्मकुशल एव विश्वासी होता है।

आकृति-परीक्षा

सम्पूर्ण मुख-मण्डल को देखकर किसीके विषय में बहुत कुछ सरलता से जाना जा सकता है। किसीकी आकृति मे भोलापन देखकर उसके स्वभाव की निष्कपटता का अनुमान सहज ही मे हो जाता है। चेहरे पर सौम्यता देखकर सज्जनता का, रूक्षता देखकर कठोरता का,

कोमलता देखकर सरलता का और वक्रता देखकर कुटिलता का ज्ञान देखने-मात्र से हो जाता है। चेहरे की स्वच्छता से स्वास्थ्य का पता तो लगता ही है, मन की स्फूर्ति का आभास भी मिलता है। मनुष्य के सभी गुणों की आभा उसकी आकृति मे मिलती है। शरीर का सारा तेज मुख-मण्डल से व्यक्त होता है। आपने प्राचीन चित्रों मे देखा होगा कि महापुरुषों और देवताओं के सिर के चारों ओर एक प्रकाश-मण्डल बना रहता है, उसे अंग्रेज़ी में 'Aura' कहते है। यह प्रभा-मडल केवल कल्पना से नही बनाया जाता। वास्तव में, तेजस्वी पुरुषो के रक्त से एक प्रकार की आभा स्फुटित होती है जो कई फुट तक वायु-मडल पर अपना विशेष प्रभाव रखती है। प्रत्येक वस्तु जो चमकती है वह अपनी आभा फेंकती है। वह आभा मनुष्य की अन्तर्ज्योति से निकलती है। महात्मा गाधी के मुख पर जो तेज था, वह सर्वविदित है। मालवीयजी को जिन्होने देखा है, वे भी उस तेज से परिचित होंगे। कहने का तात्पर्य यह है कि किसीके मुख-मण्डल पर तेज देखकर आप उसकी तेजस्विता और प्रभाव-शक्ति को सहज में समझ सकते है। सयमहीन व्यक्ति के चेहरे पर कभी तेज की झलक न मिलेगी। आत्मतेज—मनस्वी, गभीर, संयमी और शान्त मनुष्यो की आकृति मे ही मिलता है।

जिसका चेहरा उभरा हुआ होता है वह यशोभिलाषी और क्रिया-चतुर होता है। जिसका अन्दर धसा हुआ होता है वह दुष्ट, कृपण, छली, चिन्ताशील, मनहूस और नाना दुर्गुणसम्पन्न कहा जाता है। लटके हुए चेहरेवाला उदास और मलिन स्वभाव का तथा पर-द्वेषी होता है। सरल हृदयवाले का मुख सदैव ऐसा लगता है मानो वह मुस्करा रहा है। निश्छल स्वभाववाले हसमुख होते हैं। चपल एव उत्साही मनुष्य लम्बे मुहवाले होते है। बडे मुहवाला दुःखी, दुःखदायी और अपघातक कहा जाता है। गोल मुहवाला उल्लू होता है तथा साथ

ही शठ भी। छोटे मुहवाले छोटी तबियत के कायर तथा कामी होते है। वहुत बड़े मुखवाला होने से विपत्तिभोगी, चौकोर होने से महाधूर्त और चौकन्ना एव नत होने से अपराधी होना सूचित होता है। गिलहरी जैसा छोटे मुखवाला कृपण होता है और हर काम को वचा-वचाकर करता है। 'वृहत्-संहिता' में लिखा है कि जिनके मुख गाय, वृष, सिंह या गरुण की तरह प्रतीत होते है, वे बुद्धिमान, चैतन्य, मनस्वी, तेजस्वी तथा उन्नतिशील होते हैं। बन्दर, भैसा, सूअर या बकरे जैसे मुखवाले क्रम से उच्छृङ्खल, बुद्धू, नीच और निर्बल होते है। गर्दभ-मुख मे गर्दभ के सभी लक्षण रहते है।

निश्चिन्त रहनेवाले, सम्पन्न, शांतचित्त और आत्मविश्वासी के मुख पर झुरियां नही मिलती। कष्ट-सहिष्णु, परिश्रमी, चिताग्रस्त या धनहीन के मुख पर रेखाएं मुख्यतः व्यक्ति-विशेष के परिश्रम, अभ्यास और चितनशीलता का परिचय देती है। सर्वाङ्ग-सुन्दर मुख-वाला रसिक, भोगी, कला-सगीत-प्रेमी और जनानुरागी होता है। विकृत मुखवाला प्रपंची, कटुभापी तथा नाना विकार मन मे लिए रहता है। मुख के रग से नही, उसके गठन और उसकी स्वाभाविकता एव समता से मनुष्य के व्यक्तित्व का पता चलता है। बुद्धिमान का आप रग नही देखते। यदि किसीके चेहरे का ऊपरी भाग सकीर्ण और पीछे की ओर झुका हो और गाल तथा ठुड्डी का भाग विस्तीर्ण तथा आगे की ओर निकला हो तो आप भाप जाएगे कि वह दभी, महा-लोलुप और निकम्मा है।

मुख की आकृति की बनावट से लोग सदा से प्रभावित होते आए है। इग्लैण्ड की रानी एलिज़ाबेथ कहा करती थीं कि किसीका सुन्दर मुख सबसे सुन्दर प्रशसा-पत्र है।[१] इग्लैण्ड के विश्वमान्य कवि शेक्सपियर

१. A good face is the best letter of recommendation.

ने भी एक पात्र के मुख से इसी बात को ध्वनित करते हुए कहा है कि मैं तुम्हारे चेहरे को सम्मान, सत्यवादिता और अनुराग का एक मानचित्र मानता हूं।[१]

चेहरे की बनावट से मनुष्य-स्वभाव और चरित्र की बनावट अवश्य झलकती है, लेकिन कभी-कभी धोखा भी हो जाता है। इसलिए मुखाकृति देखकर ही किसीको सज्जन-दुर्जन न समझना चाहिए। अभ्यास से और नाना वस्तुओ के प्रयोग से लोग तरह-तरह के मुह बना लेते हैं। अंग्रेजी में अभी हाल में एक अच्छी पुस्तक निकली है, उसका नाम है, 'आइडिया हैव लेग्स' अर्थात् विचारों में बढने की शक्ति होती है। उसमें लिखा है कि इस समय के सुप्रसिद्ध वक्ता चर्चिल ने अपने युवाकाल में वर्षों तक सामने शीशा रखकर मुह बनाने का अभ्यास किया था। किसी भाव को व्यक्त करते समय आकृति की बनावट कैसी होनी चाहिए, इसका अध्ययन करके उसने यथाअवसर अपने मुह को वैसा ही बनाना सीखा और तब वह सफल भाषक बन सका। ऐसे धूर्तराज और भी मिल सकते है जो अपने व्यक्तित्व को छिपाकर कृत्रिम व्यक्तित्व प्रकट करें।

सम्भवतः उक्त ग्रथ मे ही या अन्यत्र कहीं, हमने इटली के सुप्रसिद्ध मुसोलिनी के सम्बन्ध में पढा है कि उसने लोगो को प्रभावित करने के लिए एक विचित्र प्रकार का अभ्यास किया था। किसीसे बातचीत करते समय वह अपनी आकृति में ऐसा परिवर्तन कर लेता था कि लोग उसीके वश में हो जाते थे। यह परिवर्तन वह केवल नेत्रों के सहारे करता था। आंखों को दीर्घाकार बनाकर वह पुतली के सहारे

---

१. In thy face I see the map of honour, truth and loyalty.
—Shakespeare.

काले गोले को नेत्र-मंडल के ठीक बीचोबीच अवस्थित कर देता था। इससे काले भाग के चारों ओर सफेद भाग का एक मंडल घिर जाता था और अधिक देर तक इसी प्रकार एकटक देखने पर सामने बैठनेवाला एक प्रकार से मेस्मेराइज्ड (मोहित) हो जाता था। मुसोलिनी ने भी शीशे के सामने कुछ दिनों में इसका अभ्यास कर लिया था।

इस तरह के और भी कलाकुटिल मिल सकते हैं जिनकी मुखाकृति से सहसा धोखा हो सकता है, पर नब्बे प्रतिशत आदमी चेहरे से प्रकट हो जाते हैं। सोते समय उनके चेहरे को देखकर उसकी ठीक-ठीक परीक्षा हो सकती है; अथवा जब वे हंसते हों तो ध्यान से उनके चेहरे को देखिए। उस दशा में उनकी बनावट खुल जाएगी। बहुत-से ऐसे लोग मिलेंगे जो हंसते हुए भी रोते-से प्रतीत होंगे क्योंकि उनका हृदय रोता रहता है।

३. धड़

१ अब ग्रीवा को लीजिए। गले की बनावट से भी आदमी का कुछ पता लग जाता है। लम्बी गर्दनवाला मूर्ख, भटकनेवाला, बक्की तथा बहुत खानेवाला होता है। जिसका गला बहुत भरा हुआ रहता है वह कामी और व्यसनी होता है। जिसका गला नीचे भारी, ऊपर एकदम पतला हो, वह खा-पीकर मस्त रहने में ही जीवन की उपयोगिता मानता है। सिर एकदम कंधे से जुड़ा हुआ लगे तो वह व्यक्ति परिश्रमी, शुष्क, अहंकारी और कृपण होता है। शुष्क या नसों के कई भागों में बंधा हुआ गला निर्धनता का चिह्न है। भैंसे जैसे गलेवाला बलवान होता है। शंख जैसी ग्रीवावाला गुणी, यशोभिलाषी और स्वाभिमानी होता है।

२. वक्षस्थल—जिसका वक्षस्थल उन्नत, चौड़ा और भरा हुआ होता है, वह सुखी, शक्तिशाली और कर्मशील होता है। ऐसा

व्यक्ति स्वभाव से ही शूरवीर होता है। सकीर्ण वक्षस्थलवाला कायर, अकर्मण्य और छोटे विचारों का होता है। ऊचे वक्षस्थलवाला साहसी, उत्साही और सर्वदा सामर्थ्यवान होता है।

३ कधा—सहनशील, परिश्रमी और पुरुषार्थी का कधा बैल की तरह उठा हुआ और मासल होता है। अपराधी का कधा स्वभावतः झुका हुआ और कृश होता है।

४. पेट और कमर—लम्बे पेटवाला बहुभक्षी, अस्थिर-चित्त और चिडचिड़े स्वभाव का होता है। गोल पेटवाला प्रायः विनोदी, रसिक, प्रत्येक दशा मे सुखी एव सन्तुष्ट तथा विश्वासपात्र होता है। शरीर-सम्बन्धी कार्य वह कम कर सकता है, किन्तु बुद्धिक्षेत्र मे वही गणेश हो सकता है। जब आपको सरल चित्त का मित्र बनना हो तो किसी मोटे आदमी को ढूढ़िए। कृशोदर सबसे निकृष्ट होते हैं। सर्वोत्तम वे होते है जिनके वक्ष से उनका पेट थोड़ा नीचा होता है; न बहुत उठा हुआ, न अधिक लम्बा। पतली कमर स्त्रियों की शोभा है। पुरुष की कमर भरी हुई ही श्रेष्ठ होती है। लचकदार कमरवाले को लचकदार स्वभाव का मानना चाहिए। वह स्त्रियों का अनुरागी और पुरुषों से दूर भागनेवाला होगा। समान पेट होने से वह मनुष्य भोगी होगा।

५. हाथ—श्रेष्ठ पुरुष के हाथ उसके घुटनो तक जाते है। हमने सुना है कि गाधीजी के हाथ घुटनो के पास तक पहुंचते थे। अच्छे हाथ हाथी की सूड की तरह ऊपर से क्रमशः पतले होते है; अधिक लम्बे और भरे हुए होते हैं। ऐसे व्यक्ति यशस्वी, कार्यकुशल, उदार एव शक्तिशाली होते है। ऐसे व्यक्ति जिनके हाथ बहुत छोटे या असमान और बालो से भरे रहते हैं, वे प्रायः दुःखी, कापुरुष, बातो के छली और उलटा-सीधा काम करनेवाले होते हैं। जिनके हाथ ऊपर-

नीचे एक-से होते है अर्थात् शुण्डाकार नहीं होते, वे प्रपंची, निष्फल, क्रोधी, चालाकी के काम मे पटु और कर्कश होते है।

६. हथेली—मनुष्य को परखने की सबसे अच्छी कसौटी हथेली हैं। हमने कई वर्ष पहले एक प्राचीन एव अनुभवी फ्रेंच लेखक का एक ग्रथ पढ़ा था। वह ग्रथ हस्त-विज्ञान पर था। उस लेखक ने लिखा था कि जब आप किसी नये आदमी से मिलते है तो हाथ मिलाते समय उसके हाथ को देख लीजिए। यदि आप हस्त-विज्ञान के दो-चार प्रमुख लक्षणों के जानकार भी होगे तो उस आदमी के स्वभाव आदि के विषय मे उनसे बहुत कुछ जान जाएगे और सतर्क होकर बाते करेंगे।

हथेली पर दृष्टि डालते ही सर्वप्रथम नाखूनो पर दृष्टि डालिए। यदि वे चिकने, चमकदार, सुडौल और लाल या ताम्रवर्ण के हों तो निश्चय ही मान लीजिए कि वह व्यक्ति तेजस्वी और शरीर-मन से शुद्ध एव स्वस्थ है। नखों के मूल मे अर्द्धचन्द्र का चिह्न होना सुन्दर स्वास्थ्य का परिचायक होता है। जब आपकी पाचन-क्रिया ठीक होती है और रक्त शुद्ध होता है, तब वह चिह्न उक्त स्थल पर प्रकट होता है। अस्वस्थ होने पर वह चमडे से ढक जाता है और नाखूनो पर सफेद-सफेद छीटे पड जाते हैं। यदि किसीके नख विवर्ण हों तो उसे तर्क-कुतर्क-प्रेमी मानिए। रूक्ष नखवाला निर्धन होता है। काले या फटे हुए नख मनुष्य की हीनता प्रकट करते है। यदि किसीके नख गन्दे हों तो वह स्वभाव का भी गन्दा होगा। किसीके नख धसे हों तो वह मन्दबुद्धि होगा। किसीके नख पिलपिले हो तो बडा निर्बल और डरपोक होगा। नखों से उगलियों की शक्ति बढती है। अतएव नख यदि मजबूत रहेंगे तो उगलियां विशेष क्रियावान होगी, और उगलियां ही सारे हाथ को सुदृढ़ करती है, तथा हाथ ही मनुष्य का मुख्य सहायक एव सखा होता है। अतएव नखो पर विशेष ध्यान रखिए।

अब उगलियों पर दृष्टि डालिए। उगलियों का राजा अगूठा है। हाथ की सारी चाबी अगूठे के हाथ मे रहती है। अन्य चारों उगलियां मिलकर भी किसी वस्तु को दृढता से नही पकड़ सकती। जब वे अगूठे का सहयोग पाती हैं तभी सबल होती हैं, तभी हाथ की मुट्ठी बधती है और तभी आपकी मुट्ठी में कोई वस्तु आती है। अंगूठे को अलग खडा रखकर केवल चारों उगलियों को मिलाकर किसीको एक मुक्का लगाइए तो उसे कुछ भी चोट न लगेगी, किन्तु अगूठे का आश्रय लेकर मारिए तो आपकी पूरी शक्ति केन्द्रित होकर प्रहार करेगी।

अगूठे की बड़ी महिमा है। उसीसे राजतिलक होता है उसीसे आप लिखते है और उसीसे किसी वस्तु को पकड़ते है। यदि अंगूठा न हो तो एक अक्षर भी लिखना कठिन होगा। वह न हो तो आप एक लोटा भी सीधे नही उठा सकते। अगूठा जब चैतन्य होकर खडा हो जाता है, उस समय चारों उंगलियां सारी शक्ति लगाकर भी हथेली को ढंककर नही रख सकती। इतना प्रभावशाली अंग मनुष्य के प्रभाव और पुरुषार्थ का निश्चय ही प्रतीक होगा।

एक अग्रेजी विद्वान ने मानव-परीक्षा की एक अच्छी युक्ति बताई है। मुट्ठी बाधने पर जिसका अगूठा चारो उंगलियों के ऊपर रहता है, वह मनुष्य आत्मविश्वासी, धैर्यवान, चेतनावान शक्तिसम्पन्न, स्वाभिमानी, दृढनिश्चयी और साहसी तथा क्रियाकुशल होता है। जो व्यक्ति अगूठे को उगलियों के बीच मे रखकर मुट्ठी बांधता है, वह भीरु, साहसहीन, निर्बल, सन्देहग्रस्त, आलसी, अकर्मण्य, परावलम्बी और चेतनाहीन तथा चचलचित्त होता है। इसकी आप स्वय परीक्षा करके देखिए। अगूठे को ऊपर रखकर मुट्ठी बाधने से हाथ ही में नहीं, मन मे भी दृढता आती है, नवीन स्फूर्ति आती है और एक प्रकार का

आत्मबल अनुभूत होता है। अगूठे के अन्दर रखने से मुट्ठी कसकर नही बांधी जा सकती। इस अवस्था मे मन भी ढीला रहता है और अगूठे के बंधने से सारी आत्मा बधी हुई सी लगती है। अतएव स्पष्ट है कि अगूठा हमारी शक्ति का द्वारपाल है और अपने स्थान का सरदार। यदि बच्चे अगूठे को उगलियों से दबाकर रखते हों तो समझिए कि वे निकम्मे होगे। यदि आप घरेलू काम के लिए परम स्वामिभक्त सेवक चाहते हों तो ऐसे आदमी को लीजिए ; वह कभी स्वतन्त्र मनोवृत्ति का न होगा। यदि आप महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए किसी व्यक्ति की खोज मे हों तो ऐसे व्यक्ति को देखिए जो मुट्ठी बांधना जानता हो।

मनुष्य के अंगूठे में जन्म से ही विशेषताए होती हैं। एक विशेषता तो यह होती है कि प्रत्येक व्यक्ति के अगूठे की रेखाए भिन्न होती हैं। इसलिए सरकारी कागजो पर अगूठे के निशान लिए जाते हैं। सब जगह की रेखाए बदलती रहती हैं। पर अगूठे की रेखाए सदैव एक-सी रहती है। यही इसका प्रमाण है कि अगूठा हमारे स्थायी व्यक्तित्व का सच्चा प्रतीक होता है। व्यास के मत से मनुष्य की सूक्ष्म देह अथवा आत्मा अंगूठे के बराबर होती है।

अब अगूठे की बनावट पर सक्षेप में इतना जान लीजिए। अगूठा न बहुत बड़ा, न बहुत छोटा होना अच्छा माना जाता है। बहुत बडे अगूठेवाला उच्छृंखल और असहनशील होता है। छोटे अगूठेवाला दयाहीन, मन्द, अल्पधी और सकीर्ण विचारो का होता है। वह सुविभक्त अर्थात् उगलियो से सुदूर रहे तथा स्वतन्त्र एव प्रभावशाली प्रतीत हो तो मनुष्य की श्रेष्ठता का बोध होता है। उगलियो के बहुत निकट और हथेली से सटा हुआ होने पर वह किसी व्यक्ति की अयोग्यता प्रकट करता है। अगूठा इतना बड़ा होना चाहिए कि वह

मुट्ठी बांधने पर बीच की उगली की गाठ के ऊपर जाकर उसको ठीक से दबाकर पकड़ सके। वीर स्वभाव के मनुष्य का अगूठा नीचे स्थूल, बीच में तलवार की धार-सा उभरा हुआ और ऊपर पीछे की ओर कुछ झुका हुआ किन्तु मासल होता है। मूर्ख का अगूठा लोटे जैसा होता है। जिनका अगूठा जितना ही चैतन्य होगा, उतना ही वह व्यक्ति भीतर से क्रियाशील और उत्साही होगा। जिसका मूल भाग पतला, ऊपर का अगुष्ठ भागस्थूल होता है वह निर्बल होता है।

उगलियों के सम्बन्ध में कुछ जानने योग्य मुख्य बाते ये है। ढीली और उभरी नसों से युक्त उगलियोंवाले कलाप्रेमी हो सकते है पर वे शक्तिमान नही होते। अपने-अपने स्थान पर सब सुदृढ़ हों, स्वतन्त्र हों और मिलने पर बिखरी हुई सी न लगे तो वे उगलिया मनुष्य की दृढ़ता को सूचित करती है। जिसकी उगलियो के मिलने पर किन्ही दो उगलियो के बीच से छेद नही दिखाई देता, वह धन-सग्रह मे प्रवीण एव धनी माना जाता है। विरली उगलिया निर्धनता सूचित करती है। जिसकी हस्तांगुलिया दीर्घ होती है, वह दीर्घायु होता है। टेढ़ी-मेढी उगलियोंवाले वक्र स्वभाव के होते है।

करतल-स्निग्ध, सुकोमल, कान्तिमय और भरा हुआ रहने से मनुष्य के ऐश्वर्य, उन्नत स्वभाव और सुन्दर स्वास्थ्य का बोध होता है। निस्तेज, शुष्क और दबे हुए पांवोवाले कर्कश, कृपण और कठोर कर्म मे अभ्यस्त होते हैं। चौड़ी हथेली का मनुष्य उदार और कृति-कुशल होता है। जिसका पाणितल लाल होता है, कमल जैसा लगता है, उंगलियों के मूलस्थान में उभरा रहता है, सुन्दर लाल रेखाओ से हस्ततल विभक्त रहता है, वह प्रभुतावान, शासनप्रवीण जनानुरागी और बुद्धिकुशल माना जाता है। जिसका पाणि-देश संकीर्ण, नतोन्नत अथवा एकदम खाली-सा लगता है, काली या धुधली रेखाओं से भरा

या मुख्य रेखाओ से हीन होता है, पितृ-धन-वचित, मृत्यु-भीत, आलसी, प्रमादी, पुरुपार्थहीन तथा केवल शारीरिक परिश्रम मे कुशल होता है। सौम्य पुरुप की हथेली न बहुत गरम होती है, न बहुत ठंडी। डरे हुए, अस्थिर चित्त और छली की हथेली ठडी लगती है। निकम्मे आदमी की हथेली पसीने से भीगी रहती है। क्रूर, शूर और अहंकारी की हथेली गरम और कठोर होती है।

उगलियो और अगूठे के नीचे के स्थान उभरे रहने से मनुष्य की शक्ति का आभास मिलता है। सामुद्रिक शास्त्र को आप चाहे न मानिए, पर इतना तो मानेगे कि जिस उगली का मूल-देश उभरा रहता है, वह अधिक सजीव और सक्रिय होती है। उगलियो की सारी शक्ति उनके मूल-देश से मिलती है। इन उभरे हुए स्थानो को सामुद्रिक भापा में ग्रह-स्थान कहते हैं। अगूठे के नीचे शुक्र का निशान होता है। जिसका शुक्र-स्थान उच्च होता है वह आदर्शवादी, सौदर्य-साहित्य-सगीत-कला-नृत्य-प्रेमी, कलाविद् और शिल्प-विद्या का अनुरागी होता है। जिसका यह स्थान बहुत ऊचा होता है वह कामी, निर्लज्ज और महाभोगी होता है। यदि यह स्थान नीचा हो तो ऐसा मनुष्य स्वार्थी, आलसी और द्वेपी तथा निकम्मा होता है। तर्जनी के मूल-देश को बृहस्पति का स्थान कहते है। यह स्थान बहुत ऊचा होने से मनुष्य महान अहकारी और उच्छृखल होता है, ऊचा होने से प्रभुत्व-प्रेमी, शासन-पटु और तेजस्वी होता है। नीचा होने से वञ्चक और नीच प्रकृति का होता है। मध्यमा उंगली के नीचे शनि-स्थान होता है। शनि-स्थान उच्च होने से मनुष्य अल्पभापी आमोद-प्रमोद-प्रेमी और एकान्तप्रिय होता है। उसके नीचा होने से वह व्यक्ति नीच विचारोवाला, उद्धत और प्रायः आत्महत्या की प्रवृत्ति रखने-वाला होता है। अनामिका के मूल में रवि रहता है। उच्च रवि-

स्थानवाला मनुष्य चचल, कला-प्रेमी, खोजी और स्त्री-भक्त होता है। ऐसे व्यक्ति प्राय: लम्बे केश पसन्द करते हैं। जिसका यह स्थान नीचा होता है वह आलसी और किंकर्तव्यविमूढ़ होता है। कनिष्ठा के नीचे बुध का स्थान है। बुध का स्थान ऊचा रहने से मनुष्य शास्त्रज्ञ, वक्ता, परिश्रमी, साहसो, भ्रमणशील एव चतुर होता है। अत्युच्च होने से शठ, भूठा, विश्वासघाती और स्त्री-सुख से वचित होता है। नीचा होने से विद्या-द्रोही, अकर्मण्य और मूर्ख होता हैं। हथेली के जिस हिस्से से टेक लगाकर लिखते हैं, वह चन्द्र का स्थान है। जिसका यह स्थान ऊचा होता है वह आत्मज्ञानी, सगीत-प्रेमी, आस्तिक और चिन्तनशील तथा गम्भीर होता है। जिसका चन्द्र-स्थान नीचा होता है, वह चिन्तन-शक्ति से रहित होता है। चन्द्र-स्थान और बुध-स्थान के बीच मे तथा शुक्र-स्थान और बृहस्पति-स्थान के बीच मे मंगल के स्थान होते है। यदि अगूठे के ऊपरवाला मगल-स्थान उच्च हो तो वह व्यक्ति महासाहसी, पराक्रमी, विवाद-प्रेमी और तत्काल ज्ञान-वान होगा। चन्द्र के ऊपरवाला मगल-धाम ऊंचा रहने से मनुष्य धीर, न्यायप्रिय, विनम्र, दृढ़प्रतिज्ञ और साहसी तथा धर्म-प्रेमी होगा। जिसके दोनों मगल-स्थान उच्च रहते है, वह निष्ठुर, अत्याचारी, उग्र, दु शील, कामी और रक्तपात-प्रेमी होता है। दोनों स्थान निम्न होने से स्वभाव मे अस्थिरता और भीरुता व्यञ्जित होती है।

सामुद्रिक मत से बृहस्पति और रवि, दोनों के स्थान उच्च होने से मनुष्य धनी होता है। साथ मे बुध भी ऊचा हो तो विज्ञान और न्यायशास्त्र में प्रवीण होता है, मगल भी उच्च हो तो रणकुशल। शनि, बृहस्पति जिसके उच्च होते है वे धैर्यवान किन्तु मूर्च्छा या वायु से आक्रान्त होते हैं। शनि, बुध उच्च होने से वह व्यक्ति चोर, क्रोधी

और उच्छृङ्खल स्वभाव का होता है । शनि, मंगल की उच्चता से निर्लज्ज और क्रूर होता है ।

हथेली का पिछला भाग यदि कछुए की पीठ की तरह हो तो शुभ है । वह व्यक्ति उन्नतिशील होगा जिसका पाणि-पृष्ठ समुन्नत हो, चमक-दार और मुलायम हो । जिसके इस भाग मे बहुत नसे उभरी हो वह कर्कश और निर्बल होगा । जिसका यह भाग बहुत फूला हो वह रोगी, निकम्मा और सुस्त होगा । जिसका सम्पूर्ण हाथ शेर के पजे जैसा लगे वह खतरनाक होगी ।

७. हाथ की रेखाएं—हाथ की रेखाओं पर कुछ लिख देना भी अप्रासगिक न होगा । हस्त-रेखा विज्ञान पर प्राचीन विद्वानों ने बहुत कुछ लिखा है । पाश्चात्य विद्वानो मे 'कीरो'[1] इस विषय का प्रकाड पण्डित था । उसने इस भारतीय शास्त्र का वैज्ञानिक अध्ययन किया था और हस्तरेखा से स्वय अपनी मृत्यु-तिथि और ऐसी ही कितनी घटनाओ की पहले से ही घोषणा कर दी थी जो सत्य निकली । लार्ड किचनर की युवावस्था में ही उसने उनका भविष्यफल बता दिया था और यह भी कह दिया था कि उनकी मृत्यु जल में होगी । अन्त मे सच-मुच उन्हे जलसमाधि प्राप्त हुई । हस्त-रेखा की सत्यता के ये श्रेष्ठ प्रमाण है ।

वास्तव में, हाथ की रेखाए व्यर्थ या केवल हाथ की शोभा-सामग्री नहीं होती । यदि प्रकृति ने उन्हे शोभा के निमित्त बनाया होता तो वे इस रूप मे नहीं, सुन्दर पुष्पो के रेखाचित्र के रूप मे होती । इन रेखाओं से मनुष्य के व्यक्तित्व का सम्बन्ध होता है । एक-दूसरे की हस्त-रेखा नही मिलती क्योंकि सबका व्यक्तित्व भिन्न-भिन्न होता है ।

---

१ Cheiro

सत्य बात यह है कि करतल सारे व्यक्तित्व का ऑफिस होता है जहां व्यवसाय-सम्बन्धी सारे वही-खाते रहते हैं। किसी वस्तु पर जब अन्य वस्तु की रगड़ अधिक समय तक पड़ती है तो वहां निशान पड़ जाता है। हमारे मन पर जब चिन्ता की रगड़ पड़ती है तो माथे पर बल पड़ जाता है और जब बहुत रगड़ पड़ती है तो गालों पर झुरियां पड़ जाती हैं। हाथ की रेखाए भी हमारी प्राकृतिक शक्तियो के सम्मिलन या सघर्प के फलस्वरूप बनती हैं। वे मनुष्य के व्यक्तित्व के साथ-साथ बनती-बिगड़ती हैं; यही इस बात का एक अच्छा प्रमाण है कि वे हमारी आन्तरिक दशा को व्यक्त करती है। आपमें यदि मनोबल हो तो आप कुछ समय में रेखाओ को बदल सकते है। बुद्ध के नौ तरह के हस्त-चित्र मिलते हैं, जिनमे नौ तरह के रेखाक्रम हैं। अवस्थानुसार और आत्मशक्ति की ह्रास-वृद्धि के साथ ये परिवर्तन होते रहते हैं। भीतर से स्वस्थ होने पर रेखाएं लाल हो जाती है और स्वास्थ्य बिगड़ने पर या चित्तवृत्ति विकृत होने पर काली या पीली पड़ने लगती है। इससे मालूम होता है कि रेखाएं आन्तरिक क्रियाओं की सूचना देती है।

हस्त-रेखा का विपय बहुत विस्तृत है। उनकी विशेप जानकारी के लिए आप तद्विषयक किसी ग्रन्थ का अध्ययन कीजिए। बहुत संक्षेप में हम उसकी दो-चार मुख्य बातों का उल्लेख यहां पर करते हैं। हाथ में मुख्य लम्बी रेखाओं के अतिरिक्त कम लम्बी रेखाएं होना शुभ माना जाता है। जिसके हाथ में अधिक रेखाएं भरी रहती है, वह व्यक्ति दुःखी, कर्कश, दरिद्र, भाग्यहीन और शरीर से दुर्वल होता है। जिसके हाथ की रेखाएं लाल रंग की होती हैं वह व्यक्ति वाक्पटु, उग्र और भोगविलास का अनुरागी होता है। जिसकी बहुत लाल होती हैं वह भयकर, क्रोधी, दुष्ट और पर-द्रोही होता है। पीली रेखावाला पित्त-

पीड़ित, उग्र स्वभाव का, महत्त्वाकांक्षी, परिश्रमी और द्वेषी होता है। काली रेखाओंवाला दोषी, द्वेषी, मलिनबुद्धि और मृत्यु के निकट रहनेवाला होता है।

हाथ की चार रेखाएं मुख्य होती हैं। वह रेखा जो मणिबंध के मध्य से उठकर अंगूठे को घेरती हुई तर्जनी के नीचे जाती है उसे जीवन-रेखा या पितृ-रेखा कहते हैं। हथेली के मध्य में जो रेखा एक पार्श्व तक जाती है, उसे मातृ-रेखा कहते हैं। उसके ऊपरवाली प्रधान रेखा को आयु-रेखा मानते हैं और जो रेखा मणिबंध से उठकर सीधे ऊपर की ओर जाती है उसे ऊर्ध्व-रेखा या भाग्य रेखा कहते हैं।

(दाहिने हाथ में) जिसकी पितृ-रेखा बहुत चौडी और कान्ति-हीन होती है वह चिन्तातुर, अस्वस्थ, स्वभाव का कुटिल और आत्म-शक्ति से हीन होता है। इसका शृंखलामय होना दुर्बलता एवं शारी-रिक अस्वस्थता का द्योतक है। यदि वह छोटी हो और हाथ की पार्श्व-सीमा तक न पहुंचे तो प्राणी का आयुबंल कम होता है। जिसकी यह रेखा स्थान-स्थान पर खंडित रहती है, वह समय-समय पर नाना प्रकार की व्याधियों से पीड़ित होता है। जिसकी यह रेखा अंगूठे के मूल प्रदेश की ओर चली जाती है उसकी पुरुषार्थ-शक्ति व्यर्थ होती है। यदि इसका मूल नाना रेखाओं से कटा हो तो वह प्राणी मिथ्याभिमानी और अस्थिर बुद्धिवाला होता है, किन्तु विवेकवान और विश्वासयोग्य होता है। जिसकी पितृ-रेखा से एक रेखा निकलकर भाग्य-रेखा में मिलती है वह व्यक्ति यशस्वी, विद्वान और सिद्धिसाधक होता है। जिसकी इस रेखा से उसकी मातृ-रेखा आकर नहीं मिलती है वह व्यक्ति हठी, उद्धत, महाभिमानी और आतुर मतिवाला होता है। ऐसा व्यक्ति हाव-भाव दिखाने में कुशल, लम्बी-चौड़ी बातें हांकने और व्याख्यान देने में अनन्य तथा आत्मविज्ञापन में सबसे आगे रहता है।

साथ ही, वह किसी काम को मन लगाकर करने में समर्थ होता है; किसी विपय का विशेषज्ञ और दुस्साहसी होता है।

जिसकी मातृ-रेखा (इसे मस्तक-रेखा कहते है) लम्बी और सुडौल हो वह धैर्यशाली, व्यवसायी और आत्मविश्वासी होता है। जिसकी यह रेखा खडित होती है, उसे मस्तक मे चोट लगने का भय रहता है। यदि इसके अन्त मे बहुत-सी शाखाए हों तो वह व्यक्ति बड़ा ढोंगी और विलासी होगा। यदि यह रेखा और पितृ-रेखा दोनों छोटी हों तो किसी आकस्मिक घटना से मनुष्य मरता है। यदि यह रेखा अथवा पितृ-रेखा या आयु-रेखा किसीके हाथ में न हो तो वह व्यक्ति आकस्मिक घटनाओ या चोट आदि से विशेष कष्ट पाता है।

आयु-रेखा—(इसे हृदय-रेखा भी कहते हैं) इसके शृंखलामय होने से मनुष्य निकम्मा और कामुक होता है। यदि यह कटी न हो तो मनुष्य दीर्घजीवी होता है। जिसके दोनों हाथों में यह शाखाविहीन होती है वह अल्पायु होता है। यदि यह रेखा बीच उंगली के नीचे ही टूट जाए तो हृदय-वेदना और मानसिक कष्ट अथवा चोट का भय रहता है। जिसकी आयु-रेखा झुककर मातृ-रेखा से बीच उगली के नीचे मिलती है उसकी हठात् मृत्यु होती है। जिसकी यह रेखा मातृ-रेखा की ओर झुकी रहे और मातृ-रेखा इस रेखा की ओर तनी रहे अर्थात् यदि बीच उगली के निम्न भाग में आयु-रेखा और मातृ-रेखा मे कम अन्तर हो तो वह व्यक्ति रहस्यमय प्रकृति का और रिश्वती होगा अथवा अनुचित रूप से धन-सग्रह का आकांक्षी होगा। यदि इस रेखा की एक शाखा निकलकर मातृ-रेखा से मिले और बीच ही में किसी अन्य रेखा से खडित भी हो गई हो तो उस व्यक्ति का विवाह शोचनीय होगा तथा वह व्यक्ति मानसिक कष्ट से पीडित होगा। कनिष्ठा के नीचे इसमें शाखाएं न रहने से पुत्र-प्राप्ति की आशा कम

रहती है।

भाग्य-रेखा—(इसे भोग-रेखा भी कहते हैं) इसको हम मनुष्य के कर्म-बल को नापने का माप-दण्ड कह सकते है। किसीसे मिलते ही आप उसके हाथ की ओर दृष्टि डालने पर तत्काल इस रेखा को देख सकते है और अनुमान कर सकते है कि वह व्यक्ति उन्नतिशील है अथवा नहीं। यदि यह रेखा मणिबध से उठकर मध्यमांगुली के मूल-देश तक सीधी, अबाध जाए तो वह व्यक्ति परमसुखी और उन्नतिवान एव ऐश्वर्यशाली होगा। वह जिस स्थिति मे भी होगा, अपने वर्ग में सुखी और मान्य होगा। जहा यह रेखा खण्डित होगी, वहा मनुष्य का ऐश्वर्य खण्डित होगा। खण्डित होने पर यदि पास से दूसरी भाग्य-रेखा फिर चल पड़े तो उस व्यक्ति का व्यक्तित्व पुनः प्रभावशाली होगा। यदि हथेली के बीच से यह उठे और बुध की ओर जाए तो वह व्यक्ति व्यवसायकुशल या विज्ञानकुशल होगा। जहां वह वक्र होगी, तो मनुष्य के लिए विपत्ति सामने खड़ी होगी। यदि शुक्र के स्थान से कुछ रेखाए निकलकर इसको और पितृ-रेखा को काटे तो उस व्यक्ति को स्त्री-वियोग होगा। जिसके हाथ में यह रेखा बिलकुल नही होती वह उद्यम-हीन, निराश और अर्थ-कष्ट से दबा रहता है। यदि यह रेखा पितृ-रेखा से उठे तो वह व्यक्ति मनस्वी और पौरुषवान होता है। मूल मे इसकी एक शाखा शुक्रस्थान और दूसरी शाखा चन्द्र-स्थान की ओर जाने से वह व्यक्ति कल्पनाप्रिय और रसिक होता है। हाथ मे जहां से यह रेखा चले उस अवस्था से उन्नतिकाल का आरम्भ मानना चाहिए। जहां यह रेखा मातृ-रेखा को काटती है वहां पैंतीस वर्ष की आयु मानी जाती है।

८. मणिबध—मणिबध से पुरुष के पुरुषार्थ और उसकी दृढता का पता चलता है। वीर पुरुष का मणिबध सुदृढ, सुश्लिष्ट और

सधि-विशिष्ट होता है। जिसकी कलाई मज़बूत होती है उसका दिल भी मज़बूत होता है। लचकदार कलाईवाले का स्वभाव भी लचकदार अर्थात् चचल होता है। झुकी हुई या ढीली कलाईवाला पुरुप नारी-स्वभाव का होता है, अकर्मण्य एव विलासी होता है। प्राचीनकाल से वहिने भाइयों की कलाई मे राखी बांधती आ रही है, युद्धकाल मे पत्निया रण-ककरण पहनाती आ रही है। यह क्यों ? इसका कारण है कि वे मणिबंध की दृढता मे विश्वास करती है और चाहती है कि वे झुके नही। इसीसे उक्त अग का महत्त्व प्रकट होता है।

स्वस्थ और ऐश्वर्यशाली पुरुष के मणिबध मे तीन सरल और सुन्दर रेखाए होती है। स्वास्थ्य जितना अच्छा होता जाता है, उतनी ही वे रेखाए स्पष्ट होती जाती है। कर्मशील व्यक्ति की कलाई खड़ी रहती है, अकर्मण्य और भीरु की झुक जाती है।

४. नितम्ब से पदतल तक

१ नितम्ब—कठोर और वहुत बड़े नितम्बवाला व्यक्ति आलसी, अक्खड़ और दभी होता है। मांसल और उभरे हुए नितम्ब का मनुष्य साहसी, शक्तिवान तथा स्वावलम्बी होता है। नितम्बहीन व्यक्ति निकम्मा होता है।

२. जंघा—हाथी की सूंड या केले के पौधे जैसी जघा उनकी होती है जो शक्तिवान, स्वस्थ और भोगसमर्थ होते हैं। साधारण व्यक्ति की जघाए कुत्ते या शृगाल की तरह विरल और मांसहीन होती है। पैर ही शरीरसदन का खम्भा होता है। वह मज़बूत होता है तो शरीर भी मजवूत होता है। वह टेढ़-मेढ़ा या निर्बल होता है तो मनुष्य भीतर-बाहर दोनो से निर्बल होता है। पतली टांगोवाले ऐश्वर्यभोगी नही होते।

३. पदतल—उत्तम पुरुप का पदतल लाल, मांसल और सरल

रहता है। ऐसा व्यक्ति जब चलता है तो उसका पूरा पैर ज़मीन पर पड़ता है। मार्ग में उसके पूरे पैर की छाप मिलती है। अवनतिशील व्यक्ति के पैर की पूरी छाप नहीं मिलती।

अग-प्रत्यंग द्वारा मनुष्य-परीक्षा के यही मुख्य लक्षण है। प्राचीन आर्य ग्रंथों में इनपर अच्छी छानबीन हुई है। वैद्यक ग्रंथों मे इनपर वैज्ञानिक रीति से विचार किया गया है। सुश्रुत ने तो एक-एक अंग की नाप तक निर्धारित कर दी है। उसने सारे शरीर की भी प्राकृतिक लम्बाई बताई है। उसके अनुसार पदाग्र पर खड़े होकर दोनों हाथ ऊपर उठाने से नीचे से कराग्र तक मनुष्य अपनी उंगलियो के माप से १२० अगुल का होता है। चरक और कौटिल्य के मत से साधारण रीति से खड़े होने पर पैर से सिर तक मनुष्य ८४ अगुल लम्बा होता है। ३६ अगुल का अन्तर पैर और हाथ उठाने के कारण हो जाता है। जो व्यक्ति १२० अंगुल (या सम भाव से खड़े होने पर ८४ अगुल) लबा होता है वह वैद्यक के मत से स्वस्थ, दीर्घायु और सुखी एव प्राकृतिक विभूतिसम्पन्न होता है। 'बृहत्सहिता' के मत से साधारण रूप मे खड़े होने पर जो १०८ अगुल लम्बा हो वह असाधारण श्रेणी का सज्जन होता है। ९६ अगुलवाला मध्यम श्रेणी का और ८४ अगुलवाला साधारण श्रेणी का सत्पुरुष होता है। इससे कम लम्बा व्यक्ति अधम होता है। साधारणतया लोग अपने अंगुलों से ८४ अंगुल लम्बे ही होते है।

सुश्रुत ने अगों द्वारा आयु-परीक्षा का विधान भी बताया है। उदाहरणार्थ, जिसके सधि-स्थल, शिराए और स्नायु गूढ होते है; इन्द्रिया स्थिर, शरीर पैर से सिर तक उत्तरोत्तर अधिकाधिक सुडौल होता है, वे दीर्घायु होते है। जिसके पेर छोटे, शिश्न दीर्घ, छाती की पसलियां सकुचित, पृष्ठ-भाग सकीर्ण, कान अपने स्थान से अधिक ऊचे, नाक

ऊपर चढी हुई हो और जिसके हंसने पर उसके मसूड़ों का मांस दिखलाई पड़ता हो और जो आंखों को बहुत फेरता हो, वह अल्पायु होता है। इसी प्रकार जो जन्म से ही नीरोग हो; जिसके शरीर, ज्ञान, विज्ञान की धीरे-धीरे अवस्थानुसार वृद्धि होती है, वह दीर्घायु होता है। जिसके शरीर, ज्ञान आदि की वृद्धि तीव्रता से होती है, वह अल्पायु होता है। प्रायः यह देखा जाता है कि जिनका बड़ा सुन्दर शारीरिक विकास होता है, जिनका भविष्य बड़ा उज्ज्वल समझा जाता है, उनको अल्पायु मे ही काल छीन ले जाता है। सुश्रुत के निदान से इसका रहस्य समझ मे आ सकता है।

वैद्यक ग्रथों में शरीर-परीक्षा के ऐसे ही कई नियम है। वात, पित्त, कफ आदि के आधिक्य या क्षीणता से मानव-स्वभाव किस प्रकार का होता है, इसका वर्णन भी है। बाहरी अंग-दशा से भीतर का सारा हाल अब भी कुशल वैद्य बतला देते है। उनका विशेष उल्लेख न करके हम अब यहां पर कुछ अन्य विधियों का सक्षेप में वर्णन करेंगे।

एक प्रकार की परीक्षा-विधि यह है—२५ वर्ष की आयु के पति-पत्नी अपने को तोले। यदि वे करीब-करीब बराबर वज़न के हो तो सुखी और परस्पर प्रेमी होंगे। पुरुष स्त्री से कम भारी हो तो निर्बल, दुःखी और स्त्री-विजित होगा। स्त्री कम भारी हो तो वह सुशीला और पति की अज्ञाकारिणी होगी। स्वर से भी मानव-परीक्षा होती है। श्रेष्ठ व्यक्ति का स्वर हाथी, रथ, भेरी, मृदग, सिह या मेघ जैसा होता है। मूर्ख का स्वर गर्दभ जैसा और दुष्ट का स्वर काक जैसा कर्कश होता है। चाल से भी अच्छी परीक्षा होती है। बिना शब्द किए चलनेवाला व्यक्ति सामर्थ्यवान और सज्जन होता है। द्रुतगामी और बहुगामी चंचल तथा आतुरमति होता है। दंभी उछलता-कूदता, पैर पटकता हुआ चलता है। श्रेष्ठ प्रकृति का पुरुष सिह, मतग, सांड या मोर

की गति से चलता है। सीधे आदमी के पदतल चलते समय सीधी दिशा मे पड़ते हैं; नीति-निपुण और चालाक आदमी के पजे दाये-बायें निकले रहते हैं तथा मूढ के पजे एक-दूसरे की ओर झुके हुए होते हैं।

सारांश

इन सारी बातो का साराश यह है—मनुष्य के व्यक्तित्व का एक प्रमुख अग उसके अग-प्रत्यग की बनावट से प्रकट होता है। मनुष्य मे मनोबल हो तो वह इच्छानुसार अगो को सुडौल, सतेज अर्थात् लक्षणसम्पन्न बना सकता है। वह अगों को छोटा-बड़ा भले ही न कर सके पर एक स्थान की कमी को दूसरे स्थान से पूरी कर सकता है। अंगो की बनावट से अपनी स्वाभाविक प्रकृति को जानकर वह अधिक सावधान होकर बुद्धि-बल से उसको दबा सकता है और वह दब भी जाती है। जैसे किसी नाटे आदमी को आप देखिए; वह विशेष चैतन्य, कार्यपटु और दूसरो पर प्रभुता जमाने के लिए प्रयत्नशील मिलेगा। उसकी क्रियाए प्राकृतिक नही, बौद्धिक होती है। इसलिए वह उस कमी को पूरा करने के लिए अधिक फुर्तीलापन, कार्यपटुता दिखाकर अपने को श्रेष्ठ दिखलाना चाहता है और द्वेषवश बड़े शरीरवालों पर शासन चलाने की मनोवृत्ति रखता है। लम्बे आदमी में यह भाव नहीं उठता।

सम्पूर्ण शरीर को देखिए

किसीकी परीक्षा जब आप अग-प्रत्यग को देखकर करते है तो एकागी दृष्टिकोण से न करिए। उसमें गलती हो सकती है। किसीका एक अग प्रभावशाली हो सकता है, किन्तु उसीका एक विरोधी अग विरोधी दिशा में उससे भी अधिक प्रभावशाली होकर पहले के प्रभाव

को मन्द कर सकता है। अतएव सभी अगों से मनुष्य को पहचानिए। उदाहरणार्थ यदि किसीकी नाक गोल और वगल से चपटी हो, उसकी आंखे भी धसी हो, होंठ भी पतले और जीभ भी वहुत लपलपाती हो, उसे आप लोभी समझिए। किसीकी आंखें भी धसी हो, कान तने हो, भौहे वक्र हो, माथा सकुचित या सपाट हो, नाक वक्र हो, नीचे का होठ ऊपरवाले पर शासन करता हो तो उसे अभिमानी, क्रोधी या शीघ्रकोपी मानिए। किसीके कान खड़े हो, सिर गोल हो, नाक लम्बी हो, होठ पतले और ठुड्डी छोटी हो तथा गर्दन लम्बी हो तो उसे गृह-मोही, स्त्री-प्रेमी मानिए। किसीकी आखे फटी-सी हों अर्थात् ऐसा लगता हो जैसे देखनेवाला आखे फाड-फाड़कर देख रहा हो, माथा धसा हो, केश रूक्ष या खडे हों, सिर लम्वा, पैर पतले हों और ऐसा लगता हो जैसे उसके सब अग शरीर के भीतर सिमटे जा रहे है तो उसको भयशील मानिए। जिसके गाल फूले हो, छाती पीठ की ओर विशेप झुकी हो, नाक त्रिकोण हो, सिर पीछे की ओर विशेप निकला हो, होंठ आपस मे सिमटे-से हों, वाल बिखरे तथा खड़े हों, आखे ऊपर-नीचे तनी हो, माथा या तो वहुत छोटा हो अथवा वहुत धसा हो, उसे अहंकारी मानिए। जिसका मुह निकला हो, होठ मोटे, गाल उभरे और आंखे वैल जैसी हों उसको मूर्ख, आलसी, मानहीन मानिए। जिसका सारा मुह लटका हुआ-सा हो, आवाज में भर्राहट हो, हाथ वहुत मोटे या पतले हो, वह असुखी और चिन्ताग्रस्त होगा। जिसके अग आपस मे गोंद से चिपकाए हुए से लगते है, नाक विशेप चपटी होती है, नीचे का होठ निकला रहता है, मुह फैला रहता है, कपाल दवा-सा रहता है, वह कजूस होता है। जिसका मस्तक उठा रहता है, छाती चौड़ी और तनी रहती है, आंखे जिधर भी उठती है सीधी दिशा में देखती हैं, प्रत्येक अग नपा-तुला-सा रहता है, सिर छत्ता-

कार होता है, वह मेधावी, यशस्वी एवं शूरवीर समझा जाएगा। जिसका भाल विशाल होता है, नासिका का अग्रभाग कुशाग्र होता है, कपाल का बुद्धि-स्थान विशाल और उठा होता है, शरीर के सभी अंग सुविभक्त होते हैं, वह विशेष कार्यार्थी, उद्यमी, प्रबल विवेचक, तेजस्वी और सर्वगुणसम्पन्न होता है(गाधीजी की आकृति को देखिए)। जिसका चेहरा मलिन हो, आंखे धुधली या कीचड़ से भरी हों, होंठ विवर्ण हों, ललाट निष्प्रभ हो, अग-प्रत्यग सुस्त हों, उसे आप रुग्ण, मुख्यत. उदर-विकार से ग्रस्त मान सकते है।

समूचे शरीर की परीक्षा करते समय आप मुख्य रूप से यह देखिए कि दांत, त्वचा, नख, रोम और केश चमकते है या नही। जिसके शरीर मे तेज होता है, वह इन स्थानों से झलकता है। शरीर में जितने स्थान रूखे, मांसहीन और उभरी नसोवाले होंगे, वे अशुभ होगे और बहुत क्रियाशील न होगे। एक और बात यह देखने की होती है कि जो अग इस समय किसी रूप मे है उसका मूलस्वरूप क्या रहा होगा। स्वभाव से, खान-पान की विशेषता से और परिस्थितियो के आघात-प्रतिघात से अगों की बनावट मे अन्तर आ जाता है। आप कुछ दिन चिन्ता कीजिए तो बालो की चमक निकल जाएगी; उनमें रूक्षता आ जाएगी और वे अपना प्राकृतिक रग त्यागकर असमय में ही श्वेत हो जाएगे। आपके नेत्र कितने ही उन्नत हों, मद्य सेवन कीजिए तो वे नत हो जाएगे। जन्म से आप अच्छी कमरवाले हो सकते है, पर बेसिर-पैर का खाना खाइए और पडे रहिए तो कमर की जगह पर तोंद निकल आएगी। अतएव मनुष्य के मूलरूप की परीक्षा करते समय उसकी परिवर्तित कर देनेवाली शक्तियों या परिस्थितियों को भी ध्यान में रखना चाहिए—यद्यपि सत्य यही है कि शरीर की मूल प्रकृति में विशेप अन्तर नही हो सकता। जिन

वच्चों की वनावट ही दुवली-पतली होती है उनमें से वहुत-से, चाहे वे कुवेर के पुत्र हों और रोज़ सुवर्ण और मुक्ता-भस्म खाएं, तो भी दुवले ही वने रहते है। यदि किसी दरिद्र की बनावट अर्थात् प्रकृति में मोटा-पन रहता है तो वह साग खाकर भी मोटा ही होता जाता है। जो लोग पुनर्जन्म और कर्मफल में विश्वास करते है वे इसके रहस्य को अवश्य स्वीकार करेगे। पूर्वकर्मो के अनुसार ही मनुष्य को नया शरीर मिलता है।

अन्त मे, हम पुन कहेगे कि अङ्गों की बनावट को ही सर्वस्व न मान लेना चाहिए। उनका साचा न वदले यह ठीक है, पर उनका संस्कार प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है। और मुख्य बात यह है कि मनुष्य अपनी आत्मा को प्रवल वनाकर शारीरिक असमताओं के रहते हुए भी अपना एक ऊंचा व्यक्तित्व वना सकता है। महाकुरूप भी सद्गुणो से अपनी सारी कुरूपता को ढंक सकता है। प्रकृति द्वारा किसीको सुन्दर अंग-प्रत्यंग मिल सकते है, पर यदि उसका मन ही निर्वल हो तो वे अंग केवल मुर्दे के शरीर के आभूपण ही होगे। अत-एव आप किसीकी परीक्षा करते समय उसके मन की विशेप रूप से परीक्षा कीजिए। मन की परीक्षा व्यवहार, अंग-प्रत्यंग के संचालन और शारीरिक चेष्टाओं से होती है। इसपर हम अगले अध्याय मे विचार करेंगे।

८. संग्रह-त्याग न बिनु पहिचाने

इन बातों को ध्यान में रखिए

व्यवहार से, बातचीत से, अंग-चेष्टा या आकृति-परिवर्तन आदि से आप दूसरो की दृष्टि मे कैसे लगते है और दूसरे लोग आपकी दृष्टि में कैसे लग सकते है, अर्थात् शरीर के बाहरी व्यापार से उनके मनोभावों या व्यक्तितत्व का पता कहा तक और कैसे लगता है, इसको समझने के लिए इन कुछ बातों को ध्यान में रखिए ·

१. मन ही सब इन्द्रियो के प्रवर्तन का हेतु है: 'मनो हि हेतुः सर्वेषा-मिन्द्रियाणां प्रवर्त्तने' (वाल्मीकि)—यह महाबुद्धिमान हनुमान की उक्ति है। मनुष्य के शरीर का प्रत्येक अग मन के आदेश से ही सचालित होता है। मन में जैसे विचार उठते है, शरीर के अङ्ग उन्हीके अनुकूल व्यक्त होते है। मन की चैतन्यता से इन्द्रिया चैतन्य होती है, उसके शिथिल होने से वे शिथिल पड़ती है और उसके अस्त-व्यस्त होने से वे भी भूले करती है। साराश यह है कि अङ्ग-प्रत्यंग की चेष्टा से मन की चेष्टा या मनोवृत्ति का ज्ञान हो सकता है।

२. मनोभाव के लक्षण शरीर पर तुरन्त ही प्रकट होते है—मन अपने को छिपाकर नहीं रख सकता। आकृति से, वाणी से, व्यवहार से या किसी चेष्टा से वह अपनी दशा को अभिव्यजित कर देता है। इसको इन उदाहरणों से समझिए। जब मन कांपता है तो वाणी कांपती है, हाथ-पैर भी कांपने लगते है। मन सदेहग्रस्त रहता है तो वाणी अस्पष्ट हो जाती है, आंखे स्थिर हो जाती है और अङ्गों की क्रिया-शक्ति मद पड़ जाती है। किसी बात से जब मन फड़कता है तो शरीर

के कोमल स्थान भी फड़कते हैं। जब मन भयभीत होता है तो हृदय ज़ोर से धड़कता है, रोएं खड़े हो जाते हैं, शरीर के सब अङ्ग विकल हो जाते हैं। जब मन कांपता है तो पलकें बार-बार झपकती हैं। वह जब लोभग्रस्त होता है तो लार टपकने लगती है। वह जब चौंकता तो कान खड़े हो जाते हैं। जब वह हत्या करने का निश्चय करता है तो आंखों में ख़ून सवार हो जाता है। वह जब क्रुद्ध होता है तो सांस की गति बढ़ जाती है, चेहरा लाल हो जाता है, अङ्ग-प्रत्यग फड़कने लगते हैं। उसपर कोई आकस्मिक आघात पहुंचता है तो चेहरा सफेद हो जाता है। मन के वेदनाग्रस्त होने पर स्वर भारी और शिथिल हो जाता है। और सबसे बड़ा प्रमाण तो यह है कि जब कोई माता अपने छोटे बच्चे के मोह से व्याकुल होती है या उसकी कीर्ति-कथा सुनकर आनन्द-विह्वल होती है तो उसके स्तनों से दूध टपकने लगता है। इन सबसे यह स्पष्ट है कि आपके भाव-जगत् की छाया आपके बाह्य जगत् पर पडती है। बहुत कम लोग अपने भावों को पचाने में समर्थ होते हैं। इनको या तो योगी पचा सकता है या परम विमूढ़ अथवा कोई निर्लज्ज फक्कड़। साधारण व्यक्ति जब मनोभावो को दबाता है तो उसे नाना विकार हो जाते है। कभी-कभी देखा गया है कि कोई स्त्री अपने बच्चे की मृत्यु के बाद संस्तब्ध हो जाती है, उसके मुख से न आवाज़ निकलती है, और न आंख से आंसू की धारा। उस दशा में लोग उसे रुलाने का प्रयत्न करते हैं, अन्यथा उसके पागल होने या मर जाने की आशंका रहती है। साधारण दशा में मनोभाव अभिव्यक्त हो ही जाते हैं और अङ्ग-प्रत्यंग उनको छिपा नहीं सकते, क्योंकि वे शरीर के स्वतन्त्र अवयव नहीं होते। मन की हवा चलने से तन-तरुवर के सभी पत्ते हिलते हैं और उनके हिलने से हवा का रुख और उसकी तेज़ी का पता चल जाता है।

३. स्वभाव मूर्द्धा पर रहता है : 'स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते' (हितोपदेश)। आपका स्वभाव प्रत्येक बात में आगे रहता है, प्रत्येक काम में सामने दिखलाई पड़ता है और उसके अनुसार आप व्यवहार करते हैं या किसीके व्यवहार से प्रभावित होते हैं। वह आपकी आकृति से प्रकट होता है, स्वर से, दृष्टि से प्रकट होता है तथा बातचीत के विषय एव उसके ढग से और आपके सम्पूर्ण आचरण से प्रकट होता है। साथ ही, आपके स्वभाव की विभिन्नता से इन सबमें विभिन्नता आ जाती है। अतएव किसीके ज्ञान आदि को देखने के पूर्व उसके स्वभाव से उसकी मनुष्यता की परीक्षा कीजिए।

स्वभाव की बहुत-सी विशेषताए जन्मगत होती है। पूर्व सस्कारों और बाल्यकाल के वातावरण के अनुसार मनुष्य की प्रकृति का सच्चा निर्माण और विकास होता है, इसे सभी स्वीकार करते हैं। आगे चलकर मनुष्य परिस्थितियों के अनुसार और ज्ञान-विवेक के अनुसार भी अपने स्वभाव का परिष्कार करते है। यहां यह बता देना अप्रासगिक न होगा कि मनुष्य अपने मस्तिष्क के केवल $\frac{1}{10}$ भाग पर ही शासन करता है, शेष $\frac{9}{10}$ भाग उसके स्वभाव या उसकी आदतो से ही अपने आप शासित होता है। यह भी कह देना असंगत न होगा कि मनुष्य में ७५ प्रतिशत बुद्धि-भाग जन्मगत होता है। विद्या, अभ्यास, अनुभव से यह केवल २५ प्रतिशत ही उसमें मिलाता है। इन सबसे अन्तर्मन और उसके संस्कारों की महत्ता समझ मे आ सकती है। यदि स्वभाव पर आरम्भ से ही नियंत्रण न रखा जाए तो आगे चलकर ज्ञान-बल से उसका सुधार नहीं होगा। सब प्रकार से यही स्पष्ट है कि ज्ञान की अपेक्षा स्वभाव से किसीके व्यक्तित्व की परीक्षा करना अधिक सुगम है। किसीका स्वभाव अच्छा होगा तो उसका प्रेरणात्मक ज्ञान उसका सहायक ही होगा। स्वभाव विपरीत होगा तो उसकी चेतन-बुद्धि भी

विपरीत दिशा में कार्य करनेवाली होगी। बुद्धि-बल से और जिह्वा-बल से कभी-कभी स्वभाव को छिपाया जा सकता है, पर सर्वदा नहीं।

४ रूप के मोह में न पड़िए—किसीके रूप को देखकर ही उसको प्रधानता न दीजिए। आचरण से भी उसकी परीक्षा कीजिए। वेश्या रूपवती होकर भी दुराचारिणी होती है। कस्तूरी को काली समझकर फेकने की चेष्टा न कीजिए। तालाब की पहली ही सीढी तक जाने से उसकी गहराई का अनुमान नही होता; और अन्दर तक जाइए। कोई आपसे मिलता है तो उसकी सफेद कमीज देखकर ही स्वच्छता-प्रेमी न मान लीजिए। उस कमीज़ के नीचे भी देखिए, वहां शायद एक बडी गन्दी बनियान मिलेगी जो गन्दे स्वभाव के सार्टीफिकेट की तरह उसके गले मे टगी होगी।

किसीके मुख से सीता-सावित्री के उपाख्यान सुनकर ही उसको महात्मा न मान लीजिए। उसके कमरों की दीवारों पर भी दृष्टि डालिए, सभव है वहां उसके स्वभाव को प्रिय लगनेवाली ससार की चुनी हुई कुलटाओ के चित्र टगे मिले। उसके ग्रामोफोन के रेकार्ड देखिए। हो सकता है, वह आपको भजन सुनाता हो और घर में कव्वा-लियां सुनकर अपनी स्वाभाविक तृप्ति करता हो। उसकी मेज़ को नही, पुस्तकालय को देखिए। मेज़ पर सम्भव है वह धर्मशास्त्र के ग्रथ रखता हो और पुस्तकालय में सचित्र कोकशास्त्र मिल जाए। किसी-को स्वच्छता कहां तक प्रिय है, इसे जानना हो तो उसका बैठकघर नही बल्कि उसका रसोईघर देखना चाहिए। किसका जीवन कहां तक सुखी है, इसको उसकी आकृति पर नहीं, उसके स्त्री-बच्चों की आकृति पर पढ़ना चाहिए। किसी कवि के व्यक्तिगत जीवन के आनन्द को उसके काव्य से नहीं बल्कि उसके रोज़नामचे से जानना चाहिए। काव्य मे तो वह सुवर्णकोष लुटाता होगा, पर निजी जीवन में संभ-

वतः दूसरों से रुपये उधार लेकर जीविका चलाता हो। किसीका साहस-वल उसके शब्दो में न देखिए और न उसकी सम्पत्तिशालीनता की अवस्था मे। विपत्ति में देखिए कि उसकी जिह्वा तेज चलती है या उसके पैर। मित्र की परीक्षा अपने सुख के दिनों में नही, सकट के दिनो में कीजिए। दाढी देखकर ही किसीको सरदार न मान लीजिए, बल्कि देख लीजिए कि उसके पास सरदार का दिल भी है या नही। रुपये की गोलाकृति और उसकी चमक-दमक देखकर ही उसको खरा न मान लीजिए, उसे वजाकर भी देख लीजिए; हो सकता है, वह जाली या खोटा निकले। प्रत्येक वस्तु के सामान्य रूप को नहीं, उसके विशिष्ट रूप को भी देखकर तब उसके विषय मे निर्णय कीजिए। मनुष्य की योग्यता-अयोग्यता को सभवतः उसके रूप से आप न पढ़ पाए, पर उसके कार्य, व्यवहार और स्वभाव के विज्ञापन से अवश्य पढ लेगे।

इस सम्बन्ध में आप उस उपदेश को याद रखिए जो मछलियोंने राम को दिया था। पम्पासर मे बगुलों की ओर लक्ष्मण की दृष्टि आकृष्ट करके राम ने कहा था कि हे लक्ष्मण! देखो, यह जीव कैसा साधु है; धीरे-धीरे पैर उठाकर रखता है; डरता है कि कही उसके पैरों के नीचे किसी जीव की हिंसा न हो जाए। सरोवर की मछलियों ने इसको सुनकर तत्काल कहा—हे राम! तुम क्या कह रहे हो, इस धूर्त ने हमारे वश के वंश निर्मूल कर दिए है—साथ रहनेवाला ही साथी के चरित्र को जान सकता है: 'सहवासी विजानाति चरितं सहवासिनः।'

५. देश-काल-परिस्थिति को ध्यान में रखिए—किसी व्यक्ति अथवा किसी वस्तु का निरूपण करते समय देश-काल और परिस्थिति के अनुसार विचार कीजिए। विचार ही न कीजिए, अपने जीवन में

भी आप देश, काल, परिस्थिति के अनुकूल सुधार कीजिए; जिससे आप सामयिक बन सके। 'जैसा देस वैसा भेस' की कहावत न भूलिए। यदि पण्डित जवाहरलाल नेहरू भारतवर्ष में हिन्दू-राज्य की स्थापना का विरोध करते है तो आप उन्हें हिन्दू-द्रोही कहने से पहले एक बार इन बातो पर भी विचार कर लीजिए कि आप एक ऐसे देश मे है जहां और भी धर्मो के लोग स्वाधिकारपूर्वक रहते है, आप एक ऐसे काल मे हैं जिसे बीसवी शताब्दी कहते है और जिसमे सर्वत्र प्रजातत्र राज्यों की स्थापना हो रही है, और आप एक ऐसी परिस्थिति मे है जिसमें धर्मान्धता से देश-समाज को हानि हो सकती है तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से आप वंचित हो सकते है। समय परिवर्तनशील है और समय के साथ सभ्यता का प्रत्येक अग परिवर्तनशील है। सम्भवतः हम-आप उस युग में होते जब राजनीति धर्म की एक शाखा-मात्र थी और सौभाग्य से यही पण्डित जवाहरलाल नेहरू होते और सभी आधुनिक साधन भी सुलभ होते तो यह सम्भव था कि धार्मिक भावना से प्रेरित होकर गवर्नमेण्ट ऐसे ही नियम बना देती कि रेले साइत से चले, दिशाशूल मे न चले, गार्ड लोग सीटी नही, शख बजाया करे, गाड़ी चलते समय गार्ड के डिब्बे में हवन और मगल-स्तोत्र का पाठ होता चले जिससे यात्रा निर्विघ्न समाप्त हो जाए। पर वर्तमानकाल मे ऐसी बातों की कल्पना करना भी मूर्खता है।

यह तो सार्वजनिक विषयो के सम्बन्ध मे हुआ। व्यक्तिगत व्यवहार मे भी हमारी परीक्षा इसीसे होती है कि हम समय के साथ कहां तक आगे बढ़ रहे है। आप किसीसे मिलते है तो इसी दृष्टि से उसको देखिए। इस बात को विवेकपूर्वक देख लीजिए कि वह व्यक्ति जैसा आचरण कर रहा है, वैसा करने के लिए वह बाहरी वातावरण से कहां तक विवश है। अपने को उसकी परिस्थिति मे रखकर तब उसके

व्यक्तित्व को तोलिए।

इस प्रश्न को और भी निकट से तथा अन्य प्रकार से देखिए। कभी-कभी एक ही प्रकार का कर्म भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में पड़कर भिन्न हो जाता है; उदाहरणार्थ, साधारण दशा मे कोई व्यक्ति किसी-की हिंसा करता है तो वह हत्यारा माना जाता है और फांसी पर लटका दिया जाता है। युद्ध में शत्रु-हिंसा करने पर वही व्यक्ति शूर-वीर और राजसम्मान का पात्र माना जाता है। कर्म एक ही प्रकार का होने पर भी परिस्थितियां कर्ता के रूप को भिन्न कर देती हैं। यदि आप परिस्थितियों को न जानें और इतना ही जाने कि अमुक व्यक्ति ने दस आदमी मार डाले तो आप उस व्यक्ति को महाहिंसक मान लेगे। एक अन्य उदाहरण लीजिए। एक समय था जब हिटलर विजेता की स्थिति में था। उसकी सेनाएं दिग्विजय करती हुई सारे विश्व को कपा रही थी। उस समय लोग उसे सर्वशक्तिमान, ऐतिहा-सिक युग का सर्वश्रेष्ठ योद्धा मानते थे। कालान्तर में परिस्थिति नें पलटा खाया। अब किसीको हिटलर के वीर-रूप का ध्यान नही आता; सब उसकी अदूरदर्शिता और अमानुषिकता की कथाए ही कहते-सुनते हैं। उसकी विशेषताओं को कोई सोचता भी नहीं। परिस्थितियों का इतना प्रभाव किसीके व्यक्तित्व पर पड़ सकता है ! विजेता हमारी दृष्टि में सदा से देव-तुल्य हो जाता है और विजित रावण का अवतार। जब परिस्थितियां स्वाभाविक रूप से हमारी मनोदशा पर इतना प्रभाव डालती है तो हम उनकी उपेक्षा कैसे कर सकते है ? हां, इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि हम केवल परिस्थितियों को ही न देखे, देश-काल ही को न देखे, बल्कि मानव के व्यक्तित्व को उसके बीच में खड़ा करके देखे और स्वयं भी उन्हीके बीच में अपने को रखकर विचार करें।

६. स्वतन्त्र बुद्धि से विचार कीजिए—किसीके व्यक्तित्व को

शुद्ध परीक्षा करते समय उसके रंग-रूप, उसकी स्थिति और उसके कार्यक्रम आदि का ध्यान रखना तो आवश्यक ही है। इस बात की और भी अधिक आवश्यकता है कि आप अपने स्वभाव और स्वार्थ के आधार पर किसीकी रूपरेखा न बनाए। प्राय. यह होता है कि आदमी अपनी ही स्थिति में सबको रखकर उनके विषय में अपनी एक धारणा बनाता है। ऐसा भी होता है, और प्रायः होता है कि हम स्वय जैसे हैं, वैसे ही दूसरों को देखना चाहते है। यदि वे वैसे नही होते तो हम उनके व्यक्तित्व का सम्मान नही करते। यही बुद्धि विवेकभ्रष्ट हो जाती है।

वास्तव मे, हम प्रत्येक बुद्धिसम्पन्न मनुष्य में एक-दूसरे को पहचानने की शक्ति है; वह नित्यशः इस शक्ति का उपयोग भी करता है। उससे त्रुटि वही होती है जहां वह भावुकता के आवेश मे या अपने स्वभाव की विवशता से या अनुभवशून्यता से अथवा अज्ञानवश निष्पक्ष होकर किसीके वास्तविक रूप को नहीं देखता। वह जो कुछ देखता है उसे एकाङ्गी दृष्टिकोण से और अपने मन के सकल्प के अनुसार देखता है। मन में किसी पूर्व-वासना के होने से हरएक देखी हुई वस्तु उसीके रग में रग उठती है। मान लीजिए आप धर्मान्ध है। उस दशा मे अन्य धर्म का सभ्य व्यक्ति भी आपको चाडाल जैसा लगेगा। आप पुराने ढग के कट्टर सनातनधर्मी पण्डित हो तो अपने से भी अधिक किसी साफ-सुथरे शूद्र को महागन्दा और अछूत ही मानेंगे। यदि आप उदारबुद्धि होगे तो महापतित को भी अपना बन्धु ही मानेंगे। इसीको दूसरे रूप मे यों समझिए। एक हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति को उसकी माता महानिर्दोष और दुर्बल मानती है। उसकी स्त्री उसको रसिक-राज समझती है, अपना देवता मानती है। उसके बच्चे उसीको अपना सरक्षक और शासक मानते है। उसके सेवक उसीको धर्मावतार; मित्र-

गरण एक समर्थ बन्धु और शत्रुगण साक्षात् दानव समझते है। वे उसके व्यक्तित्व को उसी रूप में देखते हैं, जिससे उनका सम्बन्ध है। पर क्या सबके विचारों को अलग-अलग लेकर आप उस व्यक्ति का समूचा व्यक्तित्व चित्रित कर सकते है? कभी नही। अनुरागी व्यक्ति अपने प्रेम-पात्र की त्रुटियों को कभी नही देखता। द्वेषी व्यक्ति अपने शत्रु के सीधे आचरण को भी सदोष मानता है। जब हमारे मन में किसी व्यक्ति या किसी वस्तु के पक्ष-विपक्ष में कोई धारणा पहले से बनी रहती है तो हम उसके सम्बन्ध मे विचार करते समय उसके साथ न्याय नहीं करते। हम उसके रूप को नही बल्कि अपने स्वभाव या स्वार्थ को उसीके रूप मे मूर्तिमान देखते है और भ्रम में पड़ जाते हैं। जिससे हमारा स्वार्थ-साधन नही होता, उसे हममें से अधिकांश लोग दो कौड़ी का आदमी समझ लेते है। यदि कोई अनीतिपूर्वक भी हमारा उपकार कर देता है तो हम उसको बड़ा भला आदमी मान लेते हैं।

जब तक हम व्यक्तिगत प्रश्नों को अलग रखकर किसीके विषय में विचार नही करते, तब तक हम उसको समझने मे अवश्य भूल करेंगे। अतएव यह आवश्यक है कि पहले आप अपने परीक्षा-यन्त्र को ठीक कर ले। यदि आपका कोई हाथ पक्षाघात से निर्जीव होगा तो उसमें किसी जीवित व्यक्ति की नाड़ी भी यदि पकड़ा दी जाएगी तो आप उसको निर्जीव घोषित कर देगे। नेत्र-दोष होने पर सुन्दर दृश्य भी कष्टप्रद होता है। यदि आप लोभी होंगे तो उसी व्यक्ति को सज्जन समझेंगे जो कुछ भेंट-पूजा लेकर आपसे मिलेगा; खाली हाथ मिलने-वाला महास्वार्थी जैसा लगेगा। यदि आप हृदय के दुर्बल होगे तो बलवान व्यक्ति आपको ब्रह्मराक्षस जैसा प्रतीत होगा और यदि आत-तायी होगे तो बड़े से बड़े आदमी को मिट्टी का कच्चा घड़ा समझेंगे।

बिना टिकट के रेलयात्रा करनेवाले को टिकट-कलेक्टर यमदूत जैसा लगता है।

इसलिए यदि आप दूसरे को समझना चाहते है तो पहले मिथ्या धारणाओं को मन से निकाल दीजिए। यदि कोई आपके सत्कर्मो का सम्मान नहीं करता तो आप समझ लीजिए कि उसके मन मे भी आपके प्रति कोई दुर्भावना है, जिसके कारण वह आपके रूप को नही देख पा रहा है। एक-दूसरे के निकट जाने के लिए ऐसी धारणाओं को निर्मूल करने की परम आवश्यकता होती है।

७. मनुष्य-मनुष्य में स्वाभाविक स्नेह या विद्वेष भी होता है। इसका यही अर्थ नही है कि यदि किसीसे किसीके स्वभाव का मेल बैठता है तो वे परस्पर स्नेही होते है, नहीं मेल खाता तो द्वेषी हो जाते है। इसमें सत्यता हैं, चोर-चोर मौसेरे भाई कहे भी जाते है। पागल आदमी पागलों को देखकर आनन्दित होता है, सज्जन सज्जन को और सत्यवादी सत्यवादी को।

स्वाभाविक स्नेह और विद्वेष का एक गूढ रहस्य भी होता है; उसको जान लेना चाहिए। मनुष्य के मस्तिष्क में विचारों की जो तरंगे उठती हैं वे शरीर में ही नही विलीन हो जाती; वे मनुष्य के शरीर के चारो ओर के वायुमडल को आन्दोलित करती है। तरगों की यह क्रिया स्वाभाविक होती है। वे विचार-तरगे निकट के अनुकूल विचारों को ग्रहण करती हैं और प्रतिकूल विचारो से टकराती है। उनका आघात मस्तिष्क पर पडता है। शरीर के चारों ओर यह सघर्ष वायुमंडल में निरन्तर चलता है। मस्तिष्क में चुपचाप उसकी अनुभूति होती है। किसी पवित्र मन्दिर मे जाने पर आपको जो शान्ति मिलती है, उसका एक कारण यह है कि वहां जो शुभ विचार वायुमडल में तैरते रहते हैं, वे आपके अनुकूल विचारों को और सबल कर देते है। कभी-कभी

आपने अनुभव किया होगा कि किसी मकान या स्थान-विशेष में जाने पर आपके मन में अकारण विरक्ति या भय की भावना उठती है। उस जगह को आप मनहूस मानते है। इसका कारण यह है कि वह किसी समय दुष्टों का केन्द्र रहा होगा। वहां वही विचार अधिक समय तक फैले रहते है।

इसी प्रकार आपको इसका अनुभव भी हुआ होगा कि कभी-कभी किसी अपरिचित व्यक्ति से मिलते ही आपके मन मे उसके प्रति श्रद्धा-अनुराग के भाव उत्पन्न हो जाते है। कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति आपसे वार-वार मिलकर हर वार आपके समक्ष सुन्दर भाव प्रकट करता है, फिर भी आपके चित्त में उसके प्रति अनायास अश्रद्धा और विरक्ति की भावना ही उत्पन्न होती है। ऐसे आदमियो की शक्ल से ही आपके मन में चिढ पैदा होती है। ऐसा क्यों होता है? इसका कारण भी वही है, जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। वह व्यक्ति आपके मुह पर मीठी बाते करता होगा, पर उसके मन में आपके प्रति निरन्तर दुर्भावनाए व्याप्त रहती होगी, जिनकी विद्युत्-तरगे आपकी विचार-तरगों से चुपचाप टकराती होगी। कोई हृदय से आपके साथ सहानुभूति रखता होगा तो उसकी तरगे आपकी तरगों से मिलकर आपके मनको और भी चेतनावान बना देती होगी। इसका यही वैज्ञानिक रहस्य है, जिसको आधुनिक पाश्चात्य वैज्ञानिक मानते है।

इस सम्बन्ध में आधुनिक वैज्ञानिको ने एक और खोज की है। उनका कहना यह है कि हृदय मे जब किसी भाव की तीव्रता होती है तो भिन्न-भिन्न प्रकार की गधे निकलती है। उन्हे हम नही जान पाते क्योंकि मनुष्य की घ्राण-शक्ति सीमित है। ऐसे जीव-जन्तु, जिनकी सूघने की शक्ति तीव्र है, उनको शीघ्र ग्रहण कर लेते हैं। भयभीत

होने पर शरीर से एक दुर्गन्ध निकलती है। उसे अंग्रेजी में भय-गन्ध' कहते है। वह जानवरों को असह्य हो जाती है, इसमे सत्यता है। जो लोग रात में बहुत बचा-बचाकर चलते है, उन्हे सांप-विच्छू मिल ही जाते है। निडर लोग नगे पांव घूमते हैं, पर उनपर ऐसे जीव-जन्तु अनायास आक्रमण नहीं करते। आप डरते हुए गाय-बैल के पास जाइए तो वे भडकते है और मारने को दौड़ते है। आपका नौकर निडर होकर जाता है तो उनमे ऐसी कोई प्रतिक्रिया नही होती। इसकी परीक्षा आप स्वयं कर सकते हैं। भय की दशा में शरीर के दूषित पदार्थ बाहर निकलते है, इसको तो आप मान ही लेगे। प्रायः पसीना निकलता है और कभी-कभी मल-मूत्र भी। जब कोई गन्दी वस्तु बाहर निकलेगी तो निकटस्थ जीव को वह अप्रिय अवश्य लगेगी और वह उसका प्रतिकार भी करेगा।

यह कोई नई खोज नही है। ऋग्वेद के ऋषि इस रहस्य की खोज दूर तक कर चुके थे। उनका कथन है कि जब मनुष्य के चित्त में कोई भावना बलवती होती है, तो उसके शरीर से उसी भावना से अनुप्राणित एक प्राणसूत्र निकलता है जो समीप के वायुमण्डल में व्याप्त हो जाता है। रात में चोर को देखते ही कुत्ते भौंकने लगते हैं। शीघ्र चेतन होने के कारण वे उस प्राण-सूत्र से प्रभावित हो जाते है। इसी प्रकार जब कौवे घर की छत पर या द्वार पर बोलते है तो लोग कहते है कि कोई अतिथि आनेवाला है। अतिथि आए या न आए, ऋग्वेद के उक्त मत के अनुसार इसका यह रहस्य है कि किसी स्नेही का मन आपमे लगा है; उसकी भावनाएं आपकी ओर केन्द्रित है। कौवे उस प्रकार के वायु-व्याप्त प्राण-सूत्र से शीघ्र प्रभावित हो जाते

---

१. Fear-Scent.

है। वेद का कथन है कि जब मनुष्य चलता है तो उसकी पद-ध्वनि भी प्राण-सूत्र की विद्युत् से यथेष्ट काल तक अनुप्राणित रहती है। यही कारण है कि बहुत-से कुत्ते चोर को या उसके पद-चिह्नों को देखे बिना भी सवेरे जाकर दूर की किसी झाडी आदि को नखों से खोदने लगते है और वहा प्राय: चोरी का धन भी पड़ा या गड़ा हुआ मिल जाता है। चोर जिस दिशा में गया हुआ रहता है, कुत्ते वहां की मिट्टी को सूंघते हुए पहुच जाते है। इस विद्या की खोज अथर्वा ऋषि ने खोई हुई गायों का पता लगाने के लिए की थी। इससे उन्हींके नाम पर इसको अथर्वा प्राण-सूत्र कहते है।

इस प्राण-सूत्र का विशेष महत्त्व है। निकट के प्राणी सद्भावनाओं और दुर्भावनाओ से भीतर ही भीतर प्रभावित होते है। प्राण की आकर्षण-शक्ति इसीपर अवलम्बित रहती है। कोई जनानुरागी व्यक्ति जब सामने आता है तो लोग उसके प्रति श्रद्धावश झुक जाते है। इसका कारण यही है कि उसका प्राण-सूत्र सबके प्राणों को अपनी ओर आकर्पित कर लेता है। एक-दूसरे के प्राण-सूत्र परस्पर बध जाते है। जो अपने को सबका बन्धु मानता है, उसके सभी बन्धुवत् ही है। इस प्राण-सूत्र का सम्बन्ध रक्त से भी होता है। महाभारत के अन्त में युधिष्ठिर ने स्वीकार किया है कि जुए के समय जब कर्ण उनके प्रति कठोर से कठोर वाक्य कह रहा था तो उन्होने सिर उठाकर देखा। तत्काल ही उनके नेत्र कर्ण के प्रति श्रद्धावश झुक गए। वे उसके चरणों की ओर देखने लगे। तब वे यह न जानते थे कि कर्ण उनका सहोदर है। कोई आन्तरिक शक्ति ही उनके मन में आत्मीयता जगाती थी। वह शक्ति 'अथर्वा-शक्ति' थी। ऐसा भी आप देखेंगे कि कभी-कभी लोग एकाएक घर लौट जाने को व्यग्र हो जाते है, उनके मन में उच्चाटन हो जाता है, घर जाकर वे किसी आत्मीय को बीमार या सकटग्रस्त देखते

हैं। रक्त रक्त को पुकारता है। किसीकी माता बीमार होकर या आपदाग्रस्त होकर जब अपने पुत्र का ध्यान करती है तो उसका चित्त जल्दी प्रभावित हो जाता है। पत्नी की विचारधारा उतनी जल्दी नही दौड़ती। रक्त-सम्बन्ध की दृढ़ता और मतैक्यता मे प्राण-सूत्र ही भीतरी सहायक होता है।

मन की भावनाओ का कितना प्रबल प्रभाव बाहर की वस्तुओ पर पड सकता है, इसको आप इन प्रत्यक्ष प्रमाणों से समझिए। कछुआ अपने अण्डों का पोषण स्वयं नहीं करता। उन्हें वह तीर पर बालू मे गाड़ देता है, स्वय जल-स्थित होकर दूर से ही उनपर अपना आन्तरिक प्रभाव डालता है। उस प्रभाव से वे अण्डे बढते हैं। कछुए को हटा दीजिए तो अण्डे निर्जीव हो जाएगे। कई प्रकार के सर्प ऐसे मिलते है जो शिकार के लिए कहीं नही जाते; वे एक जगह मुह खोलकर अपनी क्षुधा-भावना या इच्छा-शक्ति को तीव्र करते हैं। दूर के कीडे-मकोड़े उनकी ओर आकर्षित होकर इस प्रकार चले जाते हैं जैसे चुम्बक की ओर लोहा। इसी प्रकार के और भी उदाहरण दिए जा सकते है।

सारांश यह है कि विचारो की अनुकूलता-प्रतिकूलता से आकर्षण या उच्चाटन स्वाभाविक रीति से होता है। आपके विचार शुद्ध होगे तो शुद्ध विचारो के व्यक्ति आपकी ओर आकर्षित होगे। आपके हृदय में कालिमा होगी तो कलुषित विचारो के व्यक्ति बिना ढूढ़े आपको मिल जाएगे। चोर चोर को बहुत जल्दी पहचान लेता है। रिश्वत लेनेवाला अफसर रिश्वत देनेवाले को पहचानने में प्रायः भूल नही करता।

इसके अतिरिक्त यह भी प्रमाणित है कि एक-दूसरे की आंतरिक भावना से मनुष्य निरतर प्रेरित होता है। अतएव किसी विचार-

संकट में पड़ने पर अपनी आत्मा को साक्षी मानना चाहिए। प्राचीन शास्त्रों का एक निश्चित मत यह भी है कि मनुष्य मे स्वाभाविक आकर्षण या विद्वेषण पूर्वजन्म के व्यवहारों के आधार पर होता है। पूर्वजन्म के सस्कार आत्मा के साथ आते है। गाय का अबोध बच्चा पैदा होते ही अपनी मां की ओर आकर्षित होता है। हजारों गायों में भी वह अपनी मां को पहचानकर उसीकी ओर दौड़ेगा; पैदा होते ही अज्ञात प्रेरणा से वह थन की ओर दौडता है। इन्हीं सबको ध्यान में रखकर शास्त्रकार पूर्वगत सस्कारों को मानते हैं। आप इसको मानें या न मानें, इतना तो स्वीकार करेंगे ही कि बहुत-सी प्रेरणाए मन मे ऐसी उठती हैं जिनके कारण का पता नहीं चलता। वे प्रेरणाए निकट-वर्ती व्यक्ति की आन्तरिक प्रेरणाओं से प्रभावित होकर भी उठती हैं। एक की आत्मा दूसरे की आत्मा को शीघ्र पहचान लेती है। इन प्रेरणाओं की उपेक्षा आप विना विचारे हुए न कीजिए। इनके आधार पर दूसरों के व्यक्तित्व की परीक्षा कीजिए।

८. किसी महापुरुप के व्यक्तित्व की परीक्षा तत्काल न कीजिए—किसी भी महापुरुप को उसके शरीर में न ढूढिए। उसके व्यक्तित्व की आभा उसकी वाणी और उसके कर्म में देखिए। वाणी, कर्म में भी तत्काल नही, कुछ समय बाद उनके परिणाम या प्रभाव से देखिए। महापुरुष शरीर से हमारी ही तरह लौकिक होते हुए भी अलौकिक होते हैं। उनका मन अगाध होता है, उनकी वाणी गम्भीर होती है और उनके चरित्र विलक्षण प्रतीत होते हैं। इसलिए उनके मन की गहराई आप शीघ्र नही नाप सकते। उनका चित्त हर्ष-विपाद से शीघ्र आन्दोलित नही होता; अतएव चित्त के ये भाव भी उनकी आकृति में लक्षित नही होते। उनका चित्त-सयम विशेष प्रबल होता है। उनकी वाणी में गूढता होती है; अतएव उसका अर्थ उनके कर्म के साथ ही

प्रकट होता है। उनके चरित्र का लक्ष्य-मार्ग लम्बा होता है। वे किसी दूर की वस्तु की प्राप्ति के लिए सतर्क होकर चलते है। सर्वसाधारण उस लक्ष्य को न देखकर उनकी गतिविधि पर सन्देह कर सकता है।

इस सम्बन्ध मे इन श्लोको को ध्यान मे रखिए :

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति ॥ (भवभूति)

—उत्तम पुरुषो का हृदय वज्र से भी कठोर और फूल से भी कोमल होता है। उसे जानने मे समर्थ कौन होता है?

सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता।
उदये सविता रक्तो रक्तश्चास्तमये तथा ॥ (पचतत्र)

—सम्पत्ति और विपत्ति मे महात्माओ का एक रूप रहता है। सूर्य उदयकाल मे भी लाल रहता है, अस्तकाल मे भी।

चरित्र की गूढता को समझने के लिए आप महात्मा गांधी के जीवन का अध्ययन कीजिए। उनके बहुत-से कामो को पहले लोग उनकी अक्षम्य राजनीतिक भूले समझते थे, पर कुछ दिनो बाद उनके सुन्दर परिणाम को देखकर गाधीजी की दूरदर्शिता की प्रशसा करते थे।

इन बातो को देखते हुए यही जान पड़ता है कि हम सत्पुरुषो को उनकी आकृति मे नही बल्कि उनकी कृति मे देखें। ईश्वर-दर्शन के विषय मे गाधीजी कहते थे कि परमात्मा शरीर द्वारा नहीं, कर्म द्वारा प्रत्यक्ष होता है। यही बात उन महापुरुषों के लिए भी सत्य है जो ईश्वर के निकट पहुचे हुए होते है।

छोटी बातो से ही किसीके बड़प्पन की परीक्षा होती है—मनुष्य साधारण बातो में या साधारण व्यक्तियों के साथ जैसा आचरण करता है उसीसे उसके स्वभाव के उन सूत्रो का पता चलता है जिनसे वह

बना हुआ होता है। बड़े कामों या बड़े आदमियों के सामने तो सभी सावधान रहते हैं और अपने कृतिम स्वभाव का विज्ञापन करते हैं। छोटे कामों मे या सर्वसाधारण के समक्ष वे अपने को बनाने की विशेष चेष्टा नही करते। अतः अपने वास्तविक रूप मे खुल जाते है। बड़ों के सामने कोई विनम्रतापूर्वक बाते करता हो तो उसको स्वभाव से विनम्र या मृदुभाषी न मान लीजिए। यह देखिए कि अपने से छोटों के सामने जाते ही वह ऐठने और कण्ठ-व्यायाम तो नही करने लगता। विशेष अवसर पर प्रदर्शित आचरण से नही, वल्कि दैनिक आचरण से मनुष्य के जीवन-क्रम का पता चलता है।

किसीकी अग-चेष्टा को पढ़ते समय भी उसके सूक्ष्म स्थानों को देखने से अधिक ज्ञान हो सकता है। प्रेम, भय आदि के आक्रमण से रोम खड़े मिल सकते है। सिर के वाल तो उनकी अन्तिम दशा में ही खड़े होगे।

इसी प्रकार समाज की दशा जनसाधारण की दशा को देखकर जानी जाती है। भारत मे वड़े-बड़े धनकुवेर है, पर उनके कारण हम सारे देश को सम्पन्न नहीं कह सकते। सम्पन्न तो तब कहेगे जब जन-साधारण की आर्थिक स्थिति भी सन्तोषजनक हो।

इस बात को कभी न भूलिए कि हवा के रुख का पता छोटे-छोटे तिनकों, धूलिकणों और पेड़ की पत्तियों से लगता हे। लकड़ी के कुन्दो, पर्वत की चट्टानों और पेड़ के तनो से आप पता नहीं लगा सकते कि हवा किधर को जा रही है। किसी व्यक्ति, किसी समाज अथवा किसी वस्तु की स्वाभाविक गति किधर को है, इसका पता उसके साधारण लक्षणो से ही लग सकता है। उसको पहले साधारण स्थिति मे देखिए और उसके बाद असाधारण स्थिति मे देखकर इसका पता लगाइए कि उसमें कितने असाधारण गुण भी है। इन सबको ध्यान में रखकर

मनुष्य को पहचानने का प्रयत्न कीजिए।

मनुष्य-परीक्षा के ढंग

मनुष्य-परीक्षा के कई ढंग पहले भी प्रचलित थे, अब भी प्रचलित है। विद्या और ज्ञान-सम्बधी परीक्षाओ के अतिरिक्त मनुष्य के गुण-स्वभाव, आचार-विचार की परीक्षा भी आदिकाल से होती आ रही है। यही नहीं, पहले तो चरित्र की जाच के लिए अग्नि-परीक्षा जैसी कठिन परीक्षा होती थी। मानव के अंग-प्रत्यंग आदि की परीक्षा के सम्बध में हम इससे पूर्ववाले अध्याय में विशेष रूप से लिख चुके हैं।

इस युग में भी स्कूली परीक्षाओ के अतिरिक्त कई अन्य ढगों से भी परीक्षाएं होती हैं। अब तो मनुष्य की विचार-तरगों को जांचने के वैज्ञानिक यत्र भी निकल गए है। पाश्चात्य देशो में, मुख्यतः अमरीका में बुद्धि-परीक्षा[१] तथा विचार-अध्ययन[२] आदि नामो से बुद्धि-परीक्षा की कई प्रणालियां आजकल प्रचलित है। कई प्रकार के प्रश्नों के उत्तर लेकर लोग व्यक्ति-विशेष की प्रतिभा, योग्यता अथवा विचारधारा की थाह लगाते है। मनोवैज्ञानिक जगत् मे अवसर-विशेष पर मनुष्य के व्यवहार की क्रिया-प्रतिक्रिया देखकर विशेषज्ञ लोग उसकी चित्त-दशा अथवा उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को नापते है।

ये सब विधिया विदेशियों के लिए आधुनिक हो सकती है; भारत-वासियो के लिए प्राचीन ही है। महाभारत में यक्ष ने युधिष्ठिर से जो प्रश्न पूछे थे वे सब बुद्धिमापक प्रश्न ही थे। राम ने भरत से चित्र-कूट मे बहुत-से प्रश्न उनके चरित्र और उनकी क्रिया-प्रणाली को समझने के लिए किए थे। उनमे से कुछ अनुवादित रूप मे ये है:

---

१. Brain Test, Intelligence Test.

२. Thought-Reading.

'—कभी संध्या-आगमन के समय सोते तो नहीं हो ?···प्रहर-भर रात्रि रहे जगकर कार्य-सिद्धि के उपाय पर विचार करते हो ?···अल्प व्यय से किसी महत्त्वपूर्ण कार्य की सिद्धि होने का निश्चय करके उसको शीघ्र प्रारम्भ तो कर देते हो ?···तुम्हारे बिना कहे अन्य लोग तुम्हारे अभिप्राय: को भांप तो नही लेते ? सहस्रो मूर्खों की अपेक्षा एक पण्डित को निकट रखने की इच्छा रखते हो कि नही ? क्या अपनी स्त्रियों को समझाते रहते हो ? उनकी बातो का विश्वास तो नहीं करते ? अपने मन की गुप्त बाते तो उनसे नही कह देते ?···तुम्हारे सब कर्मचारी नि:शक होकर जब चाहे तब तुम्हारे पास तो नही चले आते अथवा भय से तुमसे बहुत दूर तो नही भागे फिरते ? तुम्हारी आमदनी से तुम्हारा खर्च कम है कि नहीं ?···क्या तुम्हारा वेदाध्ययन और तुम्हारे कर्म सफल होते हैं ?'

इस प्रश्नावली का उल्लेख हमने इसलिए विशेष रूप से कर दिया है कि आप इसपर भी विचार कर ले कि राम जैसे बुद्धिमान महापुरुष किसी मनुष्य की सफलता के लिए उसमें किन-किन गुणों का होना आवश्यक समझते थे। रामायण, महाभारत मे ऐसे अनेक प्रसंग हैं। उन ग्रन्थो की रचना का एक प्रयोजन ही यह ज्ञात होता है कि लोग भिन्न-भिन्न परिस्थिति में भिन्न-भिन्न योग्यता और स्वभाव के मनुष्यो के आचरण देखकर तथा उनके उन आचरणो के परिणाम देखकर मनुष्य-जीवन के रहस्यो से परिचित हो जाएं। प्राचीन शास्त्रो में इन्द्र और धर्म आदि प्राय: मनुष्य की परीक्षा ही लेते घूमते थे। इनको विशुद्ध रूपक मानकर आप इस बात को समझ सकते है कि किन-किन बातो के आधार पर तथा किन स्थलों पर मनुष्य की परीक्षा होती है। हमारे नीतिशास्त्र मुख्यत. मनुष्य को पहचानने के लिए लिखे गए हैं। अतएव मनुष्य-सम्बन्धी ज्ञान की प्राप्ति के लिए उन ग्रन्थों का

आश्रय लेना चाहिए।

आजकल किसीको उसकी लिखावट से भी पहचानने की विद्या चल पडी है। वैज्ञानिकों का कहना है कि जब हम लिखने बैठते है तो शरीर की पांच सौ छोटी-छोटी नसें सयुक्त हो जाती है। ऐसी स्थिति मे अवश्य ही अक्षरों की बनावट पर हमारे स्वभाव का प्रतिबिम्ब पडता होगा। एक बात तो स्पष्ट है कि जिसका चित्त स्थिर होता है उसके अक्षर सुडौल, नपे-तुले रहते है। घबराए व्यक्त के अक्षर असम और टूटे-फूटे-से रहते हैं। कागजी जालसाजी को पकड़नेवाले विशेषज्ञ अक्षरो की बनावट देखकर ही निर्णय करते है। नकली कागज़ बनानेवाले या हस्ताक्षर करनेवाले का हाथ उस सफाई से नही चलता जैसा सही-सही लिखनेवाले का चलता है। उसके अक्षरो मे कम्पन की लहर स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। वह डरता हुआ और बना-बनाकर लिखता है, इससे अक्षरो मे कृत्रिमता आ ही जाती है। यह विषय बहुत विस्तृत और जटिल है। इसपर जानकारी के लिए अग्रेजी मे आप कई ग्रन्थ पा सकते हैं।

परन्तु आधुनिक मनोवैज्ञानिको ने एक और मनोरजक प्रणाली निकाली है। वे आपसे अपना ही रेखाचित्र बनाने को कहते है। आप अपने को जैसा समझते है, वैसी आकृति जिस तरह भी बना सकते है, बनाइए। चित्रकला का कौशल दिखलाने की आवश्यकता नही। टेढा-मेढा जैसा भी बने, आप अपना रूप बनाते जाइए। आप जो कुछ बनाएगे उसपर आपके व्यक्तित्व की कुछ न कुछ छाप अवश्य होगी। उसीके आधार पर भी मानव-शास्त्र के पण्डितगण आपके स्वभाव के छिपे हुए रहस्यो को पढ़ते है। उनका कहना है कि आपका अन्तर्मन अपने स्वभावानुकूल आपके हाथों को चलाता है। उन चित्रो से पता चलता है कि आपके भीतर अपने प्रति क्या विचार है, या वास्तव मे भीतर

से आपकी वनावट कैसी है ?

इस विषय पर अमरीका की एक प्रसिद्ध पत्रिका[1] मे एक विद्वान[2] का एक उपयोगी लेख है। उसके अनुसार पहले आपको अपना वैसा चित्र बनाना पडता है जैसा आप अपने को तत्काल समझते है। उसके उपरांत दूसरे कागज पर मनोवैज्ञानिक आपसे आपका वैसा चित्र वनाने को कहता है जैसा होने की आपके मन मे आकाक्षा रहती है। इसके बाद मानस-हस नीर-क्षीर-विवेक करता है। वह मुख्यत: इन बातों के आधार पर परीक्षा करता है।

१ जो स्वस्थचित्त और सरल होते है वे कैसा भी चित्र वनाए, कम से कम अपने को मनुष्य जैसा वनाते है और उसमे वुद्धि का कौशल नही दिखलाते है, अथवा जिन अंगो को सुन्दर मानते है उनको वढा-चढाकर दिखलाते है, अथवा जिन अगों को दुर्वल समझते है उनको मोटी रेखाओ आदि से सजीव वनाने का प्रयत्न करते है। प्रबल भावुक और मन से क्षुब्ध लोग अपनी आकृति पशु जैसी वना डालते है।

२. दुर्वल चित्तवाले, जडमति और बाल-वुद्धिवाले लोग पहले एक गोला वनाते है, उसमे नाक-मुह आदि चित्रित करते है, फिर उसी गोले के आधार पर इधर-उधर रेखाए खीचकर हाथ-पैर लटका देते है। अस्पताल मे मस्तिष्क की दुर्वलता के रोगी और नादान वच्चे अपना चित्राकन इसी प्रकार करते है।

३ सकोची, शकाकुल और कायर स्वभाववाले वहुत सोच-सोच-कर हल्की, टूटी-फूटी या लहरदार लकीरे खीचते है। उत्तेजित स्वभाव-वाले, अहकारी तथा महत्त्वाकांक्षी लोग बडी गहरी लकीरो से अपना

---

१. Maclean's Magazine, January 1, 1948.

२ George Kisker

चित्र अंकित करते है। दुस्साहसी तथा निर्भीक व्यक्ति जल्दी से जल्दी चित्र बना डालता है। दीर्घसूत्री, आवश्यकता से अधिक चौकन्ना रहनेवाला और प्रत्येक कार्य को साङ्गोपाङ्ग पूर्ण करने का अभ्यासी बडा समय लेता है।

४. अपने को सर्वश्रेष्ठ समझनेवाला व्यक्ति अपने वास्तविक रूप से अपने चित्र-रूप को विशेष सुन्दर बनाता है। उसकी गर्दन चाहे झुकी हो, पर चित्र मे वह तनी हुई दिखाएगा क्योकि अहकारवश वह उसको वैसी ही समझता होगा। नाटे आदमी अपना रूप प्राय लम्बा चित्रित करते है। इससे उनकी मनोवृत्ति का पता चलता है। अतृप्त आदमी प्राय· अपने वास्तविक चित्र मे अपने को दुर्बल और कल्पित चित्र मे मोटा बनाता है। इससे पता चल जाता है कि उत्तम भोजन, पर्याप्त धन, सुख की प्रबल आकांक्षा उसके मन में है।

५. खिलाड़ी मनोवृत्ति के लोग अपने हाथ या पैर को विशेष महत्त्वपूर्ण चित्रित करते है, अपने को विद्वान माननेवाले ललाट को, रसिक लोग आंखो को, आत्महत्या की मनोवृत्तिवाले अथवा जीवन से विरक्त लोग अपने को सचमुच भूत जैसा चित्रित करते है।

ऐसे ही अन्य लक्षणो से विशेषज्ञ लोग मनुष्य की अन्तर्दशा को समझने का प्रयास करते है। अमरीका और कनाडा के प्रत्येक अस्पताल में इस प्रणाली का व्यवहार आजकल किया जाता है। वहां की जेलों में भी अपराधियो की मनोदशा को समझने के लिए इस प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। बड़ी-बडी कम्पनियों में वे लोग इसका प्रयोग करते है, और पति-पत्नी के झगडों मे भी इसके सहारे उनके अन्तर्मन में छिपी हुई भावना का पता लगाते है।

-इन बातों से परीक्षा कीजिए

सर्वसाधारण के लिए उक्त प्रयोग झझटी है। दैनिक जीवन में

हम किन लक्षणों से किसको कैसा समझते है, इसपर अब विचार कीजिए। प्रायः वाणी, मुख-मुद्रा, अग-चेष्टा और व्यवहार से ही लोगों के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है। इन सबमे वाणी का स्थान प्रमुख है। 'नारद पचरात्र' नामक एक प्राचीन ग्रथ मे सत्य ही लिखा है कि मनुष्य के सभी कर्मों का मूल मन है; मन के अनुसार ही वाणी निकलती है और वाणी से ही मन का रहस्य खुलता है :

> मानस प्राणिनामेव सर्वकर्मैककारणम् ।
> मनोनुरूपं वाक्य च वाक्येन प्रस्फुट मनः ॥

वास्तव मे, मन के सहयोग से ही शब्दोच्चारण होता है। पाणिनि ने लिखा है कि जब मन शरीराग्नि को उत्तेजित करता है तो वह वायु को प्रेरित करती है; तदनन्तर वही वायु छाती मे प्रविष्ट होकर स्वर उत्पन्न करती है :

> मनःकायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ।
> मारुतस्तूरसि चरन् मन्द्रं जनयति स्वरम् ॥

वाणी-मन का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार शरीर की ७८ छोटी-बडी नसे जब एक-दूसरे से सम्बद्ध होती है तब जाकर एक शब्द मुख से निकलता है। ऐसी दशा मे अवश्य ही वाणी से कठ की ही नही, शरीर के एक बडे भाग की क्रिया-शक्ति व्यजित होती है। पर यह मानना पडेगा कि वाणी द्वारा ही किसीका सर्वस्व नही प्रकट होता। मनुष्य अन्यमनस्क भी हो सकता है। इसके अतिरिक्त चतुर लोग शब्दों मे, उनकी ध्वनि मे बनावट भी करते है। अत: व्यवहार-शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित चेस्टरफील्ड का मत है कि किसीसे मिलने पर उसके शब्दो पर ही ध्यान न दो, बल्कि उसकी आकृति से भी उसके मनोभावों को ताडो। इससे भी बुद्धिमत्तापूर्ण उपदेश राम का है। राम ने लका से लौटते समय हनुमान को पहले ही

भरत के पास यह कहकर भेज दिया था कि मुख के वर्ण से, दृष्टि से और बातो से भरत के मन का सारा रहस्य जानने का प्रयत्न करना :

ज्ञेया सर्वे च वृत्तान्ता भरतस्येङ्गितानि च ।
तत्त्वेन मुखवर्णेन दृष्ट्या व्याभाषितेन च ।। (रामायण)

अब इनमे से एक-एक पर विचार कीजिए और देखिए कि किस प्रकार इनके द्वारा मनुष्य अपने को व्यक्त करता है।

१. वाणी—अवसर के अनुकूल, सार्थक, स्पष्ट, सरल, हितकारी, तर्कसम्मत, विषयानुकूल शुद्ध शब्दावली से मनुष्य की श्रेष्ठता और बुद्धिमत्ता तथा सज्जनता प्रकट हो ही जाती है। इनके अतिरिक्त कौन किस विषय पर कितनी मौलिकता के साथ बोलता है, कैसे स्वर मे बोलता है और कहा तक अपने भावो की पुष्टि कर सकता है, इससे भी मनुष्य की गहराई का पता चलता है। शब्दो से किस प्रकार की विचार-धारा व्यक्त होती है और उसके अनुकूल कहा तक बोलनेवाले की आकृति मे साम्य रहता है, इससे भी मनुष्य की भीतरी सचाई का, बनावट का पता चलता है।

चतुर आदमी समयानुसार श्रोता के स्वभाव, परिस्थिति को ध्यान में रखकर मुख्य विषय को आगे रखकर बोलता है। मूर्ख का प्रधान लक्षण यह है कि सब भूलकर बेमौके बोलता है। जो सार्थक, सुबोध और सयत भाषा मे बोलता है, वह बुद्धिमान गिना जाता है। जो निरर्थक, अस्पष्ट और विशृ खल भाषा का व्यवहार करता है, वह प्रलापी, धूर्त, मूर्ख और अविवेकी माना जाता है। तर्कसम्मत वाणी का व्यवहार करनेवाला सज्जन, क्रियाकुशल, प्रतिभाशाली और शिष्ट होता है। तर्कहीन बोलनेवाला दभी, जडमति, असत्यवादी, छली और दुराग्रही होता है। जो सद्भावना लेकर बाते करता है वह किसी निर्णय पर शीघ्र पहुच जाता है। दुर्भावनावाले बात मे गांठ पर गांठ

बांधते चलते है।

बुद्धिमान पुरुप गभीर विषयो में और गभीर स्वर में और गभीर आकृति से बात करता है। सज्जन और सरस प्रकृति के लोग सामयिक विषयों पर मधुर स्वर मे और सरल आकृति से बात करते है। दम्भी और दुर्विनीत व्यक्ति अपने विषय में उत्तेजनात्मक स्वर मे, दूसरों के विषय मे कर्कश स्वर मे, अपनी आकृति को विकृत करके तब बोलता है। धूर्तो का विपय पर-निन्दा, स्वर बहुत दबा हुआ और चेहरा परम रहस्ममय होता है। विशेप विवरण आगे के लक्षणो से जानिए।

बुद्धिमान व्यक्ति एक-एक शब्द को तोलकर बोलता है। वह एक बार मे एक ही विपय पर बात करता है, जमकर बात करता है और कोमल शब्द किन्तु अकाट्य तर्क प्रस्तुत करता है। उसके विचारो मे क्रमबद्धता, स्वर मे दृढता और भावो मे गभीरता होती है। अनावश्यक विषयों की चर्चा मे वह प्राय. नही पड़ता और काम की बाते करता है। वह अपने मौलिक विचार आकर्षक ढग से व्यक्त करता है और एक ही बात को बार-बार नही घोटता। स्वय कुछ कहकर वह दूसरो को भी कुछ कहने का अवसर देता है। बातचीत के समय उसकी आकृति में घबराहट के चिह्न नहीं दिखलाई पडते क्योंकि उसमे आत्मविश्वास रहता है।

सज्जन व्यक्ति कम बोलता है, जो बोलता है विनम्रतापूर्वक बोलता है। बातचीत में वह पर-निन्दा, पर-स्त्री-चर्चा, आत्मप्रशसा और उपहासजनक विषयो से विरक्त रहता है। उसकी आकृति में सौम्यता रहती है। उसका स्वर गभीर किन्तु मृदु होता है। सज्जन की सज्जनता उसकी साधुवाणी से ही झलक उठती है।

मनस्वी मनुष्य की वाणी में गभीरता रहती है, किन्तु कर्कशता नही। वह ठनकती हुई निकलती है। मनस्वी व्यक्ति निश्चित विषयों

पर निश्चयात्मक बुद्धि से और ओजमयी भाषा में बोलता है। प्रायः वह भविष्य-सम्बन्धी किसी महत्त्वपूर्ण कार्य के विषय में बातचीत करता है। बोलते समय उसके मन का सारा तेज उसकी आकृति में रहता है। उसकी बातचीत और आकृति दोनों से स्वाभिमान टपकता है।

सरल स्वभाव का व्यक्ति प्रायः सामयिक विषयो की चर्चा करता है, हास्य-विनोद और व्यग्य के साथ बात करता है तथा सरल भाषा का व्यवहार करता है। वह लच्छेदार बोली कम पसन्द करता है।

रसिक स्वभाव का व्यक्ति सरल और काव्यमय भाषा मे प्रायः सरस विषयो पर बाते करता है, और जब बात करता है तो उसकी आकृति पर उसकी आन्तरिक मुग्धता, विह्वलता और भावुकता रहती है। उसके मुख से छलकती हुई वाणी निकलती है। वह प्रायः चुटकियां लेते हुए बाते करता है।

चतुर आदमी जिससे मिलता है पहले उसीके अनुकूल बाते करता है। कोई मनोरजक विषय छेडकर उसीको अधिक बोलने का अवसर देता है और स्वय उसकी बातो का समर्थन करता है। उसके विचारों को अच्छी तरह जानकर तब उन्हीका भाष्य करता है। इस प्रकार एक बार मे या कई बार में किसीको रिझाकर तब अवसर के अनुसार प्रयोजन की बात करता है।

धूर्त बडा बातूनी होता है: 'बहुवक्ता भवति धूर्तजनः' (कौटिल्य)। 'कही की ईंट कही का रोडा' लेकर वह भानुमती का कुनबा तैयार कर देता है। उसकी भाषा अतिरजित होती है। दृष्टान्त से भरी हुई, वादों से लदी हुई और विचारोत्तेजक वाणी द्वारा वह एक ही विषय पर कई तरह से बाते करता है। तर्क-वितर्क से वह घबराता है और श्रोता को किसी स्थल पर प्रभावित करके धारा-प्रवाह बोलने लगता है। कही पकड़ में आने पर मुख्य विषय से जान छुडाकर इधर-उधर की बाते

करता है। ऐसा व्यक्ति बातचीत में बहुत देर तक नही अड़ता। प्राय: वह अपनी ही बातो को खण्डित करता चलता है। वार्तालाप में वह चमत्कारपूर्ण घटनाओ का उल्लेख अवश्य करता है, और अपने अनुभवो की विशेष चर्चा करता है तथा दूसरो पर अपने कल्पित उपकारो का दिल खोलकर वर्णन करता है। वह ऐसी ही बाते करता है जिससे सुननेवाले उसको अपना शुभचिन्तक, सज्जनो का शिरोमणि और दुर्जनों का काल समझे। सभी बड़े कार्यों का श्रेय वह स्वय लेना चाहता है।

मूर्ख तो अपनी वाणी से तत्काल खुल जाते है। इसीलिए शास्त्रकारों ने मूर्खों को मौन रहने का उपदेश किया है। सर्वप्रथम तो मूर्ख अशुद्ध भाषा बोलता है और जो बोलता है उसको भी कर्कश स्वर मे। बोलते-बोलते वह बातो का क्रम भूल जाता है और किसी अन्य दिशा की ओर वह निकलता है। उससे कोई बात छेड़ दीजिए तो वह चुप हो जाता है या 'जी हा, जी हा' करने लगता है। बाते सुनते-सुनते 'तब, तब' या 'तब क्या हुआ' ही कहता है और समझता कुछ नही। प्राय वह दो-चार वाक्य स्वय बोलकर बार-बार श्रोता से पूछ लेता है—'क्या समझे?' और रह-रहकर भौचक्का हो जाता है, हकलाने लगता है या अकारण अपनी बात से गद्‌गद हो जाता है अथवा अट्टहास करने लगता है। अधिकतर एक ही विषय पर वह हमेशा बात करता है और बातो का कबध खडा करके उसीको नचाता है।

पीडित व्यक्ति के सम्बन्ध मे तुलसी की यह उक्ति ही पर्याप्त है :

आरत के हित रहत न चेतू।
पुनि पुनि कहत आपनी हेतू॥ (मानस)

चाटुकार आवश्यकता से अधिक विनीत और लच्छेदार वाणी बोलता है। प्राय वह अपना अस्तित्व मिटाकर बात करता है अर्थात्

स्वाभिमानगत होकर दूसरों की बनावटी प्रशसा करता है। वह सदा हां में हां मिलाता है; 'वहुत अच्छा', 'हमारी जान आपके लिए हाजिर है', 'हमारे रहते आपका बालबांका न हो सकेगा' आदि अनेक प्रकार की बनावटी शब्दमाला का व्यवहार करता है। प्रायः वह दबी जबान से ही बात करता है और शकल से खोया हुआ या आपकी सेवा के लिए उतावला-सा प्रतीत होता है। 'छोटे मुह बड़ी वात' की उक्ति को वह पद-पद पर चरितार्थ करता है।

विश्वासघाती की वातो मे चाटुकारिता होती है, साथ ही साथ आत्मविज्ञापन भी होता है। वह बार-बार शपथ खाता है, सत्य-भगवान की दुहाई देता है और अकारण अधिक स्नेह दिखाकर रहस्यमयी बाने सुनाता है और कहता जाता है कि किसीसे कहिएगा नही, हम आपसे ही कह रहे है। घुमा-फिराकर वह आपका भेद जानने के लिए तरह-तरह की वाते करता है। प्राय वह धीरे-धीरे आश्चर्य प्रकट करता हुआ और सवेदना प्रकट करता हुआ बात करता है। बात की लम्बी-लम्बी भुजाए फैलाकर वह दूसरों के दिल टटोलता है।

वचनवीर वडी लम्वी-चौडी बाते करता है। ऐसे आदमी को गप्पी कहते है। उसकी बातों का अन्त नही दिखाई देता। 'हमने यह किया, हमने वह किया' के अतिरिक्त वह और कुछ बहुत कम जानता है। अपने किस्से खतम हो जाते है तो अपने बाप-दादों के मनगढन्त किस्से सुनाता है। वह भी खतम हो जाते है तो राजा बीरबल आदि के चुटकुले ही सुनाता है। वात-बात मे वह शूरवीरता दिखलाता है, गरजता है और उफनता है। धमकिया देने का वह आदी होता है, पर उसको ज़रा-सा डाट दीजिए तो पिछड़ जाता है और बाते बनाकर कहता है कि मेरा मतलब यह नही, यह था। काम की बात वह एक भी नहीं कर सकता, क्योकि जो बहुत बोलता है उसकी विचारशक्ति

क्षीण होती है और उसको किसी बात पर मनन करने का कभी अव-काश नही मिलता।

निर्बल व्यक्ति भी वहुत बक-बक करता है। वृद्धावस्था में भी आदमी वहुत इसलिए वोलता है कि उसवी अन्य सभी इन्द्रियां अशक्त हो जाती है, इसलिए वह वाणी-बल के सहारे ही अपनी पूर्वशक्ति को विज्ञापित करता है और अपनी तात्कालिक उपयोगिता को सिद्ध करने की स्वाभाविक चेष्टा करता है। जो वहुत वोलता है, वह अवश्य भीरु, अस्थिर, अशक्त और अकर्मण्य होता है। क्रियावान प्राणी सदैव मितभापी होगे।

नीच का मुह तरकश की तरह वचन-वाणो से भरा रहता है। नीतिकारो ने उसकी तुलना साप के बिल से की है। नीच व्यक्ति दुर्मुख, गला फाडकर वोलनेवाला, असहनशील और कटुभाषी होता है। उसकी काक-वृत्ति नही छिपती। वह पर-निन्दा को अपनी बात-चीत का विपय वनाता है। अन्य प्रकार की बातो मे किकर्तव्यविमूढ हो जाता है। प्राय' वह उलझानेवाली बाते ही करता है और अधिक देर तक प्रलाप करता है। अपशब्द उसको कण्ठस्थ रहते हैं। उपहास करने मे वह कृतबुद्धि होता है। जहा उसका स्वार्थ होता है वहां वह बड़ा मधुरभाषी भी वन जाता है: 'व्याधा मृगवध कर्तु सदा गायन्ति सुस्व-रम्' (व्यास)—हिरन का शिकार करते समय वहेलिया बडे मीठे स्वर मे गाता है।

२. व्यवहार—वातचीत से भी अधिक मनुष्य अपने व्यवहार से अपने को व्यक्त करता है। सज्जन पुरुप प्रत्येक परिस्थिति मे मर्यादा का पालन करता हुआ देखा जाता है, और दुर्जन प्राय मर्यादा का उल्लघन कर देता है। सभ्य मनुष्य छोटी से छोटी बात मे भी शिष्टा-चार, शील तथा सौजन्य का ध्यान रखता है। असभ्य व्यक्ति के सम्बन्ध

मे इन्ही शब्दो के आदि में 'अ' जोडकर समझ लीजिए।

३. मुख-मुद्रा और अग-चेष्टा—जैसाकि हम कह चुके है, मनुष्य की आकृति मे उसके मनोभाव तत्काल अकित हो जाते है। वाणी-व्यवहार मे आसानी से बनावट हो सकती है, पर आकृति मे भाव-परिवर्तन करना सहज नही होता।

भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यक्तियो की स्वाभाविक चेष्टाए किस प्रकार की होती है, इसपर सक्षेप मे कुछ जान लीजिए।

स्थिर स्वभाव का व्यक्ति प्रत्येक परिस्थिति मे स्थिर रहता है। परिस्थितियो और बातचीत के झोके से वह कम हिलता-डुलता है। विपरीत परिस्थिति मे वह और भी दृढ हो जाता है। उसकी इन्द्रियो मे किसी प्रकार की विकलता और आकृति मे तनिक भी विवर्णता दिखलाई नहीं पड़ती। गीता मे कहा भी है कि जिसकी इन्द्रिया उसके वश मे है, उसकी बुद्धि स्थिर है: 'वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।' धैर्यवान और बुद्धिमान सदा स्थिर ही मिलेगा। ऐसा व्यक्ति पुरुषार्थी, समाज का रक्षक, सज्जनो का पालक और परम विश्वासपात्र होता है।

अस्थिर चित्त का व्यक्ति अनेक रग बदलता है, अङ्ग-अङ्ग से छटपटाता रहता है और तरह-तरह की शारीरिक चेष्टाए दिखलाता है। उसकी आखो पर दृष्टि डालिए तो आखे अस्थिर दिखलाई पड़ेगी। साधारण बातो से कभी उसका चेहरा दमक उठेगा, कभी सूख जाएगा, कभी सफेद पड़ जाएगा। प्रायः बातचीत करते समय उसके पैर मशीन पर काम करनेवाले दर्जी के पैर की तरह हिलने लगते है, हाथ बार-बार मुह पर चले जाते है, सामने यदि मेज हो तो वह उसकी चीजो को उलटने लगता है या दात से अपने नाखून काटने लगता है।

अपराधी आदमी की आंखे झुकी रहती है। आखे नीची करके

वह नीचे ही नीचे इधर-उधर देखता है, पर सामने नही देखता। वह आख से आख मिलाकर बात नहीं कर सकता। प्रायः हरएक बात दबी जवान से करता है। उसको कही बैठने मे परेशानी-सी लगती है। उसका मुंह कुछ मैला-सा लगता है, कान लाल और चेहरा शैतान जैसा। उसकी आकृति मे विशेष मलिनता रहती है और मस्तिष्क खिचा हुआ-सा। उसके मन में पकडे जाने का भय सदा रहता है। इसलिए वह दूर पर होती हुई बातो को भी कान लगाकर सुनता है और एक-एक आदमी को भेदभरी दृष्टि से देखता है। उसके हाथ-पैर प्रायः कांपते है।

अहकारी व्यक्ति दाये-बायें बहुत घूमकर देखता है, सामने कम। उसकी आखे चढी ही मिलती है। छाती आवश्यकता से अधिक तनी हुई और भौहे वक्र रहती हैं। प्राय' वह हाथ पटक-पटककर बाते करता है। बात-बात में उसके अग फड़कते रहते है, गर्दन उचकती है और मस्तक रेखाकित हो जाता है। उसके दातो की पक्ति एक-दूसरे पर बैठ जाती है और वह गहरी सास लेता है। अहकारी और क्रोधी हाथ-पैर सब पटकने के बाद लपकता हुआ-सा विशेष चचल दिखलाई पडता है अथवा विवश होने पर अपना ही सिर पीटने लगता है। वह किसी सभ्य व्यक्ति से मिलने जाएगा तो कुर्सी को खीचकर भडभडाकर बैठेगा और चलते समय मित्र से भी हाथ मिलाते समय उसको इतने जोर से झटकेगा कि उसका अङ्ग-अङ्ग झटक उठेगा।

भयभीत आदमी हक्का-बक्का-सा रहता है और उसके रोम-रोम हिलते हुए दिखाई देते है। शास्त्र मे लिखा है कि जिसका मन भय-सत्रस्त रहता है, उसके हाथ-पैर आदि निश्चेष्ट हो जाते है, मुख से वचन नही निकलते और शरीर मे कम्पन अधिक होता है :

भयसंत्रस्तमनसां हस्तपादादयोऽक्रियाः ।
प्रवर्त्तते न वाणी च वेपथुश्चाधिको भवेत् ।।

वह रह-रहकर चौकता है, बिना परिश्रम के भी पसीने से भीगा रहता है। प्राय. वह बातो के बीच में या तो चुप हो जाता है या हक्-लाने लगता है। उसके चेहरे का रग तो बिलकुल उड ही जाता है, शरीर के अङ्ग सिमटने लगते हैं, आंखे निस्तेज हो जाती है, बाल या तो कांपते है या खडे हो जाते है। आकृति से वह पिघलते हुए बर्फ जैसा लगता है। हरएक चीज को वह आंखे फाड-फाड़कर देखता है। उसका दिल धडकता है, आख फडकती है और दृष्टि भडकती है।

जिसका हृदय पीडित होता है उसकी क्रियाए शिथिल होती है, मुख-मण्डल मुरझाया रहता है, हाथ-पैर भी निश्चेष्ट-से रहते है और वह जिधर भी देखता है, झुकी आख से, पर एकटक देखता है। उसके स्वर मे भर्राहट रहती है और चेहरे पर वल पड जाता है। उसकी प्रत्येक क्रिया मे उद्विग्नता रहती है।

सतुष्ट एव स्वस्थ व्यक्ति का अङ्ग-अङ्ग मुस्कराता है। उसका प्रत्येक अङ्ग निकला हुआ और विशेष सचेत रहता है। उसमें स्फूर्ति दिखलाई पडती है, चेहरे पर शान्ति दिखलाई पड़ती है। प्राय वह अपने अङ्गो का सकोचन कम करता है।

घबराया हुआ या किकर्तव्यविमूढ व्यक्ति बार-बार जम्हाई लेता है या छीकता है, बात करते-करते नाक खोदने लगता है या सिर खुजलाने लगता है और पैर की उगलियों से ज़मीन को खरोचने लगता है। उसके कान उठ जाते है, आंखे आकाश-विहार करने लगती हैं और अङ्ग-प्रत्यग कभी आगे, कभी पीछे को चलते है। मुह तो खुला हुआ रहता ही है।

उन्मादी मनुष्य यो तो उछलकूद मचाता ही है, पर रात्रि मे

और विशेष कर चांदनी रात मे विशेष चेष्टाए करता है। यह एक परीक्षित वैज्ञानिक सत्य है कि चन्द्र-किरणो से मस्तिष्क-रोगी का उन्माद बढ जाता है। पागलखानो मे देखा गया है कि सन्ध्या तक पागल लोग कुछ ठीक रहते हैं, पर चन्द्रोदय के साथ ही उनकी उन्माद-तरगे सागर-लहरो की तरह उमड़ती हे। पूर्णिमा की रात्रि में तो पागल लोग उन्मत्त सागर की तरह उछलते-कूदते और नाचते है। अतएव किसी मानसोन्मादी, भावोन्मादी या मेधोन्मादी की परीक्षा रात्रि में अच्छी हो सकती है। रात्रि में साधारण मनुष्य की भावनाए भी तीव्र हो जाती हैं।

पुरुषार्थी और आत्मविश्वासी व्यक्ति अचंचल रहता है और आदि से अन्त तक उसके मुख का वर्ण विकृत नही होता । वह प्रभावित होता है, सहमत होता हे, पर किसीसे भीत होकर कभी आत्मसमर्पण के भाव नही दिखलाता। निकम्मा आदमी तो अपना तन-मन दूसरों के हाथ वेच देता है। वह दूसरो के हसने से हसता है, उनके रोने से रोता है। मल-मूत्र विसर्जन के अतिरिक्त उसकी कोई शारीरिक क्रिया अपने मन से नही होती। उन्मत्त व्यक्ति वार-वार अगड़ाई और जम्हाई लेता है। एक वैज्ञानिक ने लिखा है कि वार-वार अगडाई लेना और जम्हाना पागलपन का लक्षण हे।

कूप-मण्डूक या मिथ्याभिमानी वडा भयकर होता है। वह किसीकी नही सुनता। अपने कुल और अपनी विद्या के अहकार को ही वह वाणी, व्यवहार और आवरण से प्रकट करता हे। जहां उसके मिथ्याभिमान का समर्थन होता है वहा मन्त्रमुग्ध हो जाता है; जहां कोई सामाजिक प्रसंग आता है, वह नाक-भौ सिकोड़ता और मूढवत् या क्रूरवत् आचरण करता है। ऐसा व्यक्ति अपनी अहमन्यता पर आघात होते देखकर कोई भी दुष्ट आचरण कर सकता है। वह अपने को समाज

के प्रति उत्तरदायी नहीं समझता, उलटे सारे समाज को अपने प्रति उत्तरदायी मानता है, क्योंकि उसके अनुसार जो वह समझता है, वहा उसको समझना चाहिए; जो वह करता है, वही सबका कर्तव्य होना चाहिए और जिन वस्तुओं का वह परित्याग करता है, सबको उनका परित्याग करना चाहिए। इस प्रकार के संकीर्ण विचारोंवाले व्यक्ति अपने घर मे परम सन्तुष्ट और चैतन्य प्रतीत होते है, किन्तु बाहरी जगत् में आते ही वे सनकी जैसे और शकल से ही डूबते-उतराते-से लगते है। वे प्राय: दूसरों के साथ दुर्व्यवहार कर बैठते है, क्योंकि उन्हे सामाजिक शिष्टाचार और लोक-व्यवहार से स्वाभाविक अरुचि होती है। ऐसे लोगों के लिए अमरीका की एक सुप्रसिद्ध पत्रिका[१] में एक बड़ा मनोरंजक और उपयोगी लेख है। उसका एक अश इस प्रसग में उल्लेखनीय है। लेखक अलेन कारपेण्टर ने लिखा है कि वृद्धावस्था के कारण मस्तिष्क में जो खराबियां स्वभावत: उत्पन्न हो जाती हैं, उनको छोड़कर कूप-मण्डूकता मस्तिष्क में बीमारियों की सबसे अधिक व्यापक है। इस रोग से पीड़ित लोग अपनी एक छोटी-सी दुनिया बनाकर उसीमे रहते है। जनसाधारण मे जो बाहरी प्रतिक्रियाए स्वभावत: होती हैं, वे उनमें नही होती। जगद्गति से वे न तो प्रभावित होते है और न उसको समझते ही है।[२]

---

१. Science Digest, November, 1946.

२. Excluding mental diseases incidental to old age, Schizophrenia (संसार के प्रति पूर्ण विरक्ति किन्तु अपने प्रति पूर्ण अनुरक्ति का मानसिक रोग) is the most prevalent of all diseases of the mind. Sufferers from it exist in a small world of their own which they themselves have created Influences to which normal people react have become deadened and meaningless to the Schizophrenia.

ऐसा व्यक्ति विचारों से, स्वभाव से, आकृति से, सभी बातो से सकुचित प्रतीत होता है। वह सकुचित स्थान में रहना भी पसन्द करता है और डरता रहता है कि कोई उसके हवाईकिले पर हमला न कर दे। यदि कोई हमला करता है तो वह उत्तेजित होकर आक्रामक का वध भी कर सकता है, क्योकि उसको दूसरो की परवाह नही रहती। वह अपने को सत्ययुग के आदमियो का वशधर समझता है और शेप लोगो को कलियुगी। 'ज्यों तेली के बैल को घर ही कोस पचास' की उक्ति उसके विपय में पूर्णतया चरितार्थ होती है। किसी तेली के बैल को देखकर ऐसे व्यक्ति के रूप को उसीके अनुरूप समझ लीजिए।

उद्योगी, विजयाकाक्षी, स्वस्थचित्त और बातचीत-व्यवहार में कुशल मनुष्य प्राय. भविष्य के सम्बन्ध मे विचार-विनिमय करते है। उनके मुख पर विषाद, निराशा या किसी प्रकार की चिन्ता की छाप नही मिलती। प्रायः वे अपने दाहिने अगों को अधिक सचालित करते है। इसका एक रहस्य है। हमारे मस्तिष्क का बायां भाग शरीर के दाहिने भाग का सचालक होता है और उसका दाहिना भाग शरीर के बाये भाग का। दूसरे शब्दों मे, शरीर के दाहिने अग से बाये मस्तिष्क का सम्बन्ध रहता है और बाये से दाहिनी ओर के मस्तिष्क-खड का। यही कारण है कि जब किसीको वाम अग का पक्षाघात होता है तो उसके दक्षिण पार्श्व का मस्तिष्क शिथिल या विकृत हो जाता है। विचार-गर्भित वाणी के उत्पादक, उत्तेजक व संचालक ततु मस्तिष्क के वाम भाग मे रहते है, ऐसा शरीर-शास्त्री डॉक्टरो का मत है। मस्तिष्क में जब नये विचारो की सृष्टि होती है और वे प्रकट होना चाहते हैं तो दाहिने अग विशेष सक्रिय होते है। अधिकारी पुरुष जब कोई विचार निश्चित करके आज्ञा देता है तो दाहिने हाथ की तर्जनी

स्वभावत. उठ जाती है। विचारवान व्यक्ति किसी बात को समझाते समय दाहिनी तर्जनी इगित करता है; लिखनेवाले अपने विचार दाहिने हाथ से व्यक्त करते है, व्याख्यान देनेवाले या अच्छे बोलनेवाले दाहिने हाथ को उठा-उठाकर विचारो को सकेत करते है या मस्तिष्क-क्रिया को सतुलित करते है। कोई उत्तेजनात्मक विचार आते ही दाहिना अग अपने-आप फड़कने लगता है। स्त्रियों का बायां अग इसलिए फड़कता है कि उनमे प्राय: भावो की लहरे ही उठती है अथवा आशका या किसी चित्तस्थित चिन्ता की। बाये अग प्राय: उन स्वभावों के अनुसार कार्य करते है जो दाहिनी ओर के मस्तिष्क मे बैठे रहते है। तत्काल निश्चय करने का काम वाया मस्तिष्क करता है। प्राचीन मानस-शास्त्री इस रहस्य को जानते थे। दाहिने अग के फड़कने पर शुभ कार्य करने का शकुन वे इसलिए वताते थे कि उससे प्रकट हो जाता था कि मनुष्य की बुद्धि उक्त कार्य के लिए दृढ हो चुकी है। रामायण मे जब शूर्पणखा ने रावण को राम पर आक्रमण के लिए उत्तेजित किया तो उसने उससे यही कहा था कि जय-प्राप्ति का निश्चय करके शीघ्र अपने दाहिने पैर को उठाओ : 'शीघ्रमुद्ध्रियता पादो जयार्थमिह दक्षिण.।' जिसका दक्षिण अग निश्चेष्ट हो उसे हत-बुद्धि या लकीर का फकीर मानना चाहिए। साधारण व्यवहार मे भी जिसको आप अपने से वड़ा समझते है, उसको दाहिनी ओर आसन देते है। अपनी पत्नी के स्वामी होने के स्वाभाविक अभिमानवश आप उसको बाईं ओर स्थान देते है। यदि कोई स्त्री आपकी पत्नी या प्रेमिका न हो तो आप उसके सम्मान के विचार से उसको अपनी दाहिनी ओर ही स्थान देंगे।

कर्मशीलता के विचार के साथ-साथ दाहिना अङ्ग अपने-आप चल पड़ता है, इसको एक अन्य प्रमाण से समझिए। लोग तलवार को

दाहिनी कमर मे नही, वाई ओर लटकाते है। यह क्यो ? स्पष्ट कारण यही है कि वे समझते हैं कि आक्रमण या आत्मरक्षा का विचार आते ही दाहिना हाथ ही पहले चलेगा और उसके लिए हथियार को सुगम स्थान पर रखना चाहिए। वाये हाथ पर इतना विश्वास नही रहता, नही तो लोग दाहिनी ओर भी एक तलवार लटका लेते।

इसी प्रकार के बहुत-से लक्षणों से तरह-तरह के मनुष्य के व्यक्तित्व का निरूपण हो सकता है। सबसे सरल रीति यह है कि कुछ प्रकार के मनुष्यो की आकृति आदि का अध्ययन कर लीजिए और उनके रूप को मन मे रख लीजिए। इसके बाद जिसकी परीक्षा करनी हो उसके आचार-व्यवहार, अग-चेष्टा आदि की तुलना उन रूपो से कर लीजिए। उदाहरणार्थ, बुद्ध या गाधी की शात, गभीर और सौम्य तथा सतेज मुख-मुद्रा को मन मे रखकर किसी अन्य में वैसी मुख-मुद्रा को पाकर आप समझ सकते है कि वह वैसे ही आचरण का व्यक्ति होगा, जैसे गाधी या वुद्ध थे। किसीका मनस्ताप किन लक्षणो से व्यक्त होता है, इसके लिए किसी विधवा या किसी पुत्र-वचिता स्त्री का रूप मन मे सोच लीजिए। किसीमे भी उन लक्षणो को देखकर आप उसके हृदय की वेदना का अनुमान कर सकते है।

यद्यपि वाणी, व्यवहार और आकृति आदि से मानव के आन्तरिक रहस्य का बहुत कुछ पता चल जाता है, पर इन सवसे धोखा भी हो सकता है। सिनेमा के पात्र या सी० आई० डी० वाले नाना रूप बना ही लेते हैं। अतएव एक ही बार मे अथवा एक ही परिस्थिति मे किसी-को देखकर सहसा कोई विचार न निर्धारित करना चाहिए। साथ ही अन्य कुछ साधनो से भी मनुष्य की परीक्षा करनी चाहिए।

इन बातों को भी ध्यान में रखना चाहिए

१. गृह-दशा—ग्रह-दशा का प्रभाव मनुष्य पर पडे या न पड़े,

परन्तु गृह-दशा का अवश्य पड़ता है। जो कुलीन होता है, वह किसी न किसी अंश तक गृह-मर्यादा का पालन करता है। उसे अपने पूर्वजो के मान का ध्यान रहता है। इसके अतिरिक्त जिसके घर की दशा अच्छी होती है, अर्थात् जो सुखी गृहस्थ होता है वह बाहर भी अपने उत्तरदायित्व को सम्हालता है और दुस्साहस नही करता। जिसके घर मे अशाति रहती है, वह उच्छृंखल हो ही जाता है। जिसके घर में आर्थिक सकट रहता है, वह सामाजिक जीवन मे भी छोटा बनकर, लाचार होकर रहता है या छल-कपट अथवा चोरी करने लगता है। जो स्त्री से सतुष्ट नही रहता वह वैरागी या दुराचारी, क्रूर अथवा नपुसक हो जाता है।

मनुष्य को समझने के लिए उसके पूर्वजों के, मुख्यतः माता-पिता के जीवन की थोड़ी-बहुत जानकारी आवश्यक होती है। सयमी माता-पिता की सतान प्राय· सयमी होती है। यह भी देखा गया है कि जिस वंश मे एक से अधिक पूर्वज दीर्घायु हुए होते है, उस वश में आगे भी लोग प्रायः लम्बी आयुवाले होते है। सुश्रुत ने इसका उल्लेख भी 'सूत्र-स्थान खंड' (सुश्रुत-सहिता) में किया है। और किसीका प्रभाव पडे या न पड़े, माता का प्रभाव संतान पर अवश्य पड़ता है। माता के मिथ्याहाराचार से सन्तान बहुत-सी व्याधियां जन्म से लेकर आती है। माता की मनोदशा का तो पूर्ण प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पड़ता है। एक सुप्रसिद्ध डॉक्टर ने इसपर अनुसन्धान करके इसको प्रमाणित किया है। उसने कई घटनाओं का उल्लेख किया है। एक घटना यह है—एक किसान के पास एक पालतू सूअर था। वह बीमार हो गया। किसान ने उसके कान के पास चीरकर उसका कुछ खून निकाल दिया और वह ठीक हो गया। किसान की गर्भिणी पत्नी के मन में वह क्रूर कर्म कई दिनो तक ध्यानस्थ रहा। शिशु के उत्पन्न होने पर उसके

कान की पाली खण्डित थी। इसी तरह के और भी सच्चे वृत्तान्त हैं जिनसे ज्ञात होता है कि मानसिक आघात होने से गर्भ-विकृति हो जाती है। गर्भिणी की कामनाओं का पूरा प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पड़ता है। दुराचारिणी की सन्तान सदाचरिणी होती हुई कम देखी जाती है। कारण यही है कि सन्तान के रक्त की एक-एक बूंद में मातृअंश रहता है। चीनी से जो वस्तु बनेगी उसमे चीनी के तत्त्व अवश्य रहेगे। जन्म के बाद माता की योग्यता और बुद्धि के अनुसार ही बालक का विकास होता है। यदि मां भीरु होती है तो लडके को सदा उत्साहहीन बनाती है। यदि वह तेजस्विनी होती है तो वही करती है जो अंजना ने हनुमान के लिए, विदुला ने संजय के लिए किया था। आधुनिक उद्दण्ड वीरों में नेपोलियन, हिटलर, मुसोलिनी और स्टालिन आदि अपने साहसी स्वभाव के लिए केवल अपनी माताओ के ऋणी है। यह निश्चित है कि बालक के स्वभाव पर उसकी माता का और बुद्धि पर पिता का प्रभाव पड़ता है—गर्भावस्था में और जन्म के बाद भी। वाल्मीकि ने लिखा भी है कि मनुष्य पिता का अनुकरण नही करता, अर्थात् माता का ही करता है : 'न पित्र्यमनुवर्त्तन्ते मातृक द्विपदा इति।' पिता का प्रभाव न पड़े, ऐसी बात नहीं है। पिता का वीर्य दूषित होने से सन्तान शरीर से सदोष तो हो ही जाती है। गर्भ में प्राण तो पिता का ही जाता है : 'आत्मा वै जायते पुत्रः।' शारीरिक, मानसिक तेज पुत्र को पिता से ही मिलता है। जन्म के बाद पिता का व्यवहार पुत्र के चरित्र-विकास पर प्रभाव डालता है। यदि पिता बडा क्रूर और आतकवादी होगा तो बच्चे का उत्साह ढीला होते-होते क्रूरता-भीरुता उसके स्वभाव में समा जाएगी। जो बच्चे बचपन में सत्रस्त रहते है, वे आगे चलकर हकलाने लगते है, उनकी बुद्धि कुठित हो जाती है और उनका आत्म-विश्वास नष्ट हो जाता है। किसी भी कमजोर आदमी को डांटकर

देखिए, अत्याचार का भय दिखलाइए, उसमें ये लक्षण प्रकट होगे। बार-बार जिसका हृदय धडकाया जाएगा, वह आगे चलकर धैर्यहीन तो हो ही जाएगा।

घरेलू जीवन का ऐसा ही प्रभाव पड़ता है। मनुष्य के स्वभाव की रूपरेखा बचपन मे बनती है। जो धारणाए उस समय मन मे बैठती है वही आगे भी पनपती है। उस समय की सगति का भी आगे तक प्रभाव बना रहता है। सबको जानकर तब किसी की तत्कालीन परिस्थिति देखिए। उसकी जन्मगत विशेषताए उसके आगे की विशेषताओ पर प्रभाव डालती है।

गृह-दशा की जानकारी के लिए व्यक्ति-विशेष की स्त्री के सम्बन्ध मे या उसके दाम्पत्य-जीवन के सम्बन्ध मे भी जाच करनी चाहिए। यदि पत्नी अधिक धनी घर की होगी, बहुत शौकीन या चचला होगी तो पति के जीवन पर इन सबका प्रभाव पडेगा। वह परेशान और चिन्तित ही व्यक्त होगा। यदि परस्पर कलह रहता होगा तो पुरुष बाहरी व्यवहार मे भी रूक्ष स्वभाव का प्रतीत होगा। इसी प्रकार गार्हस्थ्य जीवन की सफलता-विफलता का भी मनुष्य के स्वभाव और आचरण पर प्रभाव पडता है। शील-शिष्टाचार आदि कुलीनता के अग माने जाते है तथा दुर्विनीतता, उद्दण्डता, असभ्यता आदि को अकुलीनता के अन्तर्गत माना जाता है। अदालतो द्वारा दण्डित अपराधियो मे से ८० प्रतिशत ऐसे होते है जो गृह-जीवन की भग्नता के कारण अपराधी बन जाते हैं।

✓ २. आर्थिक दशा—किसीको समझने के लिए उसकी आर्थिक स्थिति को भी देखना चाहिए। कोई स्वभाव से परम उदार हो सकता है पर आर्थिक विवशता के कारण उसको प्रत्यक्ष नही कर सकता। यदि बहुत परिश्रम करके भी कोई निर्धन ही बना रहता है तो उसको

असमर्थ, अयोग्य मानने के पहले हमें यह भी देखना चाहिए कि कहीं वह पूर्वजो के ऋण तो नही पटा रहा है अथवा उसके आश्रितों की सख्या तो अधिक नही है। यह सभव है कि कोई स्वभाव से स्वाभिमानी हो, पर आर्थिक दशा खराव होने से वह सवके सामने झुकने को विवश हो गया हो। यह भी सभव है कि कोई स्वभाव से महाक्रूर हो, पर धनाभाव ने उसके जोश को दवा रखा हो। आर्थिक दशा बहुत प्रकार से मनुष्य के चरित्र को वनाती-विगाडती है। ऋण लेनेवाले का आत्मसम्मान तो योही समाप्त हो जाता है ; और ऋण देनेवाला प्राय: सद्व्यवहार भूल जाता है। लेन-देन से भावो मे कैसा विचित्र परिवर्तन हो जाता है इसपर 'गुलिस्ता' मे एक छोटी-सी कथा है। एक महात्मा के पास भक्तो का वडा जमाव होता था। दिन-भर लोग दर्शन के लिए उनके पास आते रहते थे इसलिए उनको पूजा-पाठ का समय नही मिलता था। एक दिन उन्होने एक व्यवहारज्ञ से अपनी निवृत्ति का उपाय पूछा। उसने कहा—जो तुमसे मिलने आते है उनमे मे कुछ को तुम द्रव्य ऋण के तौर पर दे दो और उनमे से जो समृद्ध जान पडे उससे ऋण-याचना करो। महात्मा ने ऐसा ही किया और परिणाम यह हुआ कि जो ऋण ले गए वे इस विचार से नही आए कि कही महात्मा उसको वापस न मागे और शेप लोग इस विचार से नही आए कि कही फिर कुछ मांग न वैठे।

✓ ३. सगति, व्यवसाय—सगति से मनुष्य की अच्छी परीक्षा होती है। एक यूरोपीय विद्वान ने लिखा है कि यदि मुझे यह मालूम हो जाए कि तुम किसके साथ रहते हो, तो मै वता सकता हू कि तुम कौन हो अर्थात् किस प्रकार के आदमी हो।'

१. Tell me with whom thou art found and I will tell thee who thou art —Goethe

व्यवसाय भी एक अंश तक व्यक्तित्व को प्रकट करता है। यदि कोई स्वतन्त्र और स्थायी व्यवसाय करता है तो वह अधिक स्वाभिमानी, प्रबन्ध-कुशल और स्थिरमति होता है। सेवा-व्यवसाय करनेवाले प्रबन्ध-कुशल हो सकते है पर उतने स्वतन्त्र और आत्मविश्वासी नहीं। रोज कुआ खोदकर रोज़ पानी पीनेवाले शान्त और स्थिर बुद्धि के हो ही नही सकते। द्यूत का व्यवसाय करनेवाला विश्वासपात्र और सत्यवक्ता कहां से होगा ?

यदि कोई किसीका नौकर है तो उसके मालिक के व्यक्तित्व से उसका पता चल जाएगा। चर्चिल का नौकर महात्मा गांधी का अनुयायी कैसे होगा ? क्रोधी का चरण-सेवक स्वाभिमानी नही हो सकता। वेश्या का नौकर दलाल ही होता है। कायर का नौकर गुण्डा भले ही हो, महावीर नहीं होता। इसी प्रकार सेवक से स्वामी का पता चल जाता है। चोर का स्वामी या तो स्वय चोर होगा या मूढ़; डाकू का सरदार महाडाकू होता है। हनुमान का स्वामी हनुमान से भी बली और प्रभावशाली था।

✓ ४. वेश-भूषा—वेश-भूषा को भी देखिए। सरल स्वभाव के आदमी का पहनावा भी सादा होता है। बना हुआ आदमी बडा आडम्बर फैलाता है। उद्यमी का पहनावा चुस्त होता है और बुद्धि व्यवसाय करनेवालों का ढीला-ढाला। अस्त-व्यस्त चित्तवाले का वेश भी अस्त-व्यस्त होता है। हलके आदमियो की वेश-भूषा बहुत ढीली-ढाली, सजावट से भरी हुई और बारीक से बारीक कपड़ों की बनी होती है। जिसके स्वभाव में कृत्रिमता नही होती वह मोटा कपड़ा पहनता है। भडकीली तबियतवाले बड़े भड़कीले कपड़े पहनते है।

वेश-भूषा का इतना अधिक प्रभाव सामाजिक जीवन पर पड़ता है कि प्रायः साधारण लोग उसीसे प्रभावित होते है। पुलिस के

कान्स्टेबल का व्यक्तित्व उसके चेहरे से नहीं बल्कि उसकी वर्दी से प्रकट होता है। अग्रेजी राज्य में पतलून पहनना ही बडा आदमी होने का प्रमाण था। अब लोग खद्दर की वेश-भूषा को देशप्रेमी होने का एक चिह्न मानते है और बहुत-से लोग इसका अनुचित लाभ भी लेते है। देहातो में वडी ऊची पगड़ी वाधकर अब भी महामूर्ख ब्राह्मण पण्डित बनकर अपने को पुजवाते है। इस प्रकार बनावटी वेश-भूपा से लोग अपने व्यक्तित्व को वढा-चढाकर दिखाते है। यह सब देखते हुए केवल पहनावे से किसीके रूप को पहचानने मे वडा भ्रम हो सकता है। तो भी वेश-भूपा से कुछ न कुछ वास्तविकता का पता चल जाता है, यह मानना पडेगा।

✓ ५. विद्या-बल—मनुष्य का सस्कार विद्योपार्जन से भी होता है, इसको कौन न मानेगा। पढा-लिखा आदमी चाहे स्वभाव का अच्छा हो या न हो, बुद्धिमान क्रियावान हो या न हो, विद्वान तो होगा ही। मूर्खो की अपेक्षा उसकी सगति अधिक लाभदायक होगी। उसपर शासन करना कठिन होगा। उसमें स्वाभिमान किसी न किसी मात्रा में अवश्य होगा। अतएव किसीके आत्मरूप पर विचार करते समय यह भी देखना चाहिए कि उसमे कितना और किस प्रकार का विद्या-बल है, कितने विपयो में उसका प्रवेश है और उन विपयो का उसको कितना अभ्यास है। यह भी देखना चाहिए कि उसके मस्तिष्क मे उर्वरा-शक्ति भी है या रट-रटाकर केवल उपाधि ही प्राप्त कर ली है। यह भी देखना चाहिए कि लौकिक-व्यवहार मे वह उस विद्या का सदुपयोग करता है या दुरुपयोग। मुख्य रूप से यह देखना चाहिए कि उसको विद्या का अजीर्ण तो नही है।

✓ ६. शिष्टाचार—शिष्टाचार भी विशेप रूप से देखने की वस्तु है। शील, स्नेह, सौजन्य, सत्कार आदि केवल वाणी से ही नहीं प्रकट

होते हैं—वे आंखो से, आकृति से और व्यवहार से आकर्षक बनते है। शिष्टाचार-पालन से मनुष्य के बड़प्पन का बोध होता है। मूर्ख लोग अपनी अशिष्टता के विज्ञापन से ही पकड़ में आते है। किस अवसर पर कैसा व्यवहार करना चाहिए, इनसे अनभिज्ञ होने के कारण वे प्राय. अशिष्ट बन जाते है। एक रूसी कहावत है, जिसका अर्थ यह है कि गधे को यदि मेज के पास कुर्सी पर बैठा दीजिए तो वह कूदकर मेज पर बैठ जाएगा और सोचेगा कि मनुष्य लोग मूर्ख है जो इतना बडा सपाट मैदान छोडकर सकीर्ण कुर्सियो में समाए हुए है।

✓ ७ खान-पान—कौन किस तरह का खाना खाता है, कैसे खाता है, इससे भी आदमी की जाच होती है। खाने का असर मस्तिष्क और मानव-चरित्र पर पडता है, इसे हम लिख चुके है। अधिक अनुपयुक्त प्रकार का खाना खानेवाला भी कैसा हो जाता है, यह भी लिखा जा चुका है। अधिक खानेवाला मूर्ख होता ही है। भोजन कोई किस प्रकार खाता है, इससे भी उसकी बुद्धि-स्थिति का पता चलता है। स्थिर स्वभाव का व्यक्ति मुह बन्द करके अच्छी तरह चबाकर खाता है और खाते समय उसके मुह से चबाने की ध्वनि नही आती। उसकी उगलियां भी ऊपर तक गन्दी नही होती। चचल स्वभाव का व्यक्ति बहुत जल्दी खाता है, मुह खोलकर सड़प-सडप की ध्वनि के साथ खाने को निगलता है, तथा हाथ ही नही, सामने का कपडा भी गन्दा कर लेता है।

✓ ८. हसना—हसते समय मनुष्य की सरलता अथवा वक्रता अवश्य स्पष्ट हो जाती है। शान्त प्रकृति का मनुष्य प्रायः मुस्कराता है; सरल प्रकृति का खिलखिलाकर हसता है अथवा बहुत प्रसन्न होने पर अट्टहास करता है,-पुरुषार्थी प्राय अट्टहास करता है; निकम्मा या धूर्त आदमी घोडे की तरह हिनहिनाता है; सभ्य आदमी उचित अवसर पर हसता

है; असभ्य अनुचित अवसर पर। सभ्य की हंसी में उसके दात के पीछे का भाग कम दिखाई पड़ता है; असभ्य का सारा कण्ठ-देश राक्षस के गले की तरह खुल जाता है। हसमुख प्रसन्नचित्त होता है, कभी न हसनेवाला महाशुष्क मनोवृत्ति का तथा सदा उपहास करनेवाला दुर्बुद्धि या कुटिल स्वभाव का होता है। सभ्य व्यक्ति व्यग्य-विनोद से हसते है। दुष्ट जीव दूसरो को सकट मे देखकर या उनको बेवकूफ बनाकर हसता है। गन्दे स्वभाव का आदमी प्राय भद्दे मज़ाक करता है।

और भी कुछ जान लीजिए

उपर्युक्त बातो को ध्यान मे रखिए ही, कुछ और छोटी-मोटी बातों की सहायता से मनुष्य के रूप को पहचानिए :

१. अभिमानी व्यक्ति की दृष्टि सबके सिर के ऊपर रहती है, वीर स्वभाव के, सत्य तथा निश्छल स्वभाव के व्यक्ति आख से आख मिला-कर देखते है, सज्जन और स्नेही दूसरे के चेहरे की ओर देखते हैं, सकोची और शीलवान वक्षस्थल की ओर, नीच व्यक्ति कमर के नीचे, महानीच जूतो पर और लज्जित व्यक्ति अपने ही अगों को देखता है। बिलकुल निकम्मा आदमी दूसरो की पीठ ही देखता है, क्योकि वह पीछे ही पीछे चलने का अभ्यासी होता है। भांड-स्वभाव का आदमी आखे मटकाता है। वह किसीको नही देखता, दूसरे ही उसको देखते हैं।

२. सज्जन व्यक्ति किसीके गुणो की प्रशसा मुक्त-कण्ठ से करता है, दुर्जन दबी जबान से, चाटुकार ढोल पीटकर और धूर्त 'किन्तु', 'परन्तु' लगाकर।

३ शब्दो का अपव्यय करनेवाला समय का अपव्ययी भी होता है।

४ सभ्य व्यक्ति मुह पर श्रद्धा-स्नेह के भाव दिखाकर सरलता-

पूर्वक हाथ से किसीका अभिवादन करता है। दभी उपेक्षापूर्वक या तो मुह से कुछ बोल देता है या हाथ को बिजली की तरह चमकाकर गिरा लेता है। धूर्त बड़ा भारी दण्डवत करता है और बार-बार हाथ जोड़ता है।

५ सत्पुरुष कभी यह नहीं कहता कि मेरा यह सिद्धान्त है। उसका सिद्धान्त तो उसके कार्यों से प्रकट होता है। जिसका कोई सिद्धान्त नहीं होता, वही चिल्लाता है कि मैं तो अमुक सिद्धान्त का माननेवाला हूं। धूर्त और स्वार्थी लोग छोटी-छोटी बातों को भी सिद्धान्त का रूप दे देते हैं।

६. जब दो व्यक्तियों मे परस्पर विश्वास होता है, तभी वे स्वाभाविक रीति से व्यवहार करते है। अविश्वास होने पर भला व्यक्ति भी प्राय: दुर्जन से अपने व्यक्तित्व को छिपाता है।

७ किसीका प्रिय विषय क्या है, इसकी जानकारी से उसकी मनोवृत्ति का झुकाव मालूम हो जाता है। सज्जनों को सार्वजनिक विषय प्रिय होते है। नर-वीरो को शासन-सम्बन्धी, सर्वसाधारण को आमोद-प्रमोद-सम्बन्धी, नीच को दूसरों का अप्रिय करनेवाले विषय प्रिय लगते है और मूढ को सारा ससार असार लगता है।

भ्रम में न पड़िए

किसीके सम्बन्ध में कोई विचार स्थिर करते समय भ्रम में न पड़िए। किसीमें दस-पांच दुर्गुण हो सकते है, पर साथ ही पचास गुण हो सकते है। उन गुणों में वे दुर्गुण छिप जाएगे—उसी तरह जैसे चन्द्र मे कलक और आम में गुठली। साधारण परिस्थिति में किसीके गुण-दुर्गुण अच्छी तरह प्रकट नहीं होते। जिसका व्यक्तित्व परिस्थितियों के ऊपर उठा हुआ दिखलाई दे उसीको विजयी मानिए। जहां जिसके

प्रति आपको भ्रम हो, वहां परीक्षा करके देखिए। किसीकी ओर थोडा घूरकर देखिए कि वह स्थिर रहता है या अस्थिर हो जाता है अथवा आपकी आखे फोडने दौडता है। किसीको छेड़कर देखिए कि उसमें सहनशीलता है या शीघ्र जल-भुन जाने की प्रकृति। किसीकी प्रशसा करके देखिए और फिर उसीकी थोडी आलोचना करके देखिए। सभव है वह तुलसी की इस उक्ति को चरितार्थ करे :

नीच चंग-सम जानिए, सुनि लखि तुलसीदास।
ढील देत भुंई गिरि परत, खैंचत चढत अकास॥

किसी विपय में उसकी राय देखिए कि वह उसके सुलझाने में साधक होता है या बाधक। किसीको कोई जिम्मेदारी का काम सौपिए, देखिए वह खड़ा रहता है या अपने भागने की सड़क बनाता है। जो आपसे दूसरों की रहस्य की बाते कहता है, उसको अपना भी कोई रहस्य बताकर देखिए और कहिए कि किसीसे कहे नहीं। सम्भव है वह एक-दूसरे के रहस्य ही कहता घूमता हो। किसीका उपकार करके देखिए कि वह कृतज्ञ रहता है या कृतघ्न हो जाता है। किसीकी गलतियां पकडकर देखिए कि वह सच्चे आदमी की तरह उनको मान लेता है या संकोची व्यक्ति की तरह लज्जित हो जाता है या धूर्त की तरह बातों से उनको ढकने की चेष्टा करता है, अथवा दुष्ट की तरह उसके कारण आपको अपना शत्रु मानने लगता है। इन प्रयोगों से बहुतों के सम्बन्ध मे भ्रम-निवारण हो सकता है।

और भी कई तरह के भ्रम हो सकते है। किसीको साधु स्वभाव का, शान्तचित्त तथा स्त्रियो से विरक्त देखकर उसको लोग क्लीव समझ लेते है। वह सयमी भी हो सकता है। पुराने ढग के लोग चौदह-पन्द्रह वर्ष के बालकों में कुछ स्वच्छन्दता आते देखकर समझते है कि लड़का बिगड़ गया। उनके मुह पर मुहासे देखकर समझते है कि उनका

ब्रह्मचर्य खंडित हो रहा है। यहां घोर भ्रम होता है। चौदह-पन्द्रह वर्ष की आयु में युवावस्था का आगम होने लगता है और शरीर की ग्रथिया अपने स्थानों में कुछ परिवर्तन करने लगती है, जिनके कारण सबका स्वभाव कुछ बदलता है और ग्रथियों के परिवर्तन तथा रक्त में विशेष गर्मी के कारण मुहासे निकलते है। एक तरह से शरीर में वसन्त ऋतु का आगमन होता है। विचारो मे पतझड की हवा चलती है और मुख पर ऋतु की कोंपले फूट निकलती है। ऐसी दशा मे किसीकी परीक्षा करते समय उसकी अवस्था की स्वाभाविक विशेषताओ का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

✓ अपने दोषों को भी देख लीजिए

किसीके व्यवहार मे कोई त्रुटि जान पडे तो उसका सारा दोष मानने के पहले आप यह भी देख लीजिए कि कही आप ही ने तो नही उसको उसके मार्ग से गिरा दिया है। यदि कोई उत्तेजित होता है तो उसका मूल कारण सोचकर तब उसके स्वभाव को दोष दीजिए। सम्भव है, आप उसके ऊपर या उसकी किसी बात पर हंस दिए हों, या आपने अन्यायपूर्वक दूसरों के सामने उसकी सत्य किन्तु अति कठोर आलोचना कर दी हो। उस परिस्थिति में शान्त स्वभाव का व्यक्ति भी उत्तेजित हो सकता है। हरएक व्यक्ति स्वभाव से कुछ न कुछ खुशामद-पसन्द होता है, और चाहता है कि लोग उसका मज़ाक कम से कम दूसरों के आगे न उड़ाए। यदि आप इसका ध्यान नही रखते तो अवश्य ही पीड़ित व्यक्ति आपे से बाहर हो जाएगा।

दूसरी भूल आप वहा कर सकते है जहां किसी भाव-प्रधान बात मे तर्क का आश्रय ले। यदि कोई आपके तर्कों को न माने तो आप उसे अयोग्य, व्यर्थ या मूर्ख समझेंगे। पर आपको इस बात का ध्यान रखना

चाहिए कि मनुष्य तर्क से कम वश में आता है, भावों के सूत्र में वह शीघ्र ही बंध जाता है। वियोगिनी स्त्री को आप तर्क से नहीं शान्त कर सकते। रुष्ट लडके को तर्क से नही, स्नेह-भाव से मनाया जाता है। यदि वह आपके तर्क की अवहेलना करे तो उसको दुष्ट न मानकर अपने को अनुभवशून्य मानिए।

तीसरी मुख्य भूल आप यह कर सकते है कि स्वय विशेप सम्मान के पात्र न होकर दूसरो से आशा करे कि वे आपका सम्मान करे और न करने पर उनको अभिमानी या अशिष्ट मान ले। आपकी योग्यता-अयोग्यता, गुरुता-लघुता और उपयोगिता के अनुकूल ही दूसरो की दृष्टि में आपका स्थान बनेगा। आप चाहे जितने भी धधके, उसको देखकर कमल नही खिल सकता।

चौथी भयकर भूल यह हो सकती है कि आप स्वय तो कुछ न करें और दूसरो से आशा करे कि वे ही आपका सब काम कर दे और यदि वे न करे तो आप उनको बुरा आदमी मान ले। यह स्मरण रखना चाहिए कि कोई व्यक्ति दूसरे का काम पूर्ण रूप से नही कर सकता। दूसरा आदमी सहयोगी ही हो सकता है। नोकर भी तभी काम करता है जब मालिक भी कुछ करता है। जो मालिक सोता है, उसके नौकर भी सोते है। दूसरो को लापरवाह या सुस्त समझने के पहले देख लीजिए कि आपकी लापरवाही से तो वे वैसे नही बन गए है।

पाचवी भूल आपकी स्मरणशक्ति की हो सकती है। यदि आप कोई बात भूल जाएगे तो दूसरे अवसर पर दूसरे को झूठा बना देंगे। आप किसीकी बातो की जाच तभी कर सकते है जब उनको ठीक-ठीक याद रखें।

एक और त्रुटि यह हो सकती है कि आप स्वय मिलनसार स्वभाव

के न हों और दूसरों को दोष दे कि वे बड़े उजड्ड तथा मिथ्याभिमानी हैं। आप पहले अपनी परीक्षा कर लीजिए और देख लीजिए कि कहां तक आपमें सामाजिक होने के सद्गुण है। आगे हम कुछ प्रश्न देते है, जिनके उत्तर देकर आप पता लगाइए कि कहां तक आप समाज में प्रवेश करने योग्य है। दूसरो से भी इन प्रश्नो को पूछकर आप उनके विषय में बहुत कुछ जान सकते है, इसलिए हमने इसी प्रसंग में इनका उल्लेख करना उचित समझा है। ✓

कुछ व्यक्तिगत प्रश्न

१. क्या आप किसी भी ढग की वेश-भूषा मे बड़े-छोटों के साथ आत्मसम्मान और आत्मविश्वास के साथ मिल लेते हैं?

२. क्या आपका उच्चारण शुद्ध है?

३. जब आप किसी मित्र से मिलते है तो क्या आप किसी प्रश्न के साथ बातचीत का श्रीगणेश करते हैं?

४. क्या आप प्रायः यह कहते है कि 'क्षमा कीजिएगा, ऐसा नहीं हो सका', 'मुझे दुःख है, मैं ऐसा न कर सकूंगा' या 'आप बुरा न मानिएगा', 'मेरा अभिप्राय यह है'?

५. क्या आप मित्र से प्रायः उसके कार्यालय में मिलते है?

६. बड़े आदमियों से भी क्या आप आत्मसम्मान के साथ मिलते हैं?

७. अपनी स्पष्ट आलोचना सुनकर आपको क्या खिन्नता नहीं होती?

८. क्या आपकी ध्वनि स्पष्ट और गम्भीर है?

९. क्या आप अपनी बातचीत के कारण व्यवहारकुशल माने जाते हैं?

१०. क्या आप अपने को कुछ लोगों का आज्ञाकारी और कुछ लोगों का अफसर बनाकर योग्यतापूर्वक किसी कार्य को सुचारु रूप से कर सकते है ?

११ चलते समय या खडे रहने पर अथवा बैठने पर—इन तीनों अवस्थाओ मे से किसी अवस्था मे—आप झुकते है या नही ?

१२. किसीसे बाते करते समय क्या आपको पता चल जाता है कि सुननेवाला आपकी बातो मे कितना रस ले रहा है ?

१३. कभी पहले के हास्य-व्यग्य आपको याद रहते है कि नही ?

१४. आप अपने मित्रों के आग्रहों से प्राय. अपनी जान छुड़ा लेने मे समर्थ हो जाते है कि नहीं ?

१५. आप हसी-मजाक में भी अपने सत्य-व्रत का पालन करते है या नही ?

१६. क्या आपको अपने परिचितों की कमज़ोरियो का ध्यान रहता है ?

१७. क्या आप अपने वैवाहिक जीवन को सफल मानते है ?

१८. क्या आपको अपनी भूलो पर कभी-कभी हसी आती है ?

१९. आप मित्र की मित्रता का निरन्तर लाभ लेते रहते हैं ?

२०. सच बताइए, क्या कभी आपके मन मे यह भावना उठती है कि आपकी पत्नी आपके किसी सौभाग्यशाली मित्र की पत्नी जैसी रूपवती होती तो आप अधिक सुखी होते ?

२१. क्या आपको स्त्रियों के सामने खड़े होने में कुछ झिझक मालूम होती है ?

२२. आप अपने मिलने-जुलनेवालों से प्राय. कोकशास्त्र, भूगर्भ-शास्त्र,.कर्तव्यशास्त्र, वेदान्त और दर्शनशास्त्र की चर्चा करते हैं कि नहीं ?

२३ क्या आप मित्रों के साथ घूमने-फिरने भी जाते है ?

२४ जब आपके मित्र आपको सिनेमा दिखलाने ले जाते है तो प्राय. वे ही स्वय टिकट खरीदकर आपको सम्मानपूर्वक अन्दर ले जाते है या नही ?

२५ किसी मित्र के घर पर आपके बार-बार जाने पर भी क्या उसके घरवालों को आपके प्रति कोई अरुचि नही हुई ?

२६ क्या आपको कहावते, मुहावरे और कवियो की कुछ मनोहर उक्तिया याद है ?

२७ जब मित्र-मण्डली में किसी गम्भीर किन्तु आवश्यक विषय पर विचार-विमर्श होने लगता है, तो क्या आपको शीघ्र घर लौटनें का ध्यान आता है ?

२८ क्या आप अपने व्यवसायवालो या बन्धु-बान्धवों के साथ ही अधिक मेलजोल रखते है ?

२९ क्या आप अपने मन की सभी व्यथाए मित्रो से प्रकट करते है ?

३० जहा लोगो मे भाग्य के कुचक्र की कथाए चलती है वहा उनमे आपका नाम भी कथा-नायक या पात्र के रूप मे वर्णित होता है या नही ?

३१ क्या जब आप अपनी बात समाप्त कर लेते है तो लोगो को आपकी स्थिति पर दया आती है ?

३२. दूसरो के व्याकरण-दोष आप उनको तत्काल बता देते है या नही ?

३३. सिनेमा के चलते हुए गाने सुनकर क्या आप मुग्ध हो जाते है ?

३४. क्या कभी-कभी आप स्वय भी कुछ गा लेते है ?

३५. क्या शाम को आप प्रायः रेडियो सुनने की अपेक्षा कही बाहर जाना पसन्द करते हैं ?

३६. क्या आपके घर में रोज सुबह-शाम आपकी कचहरी लगती है ?

३७. क्या लड़कों के कपड़े आप अपनी रुचि से नही पसन्द करते है ?

३८. क्या आपको इसका अनुभव होता है कि पहले आपका जीवन अब से अधिक सुखी था ?

३९. क्या परिचित लोगों को व्यक्तिगत पत्र लिखने में आपको बहुत देर तक सोचना पडता है ?

४०. क्या घरेलू चिन्ताओं से कभी-कभी आपका मन उखड जाता है ?

४१ क्या आपका शाम का कार्यक्रम बंधा रहता है ?

४२. क्या आपको कभी-कभी इसका ध्यान आता है कि अब आपकी वृद्धावस्था आ गई ?

४३. क्या कभी-कभी आपको अपने बड़े लड़के के प्रति ईर्ष्या-द्वेष होता है और आप, इस विचार से कि कही वह घर में आपकी गद्दी न छीन ले, उसको नीचा दिखाने के लिए गुप्त षड्यन्त्र या उसका मान-मर्दन करते हैं ? अथवा क्या कभी आप यह समझते है कि आपका लड़का आपकी मृत्यु के बाद पूर्ण वयस्क हुआ होता तो ठीक था ? अथवा क्या आप कभी यह समझते है कि वह आपसे दूर रहे तो आपका वैभव अधिक सुरक्षित रहेगा ?

४४. क्या आपके घर में किसी आकस्मिक गृह-संकट का दोष किसी नवविवाहिता गृहिणी या किसी नवजात शिशु पर डाल दिया हैाताज ?

४५ यदि आपका नौकर अलग हो जाए या बीमार पड़ जाए तो क्या आपको बाजार में खाना खाने के लिए बाध्य होना पड़ता है ?

४६. नौकर के बीमार होने पर आप उसके इलाज का यदि प्रबन्ध करते है तो उसके वेतन में से दवा आदि का मूल्य काट लेते है या नहीं ?

४७. क्या आप प्रायः पाखण्ड दिखलाते है जिससे लोग भयवश आपकी अधिक सेवा करे ? और कभी घर के कामों में कृत्रिम विरक्ति दिखाकर तरह-तरह के नाटक करते है ?

४८ किसीके रूठने पर क्या आप उसको बिना धमकाए हुए भी मना लेने मे सफल हो जाते है ?

४९. दूसरों के मेहमान होने पर क्या आपको अपने घर से अधिक सुख मिलता है ?

५०. क्या आपके नौकर आपको प्रसन्न रखकर आपके घरवालों का जब चाहें अपमान कर लेते है ?

५१ घर मे क्या आप परम स्वतन्त्र रह सकते है और विवाह आदि मे भी किसीकी राय नहीं लेते ?

५२. क्या आप घर में अपनी प्रभुता को स्थायी रखने के लिए किसी न किसीको मारते-पीटते या पेरते रहते है ?

५३. काम हो जाने के बाद कोई न कोई त्रुटि निकालकर क्या आप नौकरों-मजदूरों के पैसों में कुछ काट-कपट करने के व्यसनी है ?

५४. क्या आप वहुत विद्वान, लोकप्रिय होकर भी घरवालों के प्रति आत्मीयता का भाव दिखलाने में असमर्थ है ?

५५. क्या आप घर में भी दो तरह की बाते करते है; अर्थात् मन में कुछ रखते हैं, कहते कुछ है तथा एक बार कुछ कहकर बाद को पलट जाते है ?

५६. क्या आपको घरवालों के लिए रोज नये-नये कानून बनाने और दफा १४४ लगाने का शौक है ?

५७. क्या आपके सम्बन्धी लोग आपके घर वार-वार आना पसन्द करते हैं ?

५८. आपके घर में त्योहार या मगलोत्सव मनाए जाते है या नही ?

५९. क्या आपके लड़के और नौकर आपके चेले जैसे लगते है ?

६० क्या आपका इतना आतक रहता है कि वच्चे दिन-रात पुस्तको मे ही अपनी आखें गडाए रहते है ?

६१ क्या आप वहुत-सी जीवित स्त्रियो के पति है ?

६२. क्या आपके घर मे हरएक प्राणी यह अनुभव करता है कि आप उसीको सवसे अधिक चाहते हे ?

६३. क्या सव स्वेच्छा से आपके सुख-दु ख मे सम्मिलित होते हैं ?

६४. वाहर से जव आप कुछ लाते है तो उसमें से पहले अपना हिस्सा अलग कर लेते हैं या नही ?

६५. क्या आप प्राय. घर मे ही बैठे रहते है ?

६६. क्या आपको क्रोध करके पछताना पडता है ?

६७. कभी अकेले रहने पर क्या आप ऊबने लगते है ?

६८. क्या आप वच्चों, वुड्ढों और नवयुवको को सगति यथासमय आनन्दपूर्वक कर सकते हैं ?

६९. कोई जव आपके प्रति स्नेह, सम्मान या कृतज्ञता प्रकट करता तो क्या आप उसके वश मे हो जाते है ?

७०. क्या आप किसीको वधाई या धन्यवाद देने मे प्रायः चूक जाते है ?

७१. जब आप रसमग्न होकर बातें करते हों तो यदि कोई अन्य व्यक्ति अपनी बातो से लोगों का ध्यान आपकी ओर से फेर ले तो क्या आप रूठ जाते है ?

७२. क्या आप नाना विषय में कुछ न कुछ प्रवेश रखते हैं ?

७३. परिचितों के नाम आपको आसानी से याद रहते हैं या नहीं ?

७४. क्या आप बहुत-से स्थानों पर केवल हाज़िरी देने जाते है ?

७५. क्या आप सभीसे घुल-मिल जाते है ?

७६. क्या आप दूसरों के समय का भी ध्यान रखते है ?

७७. क्या आप किसीसे पहली मुलाकात करने में केवल दस-पंद्रह मिनट ही बाते कर सकते है ? और अपने काम की चर्चा करनी भूल जाते है ?

७८. किसीके घरेलू काम में कभी-कभी हाथ बटाते है कि नही ?

७९. क्या आप दूसरो के पास केवल गप्प करने जाते है ?

८०. दूसरो की बाते आप ध्यान से सुनते है या नहीं ?

८१. क्या आप दूसरों के मन में प्राय. सन्देह उत्पन्न करके फिर बताने का आश्वासन देते है ?

८२. दूसरे लोग जब आपका मज़ाक करते है तो क्या आप नक्कू बन जाते है ?

८३. क्या आप 'जिन्दादिल' और 'हाज़िरजवाब' है ?

८४ दूसरे जब चुप हो जाते है, तब भी आप बोलते ही रहते हैं ?

८५ आप आसानी से बातचीत में विषय-परिवर्तन करने में सफल हो जाते है कि नही ?

८६. नौकरों से गाली देकर बाते करने का अभ्यास आपने किया

है कि नहीं ?

८७. जिससे आपके नौकर या बच्चे सावधान रहे, आप छोटी गलतियों पर भी उनको बुरी तरह डांटकर उनकी भर्त्सना कर देते हैं या नही ?

८८. अपनी गलती सुधारते समय क्या आप अपने को वहुत नीचे गिरा लेते है ?

८९. क्या पास में पिस्तौल न रहने के कारण आपको बदमाशों से हमेशा भय बना रहता है ?

९०. यदि आपके ये रहस्य, जो इन प्रश्नों के उत्तर के रूप में प्रकट हुए हैं, आपके मित्रों को बता दिए जाए तो चित्त में आपको कुछ व्याकुलता तो नहीं होगी ?

९१. क्या आप उठने-वैठने, खाने-पीने में सब मित्रो के साथ समानता का व्यवहार करते है ?

९२. परिचितों के साधारण पत्रों का उत्तर क्या आप तत्काल दे देते हैं ?

अपने उत्तरों को तोलिए

आपने 'हा' या 'नहीं' में उत्तर दिए होगे। हम भी उसी प्रकार उत्तर देते है। दोनो का मिलान कीजिए। यदि अनुकूल उत्तरों की सख्या ७५% निकले तो अपने को प्रथम श्रेणी में, ५०% निकले तो द्वितीय श्रेणी मे, ३५% निकले तो साधारण श्रेणी में पास समझिए। यदि इससे कम निकले तो आप जिस श्रेणी के मनुष्य है, उसी श्रेणी में पड़े रहेगे और आपके पीछेवाले शीघ्र आपके समकक्षी होकर आगे बढ़ते जाएगे।

१. हा। २. हां। ३. हा। ४. नहीं। ५. नही। ६. हां।

७. नहीं। ८. हां। ९. हां। १०. हां। ११. नही। १२. हा।
१३. हां। १४. नहीं। १५. नहीं। १६. हां। १७. हां। १८. हां।
१९. नहीं। २०. नही। २१. नही। २२. नही। २३. हा। २४ नहीं।
२५. नही। २६ हा। २७. नही। २८. नहीं। २९. नहीं। ३०. नहीं।
३१. नहीं। ३२. नही। ३३. नहीं। ३४. हां। ३५. हां। ३६. नही।
३७. नहीं। ३८. नहीं। ३९. नही। ४०. नही। ४१. नही। ४२. नही।
४३. नही। ४४. नही। ४५. नहीं। ४६. नही। ४७. नही। ४८. हां।
४९. नही। ५०. नही। ५१. नही। ५२. नही। ५३. नही। ५४. नही।
५५. नही। ५६. नही। ५७. हां। ५८. हां। ५९. नही। ६०. नहीं।
६१. नही। ६२. हा। ६३ हा। ६४. हा ६५. नहीं। ६६. नही।
६७. नही। ६८. हां। ६९. नहीं। ७०. नही। ७१. नही। ७२. हां।
७३. हां। ७४. नही। ७५. नही। ७६. हां। ७७ हां। ७८. हा।
७९. नहीं। ८०. हां। ८१. नही। ८२. नही। ८३. हा। ८४. नहीं।
८५. हां। ८६. नही। ८७. नही। ८८. नही। ८९ नही। ९०. नही।
९१. हा। ९२. हां।

इन सब उपायों का सम्मिलित प्रयोग करके आप दूसरों के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में विशेष रूप से जानकार हो सकते हैं। पिछले अन्य अध्यायो में वर्णित बातो को भी ध्यान मे रखिए। यदि साधारण दशा में किसीको आप न पहचान सके तो उसको उन्मत्त दशा मे देखिए। चाहे जिस तरह का उन्माद हो, मनुष्य उसमे अपने असली रूप में खुल जाता है क्योकि तब बुद्धि का चातुर्य नही चलता। मुख्यत. मद्य, भंग आदि के मद मे तो व्यक्तित्व का नग्न रूप दिखलाई पड़ता है। इसपर सुश्रुत ने वैज्ञानिक ढग से विचार किया है। उसके अनुसार सात्त्विक स्वभाव के मनुष्य में उत्पन्न हुआ मद पवित्रता, उदारता, प्रसन्नता, शरीर के शृङ्गारित करने की लालसा, गायन, अध्ययन,

कीर्तिकर कार्य करने की इच्छा, भोग और उत्साह की भावना उद्दीप्त करता है। राजस स्वभाववाले मनुष्य में मदाधिक्य से दुःखशीलता, आत्मनाशक कर्म, साहस और कलह की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। तामस प्रकृति के मनुष्य में अपवित्रता, मत्सर, व्यभिचार, झूठ बोलना और तरह-तरह की कुप्रवृत्तियां मद्य पीने के अनन्तर जगती हैं। तभी आप नीच प्रकृति के लोगों को नालियों मे लोटते हुए पाते हैं। इसका कारण सुश्रुत के मत से यह है—प्रायः सभी अपनी मूल प्रवृत्तियों को एक अंश तक रोककर रूढि और लोकप्रथा के अनुकूल आचरण करते है। मद्य के प्रभाव से प्रकृति उत्तेजित होकर उस कृत्रिम बन्धन को तोड़कर स्वच्छन्द हो जाती है। उस समय मन की वे सभी गूढ बाते जो भीतर ही भीतर हमारे आचार-विचार को प्रभावित करती रहती है सबल होकर प्रकट हो जाती हैं। मद्य को इसीलिए चरक ने 'प्रकृति-दर्शक' कहा है। आधुनिक वैज्ञानिक भी मानते हैं कि मानव-प्रकृति के अनुसार ही मद-प्रभाव में भिन्नता होती है। शराब के नशे ही मे नहीं, सिगरेट-तम्बाकू के नशे मे भी मनुष्य अपनी आन्तरिक प्रवृत्ति के अनुसार चेष्टाए करता है। अतएव ऐसे अवसरो पर उसकी मुख-मुद्रा, व्यवहार, बातचीत का अध्ययन करना चाहिए। यदि किसीकी आकृति आपकी समझ मे न आए तो वृद्धो की आकृति की परीक्षा कीजिए। किसी अंग्रेज ने सोलह आने सत्य लिखा है कि वृद्धावस्था में मनुष्य को वही आकृति मिल जाती है जिसका कि वह पात्र होता हैं।[1]

तेजस्वी का चेहरा वृद्धावस्था मे अधिक सतेज हो जाता है, नीच विचारो के मनुष्य का चेहरा राख या कोयला हो जाता है। गाधीजी

---

१. In old age men acquire the faces they deserve.

की आकृति तो मरने के बाद भी सजीव लगती थी।

हम समझते है, इस विषय पर इस अध्याय में आपको पर्याप्त सामग्री मिल जाएगी। आप दूसरों को सूक्ष्मता से देखिए और इसका भी ध्यान रखिए कि अन्य लोग भी वैसी ही सूक्ष्मता के साथ आपको देखते होंगे। अतएव दूसरों के निकट-सम्पर्क में आने के लिए अपने रूप में, आचार-व्यवहार और चेष्टाओं आदि में यथावश्यक संस्कार कीजिए।

९. आत्म-परीक्षा

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर देकर आप अपनी त्रुटियों को स्वयं समझिए, क्योंकि प्राय: दूसरे लोग शिष्टता या संकोचवश आपकी त्रुटियों को देखते हुए भी चुप रहते है। इन प्रश्नों को हमने जानबूझ-कर एक क्रम मे नही रखा है :

प्रश्न (उत्तर पृ० ३५२ से)

१. कई प्रसंग ऐसे आते है जबकि किसी कार्य के करने या न करने के सम्बन्ध मे आपमें और आपकी आत्मा में भीतर ही भीतर संघर्ष होता है। उस दशा मे क्या आप अन्त में आत्मा पर विजयी हो जाते है अथवा आपकी आत्मा ही आपको पराजित कर देती है ?

२. आपके मन मे कभी-कभी अनायास हर्ष या शोक की तरंगे उमड़ पड़ती होंगी। क्या आप उनमे तत्काल बह जाते है या कुछ देर तैरते भी है ?

३. आपके मन मे कोई विस्फोटक पदार्थ तो नहीं है जिसके कारण आप बातो की साधारण चिनगारी से दगने लगते है ?

४. क्या आपको आते देखकर लोग भयवश मन ही मन 'सकट-मोचन' का पाठ करने लगते है ? दूसरे शब्दों में—क्या लोग आपसे यह समझकर डरते है कि 'जनि कहइ कछु बिपरीत जानत प्रीति-रीति न बात की' ?

५. जब आप बोलने लगते है तो आपके कंठ से सुन्दर शब्दमाला निकलती है अथवा हवाई बन्दूक दगने लगती है ?

६. क्या यह सत्य है कि दूसरों की प्रशंसा करते समय आपको

शब्द-दारिद्रय का अनुभव होता है और निन्दा करते समय सहस्त्रनाग की जिह्वाए मिल जाती है ?

७ जब आप दूसरों से मिलते है तो जासूस की तरह तो नही प्रतीत होते ? अथवा आपको लोग किसीका भेदिया तो नहीं समझते ?

८. आसपास कोई भी झगडा होने पर क्या नारद की तरह आपका नाम उसमे नत्थी कर दिया जाता है ?

९. किसी न किसीसे उलझते रहने का क्या आपको 'अमल' पड गया है ?

१०. क्या यह सत्य है कि किसी विषय को अतिरजित किए बिना आप उसको व्यक्त ही नही कर सकते ?

११. कलियुग को दोष देना, विधाता के विधान को उलटा बनाकर उसकी आलोचना करना, अपनी दुर्दशा का सारा उत्तरदायित्व गवर्नमेंट, भगवान या किसी अन्य व्यक्ति पर डाल देना तथा अतीत काल के गौरव और सुखो की एक लम्बी सूची बनाकर उसका पाठ करना—क्या यही आपकी बातचीत के मुख्य विषय होते है ?

१२. किसीसे मिलते ही क्या आप तत्काल आत्मकथा कहने लगते है ?

१३. परछिद्रान्वेषण करके आप दूसरो के दोष कठस्थ रखते है कि नही ?

१४ क्या आपको जो मिलता है वही धूर्त, अविश्वासी या बेईमान होता है ?

१५. आप ही दूसरो का गुणगान करते है या आपका भी गुणगान करनेवाला कोई है ?

१६. आपकी प्रशसा कौन अधिक करता है ? आप स्वय या

आपके मित्रगण या शत्रु ?

१७. आपके मित्रो की सख्या अधिक है या शत्रुओ की ?

१८. क्या हवा के साधारण झोके से भी आप छीकने लगते है ? दूसरे शब्दों मे, क्या साधारण बातो से भी आपके हृदय मे बडे-बडे छाले पड जाते है ?

१९. क्या आप दूसरो को भ्रम मे डालने का व्यवसाय करते है ? दूसरे शब्दो मे—खाकी कमीज-हाफपैण्ट पहनकर तथा नकली तमचा लटकाकर या प्रान्तीय रक्षा-दल मे भर्ती होकर क्या आप यह प्रचार करते घूमते है कि अप सब थानेदारों के सिरमौर हो गए अथवा किसी अफसर को हा-हुजूरी करके लौटने के बाद क्या आप यह प्रचारित करते है कि आप साहब से गप्प करने गए थे और उन्होने शासन-सम्बन्धी अनेक मामलो मे आपसे राय ली है; अथवा छठे-सातवे तक पढकर क्या आप दूसरों को यह बताने की चेष्टा करते है कि आप इतने योग्य है कि बडे-बड़ो के कान कतरते है; अथवा कल्पित नौकरी पाकर क्या आप यह विज्ञापित करते है कि आप उच्च पदाधिकारी हो गए या होने जा रहे है ?

२०. क्या आप अपनी महिमा को पूर्वजों की गौरव-गाथा सुनाकर बढाते है।

२१. क्या आप बात-बात मे धमकी देते है, दूसरों को चौकाते है और इस प्रकार काम निकालने की चेष्टा करते है ?

२२. क्या आप हर प्रकार की प्रतियोगिता से घबराते है और शकित रहते है कि दूसरे लोग आपसे आगे न बढ जाएं ?

२३. क्या आपके नौकरो की सूची में भगवान का भी नाम है ? अर्थात् क्या आप यह सोचते है कि अमुक काम भगवान चाहेगे या करेगे, तभी होगा ?

२४. गर्मी मे प्रचड धूप, बरसात में मूसलाधार वर्षा, जाड़े में खांसी बुखार और शीत-प्रकोप—ये तीनो आपके कार्य में बाधक होते होगे। घर छोडते समय घर के सुख, घरवालों के मोह के अतिरिक्त दिशाशूल, अशुभ मुहूर्त, अपशकुन प्राय आपके पैर पकड़ ही लेते होंगे। दूर जाना है—'परदेस कलेस नरेसुहु को', सभी तो वहां पराये होते हैं, काम अकेले नही हो सकता—ये चिन्ताए आपको प्रायः बैठा रखती होगी। क्या हमारा अनुमान सत्य है?

२५. क्या अधिकाश कार्यो मे आप अपने को असमर्थ पाते है और निराश हो जाते है?

२६. क्या यह सत्य है कि आपका घर ही आपका बन्दीगृह हो गया है, जहां स्त्री जेलसुपरिटेण्डेण्ट है और बच्चे जेल-फाटक के सिपाही है?

२७. यह कहा तक सत्य है कि यदि आपको घर के झझट न होते तो आप अधिक सुख से रहकर लोक में बड़ी उन्नति कर सकते थे?

२८. आपकी बात का लोग एक अर्थ लगाते है या अनेक?

२९. दूसरो से आप विचारों के आदान-प्रदान के लिए मिलते है अथवा अपने मत की पुष्टि करने के लिए?

३०. प्रायः जब आप किसीसे मिलते है तो क्या आपका श्रोता आपकी बाते सुनते-सुनते ऊघने लगता है? अथवा, क्या वह हा-हूं करता हुआ साथ-साथ कोई अन्य कार्य भी करने लगता है?

३१. बातचीत मे आपको खंडन-मंडन अधिक प्रिय है, या हां में हा मिलाना अथवा बाल की खाल खीचना या ईट का जवाब पत्थर से देना?

३२. लोगों के बीच में जाने पर क्या आपके मन मे यह भावना

उठती है कि सभी आपको तथा आपकी वेश-भूषा को घूर-घूरकर देख रहे है, और आपपर टूट पड़ना चाहते है तथा चारों ओर आपकी त्रुटियों की चर्चा हो रही है ?

३३. जब किसी सभा-समाज में आप जाते है तो प्राय: अपने बैठने के लिए कोई कोने का स्थान अवश्य ढूढ़ते होंगे। बैठने पर आपका चित्त शांत रहता होगा। और कहीं यदि सबके बीच में बैठना पड़े तो आपका हृदय धड़कता होगा, आंखे फड़कती होंगी और आप रह-रहकर भड़कते होंगे। क्या हमारा यह अनुमान आप ही के सम्बन्ध में है या किसी अन्य के ?

३४. क्या दिन में कई बार आपकी टोपी या पगड़ी उछलकर दूसरों के पैरों में गिर पड़ती है? अर्थात् क्या आप बहुतों के कृपापात्र या ऋणी है ?

३५. क्या आप प्राय: नतमस्तक रहते है या कमर झुकाकर चलते है ?

३६. क्या आपको किसीके साथ मित्रता निभाने में विशेष कठिनाई होती है और आप अपने मित्रों को उतनी ही बार बदलते हैं जितनी बार कोई धूर्त व्यक्ति अपनी बातों को बदलता है या पलटता है ?

३७. क्या आपके कुछ गुप्त मित्र भी है जिनसे आप छिपकर मिलते है ?

३८. काव्य, कला, साहित्य, सगीत, नृत्य या किसी मनोरजक कार्य से आपको सहज अनुराग है कि नही ?

३९. क्या आप कोई दैनिक समाचारपत्र पढते है ? यदि पढते हैतो कैसे समाचारों मे आपकी रुचि है ? चोरी-डाके के रोमांचकारी वृत्तान्त, दुराचार के समाचार, कही बिजली गिरने या रेल से भैंसा कटने का

हाल तथा पति ने पत्नी की नाक काट ली—ये विवरण आप विशेष रूप से पढते है या दवाओं के विज्ञापन ?

४०. क्या यह सत्य है कि जो आपको त्रास दिखलाता है उसके आप अवैतनिक दास बन जाते है और जो आपके आगे विनम्रतापूर्वक झुकता है, उसकी गर्दन पर चढ़ जाते है ?

४१ आप कम हसते है या अधिक ? अट्टहास पसन्द करते है या मुस्कान ? कण्ठ से ही हसते हैं या हृदय से भी ? दूसरों का उपहास करते है या हास्य-विनोद ? अपने से बड़ों के साथ हसी-मजाक करते है या समान श्रेणी के लोगो के साथ अथवा नौकरों के साथ भी कर लेते है ?

४२. नगर-मुहल्ले या पडोस के समारोहों मे आप आदरपूर्वक आमंत्रित होते है कि नही ? आमन्त्रित होकर जाने पर आमन्त्रक आपके शुभागमन से प्रसन्न होता है या आप ही अपने को धन्य मानते हैं ?

४३. आप प्राय कुछ ऐसी वीमारियो से पीडित रहते होगे जिनका निदान नही हो पाता ?

४४ क्या यह सत्य है कि कोई भी वात आपके पेट में पहुचते ही जुलाब की गोली बन जाती है ?

४५. आप अपने बच्चो के बाप है या अध्यापक अथवा दोनो ?

४६. आप अपनी स्त्री के स्वामी है या सखा अथवा दास ?

४७ आप किसी चचला या चडी के पति तो नही है ?

४८. आपके घर मे पधारते ही सन्नाटा छा जाता है या तूफान चलता है ?

४९. शत्रुओ पर वज्रपात कराने के लिए आप भगवान को रोज मनाते है कि नही ?

५०. क्या आप स्वय अपने आदर्श है ?

५१. एकाएक कोई ऊचा पद पाकर आप आपे से बाहर तो नहीं हो जाते ?

५२. क्या प्रत्येक कार्य की सफलता का श्रेय आप स्वय लेना चाहते है ?

५३. आप शीघ्र प्रसन्न होनेवाले तो नही है ?

५४. स्वप्नावस्था मे आप भयानक दृश्य देखते है, या सुन्दरी स्त्रियों को अथवा खाद्य-पदार्थों को ?

५५. क्या आप पैर पटकते हुए चलते है ?

५६. यदि आप दुकान खोलकर बैठते है तो गम्भीर बने रहते है या नही ?

५७. क्या आप नियम से प्रतिमास अपने स्त्री-बच्चों को कुछ जेब-खर्च देते है ?

५८. चूर्णों या ओषधियो में किन-किनका प्रयोग आप करते है ?

५९. किसी कार्य मे असफल होने पर आप मूर्छितावस्था मे हो जाते है या विशेष सचेत ?

६०. क्या आपके मन मे कभी-कभी आत्मघात के विचार आते हैं ?

६१. क्या कभी-कभी ऐसा होता है कि अनायास आपको सफलता पर सफलता मिलती है ?

६२. आप आवश्यकता से अधिक आशावादी या निराश तो नही है ?

६३. आप आवश्यकता से अधिक प्राचीन या अर्वाचीन तो नही है ?

६४. आपके व्यवसाय पर आपके व्यक्तिगत चरित्र का कोई असर नहीं पड़ता—इसे तो आप मानेगे ?

उत्तर

१. यदि किसी विषय मे आपमे और आपकी आत्मा में, अर्थात् अच्छी कामना और विवेक में, द्वन्द्व हो तो आत्मा से हार मान लेने ही में जीत होती है। आत्मप्रेरणा के रूप मे ईश्वर का सकेत मिलता हैं। कालिदास ने लिखा है कि सदेहास्पद विषयों मे सज्जन लोग अपनी आत्मा की गवाही को ही प्रमाण मानते है :

सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु
प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ॥ (कालिदास)

२. अमरीका के कुछ प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिकों ने अध्ययन करके देखा कि हर तैंतीसवे दिन प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क मे हर्ष या शोक-भावना की एक प्राकृतिक लहर आती है। हर्ष की भाव-लहर के उठने पर चित्त अकारण आह्लादित हो जाता है, बुद्धि में उदारता, सरसता, विनम्रता आ जाती है। शोक की तरग उठने पर अकारण उद्विग्नता, ग्लानि, क्रोध या विरक्ति की वासनाए तीव्र हो जाती है। जिस दिन मनोभाव मे सहसा ऐसा परिवर्तन ज्ञात हो, उस दिन समझना चाहिए कि भावुकता की प्राकृतिक तरंग उठी है। उस दशा मे चित्त-प्रवृत्ति हर्ष या शोक की ओर झुकी हुई मिलेगी। तैंतीसवे दिन चित्त-दशा मे वैसे ही परिवर्तन फिर होगा। यह क्रम चलता रहता है, परन्तु यह निश्चित नही कि एक बार हर्ष-वेग उठने पर दुबारा भी वही उठेगा। हर्ष के वाद शोक भी उठ सकता है। किसी-किसीको चौंतीसवे या पैंतीसवे दिन ये लहरे उठती है और उसी क्रम से आगे उठती रहती है। पाचवे सप्ताह मे इसका अनुभव अवश्य होता है। भावोन्माद मे सावधान रहना चाहिए और सहसा कोई भावुकतापूर्ण कार्य न करना चाहिए।

३. यदि आप सहिष्णु हैं तो आपके मित्रों की सूची में किसी

बेहया या अभागे का नाम ही शेष होगा। जो बात-बात मे उत्तेजित होता है, वह पागलपन की सडक पर निराशा की मोटर पर सवार होकर चलता है।

४. यदि लोग आपकी दु:शीलता के कारण आतकित रहते है तो आप किसी सक्रामक रोग से कम भयकर न होगे। यह मानव-स्वभाव है कि जो जिससे भयभीत या शकित रहता है, वह उससे प्रेम नही करता। यदि आप इतने दुर्मुख है कि लोग आपसे बाते करने मे डरते है तो आपको समाज से सच्ची सहानुभूति नही प्राप्त हो सकती। ऐसे स्वभाव के व्यक्तियो को तुलसी ने खल-वर्ग मे माना है :

वचन-वज्र जेहि सदा पियारा।
सहसनयन पर-दोष निहारा॥ (मानस)

५. यदि आप कर्कशभाषी है तो आपकी बातो का किसीपर प्रभाव न पडता होगा। मनोहर शब्दो मे कठोर तर्क उसी प्रकार प्रभावशाली होता है, जैसे सुन्दर नेत्रो मे कटाक्ष। शब्दो की हवाई बन्दूक दागने से जीवन-सग्राम मे विजय नही मिलती।

६. यदि आप दूसरो की प्रशसा करने मे असमर्थ और उनकी निन्दा करने मे सर्वसमर्थ है तो अवश्य ही आपका हृदय दुर्भावनाओ से भरा रहता होगा। लोग आपके पास बैठने मे घबराते होगे और आपका विश्वास भी कम करते होगे। निन्दक दूसरो की कालिमा अपने मुह मे लगाए घूमता है, इसको सत्य मानिए।

७. किसी सभ्य समाज मे यदि आप दूसरो के भेद जानने का प्रयत्न करेगे, अकारण दो आदमियों की बाते सुनने का प्रयत्न करेगे, दूसरो की चिट्ठिया पढने का प्रयत्न करेगे, दूसरो से कान मे या धीरे-धीरे बाते करने का प्रयत्न करेगे, तो अवश्य ही लोग आपको भेदपूर्ण दृष्टि से देखेगे। सभव है, आप घबराहट के कारण भौचक्के होकर दूसरो

को आंखे फाड़-फाड़कर देखते हो, जिसके कारण लोग आपको जासूस जैसा समझते हो। कुछ भी हो, शकापूर्ण दृष्टि से देखा जाना अपमान-जनक होता है।

८. यदि झगडों में आपका नाम नारद की तरह नत्थी कर दिया जाता है तो इसका कोई कारण होगा ; व्यर्थ ही आप देवर्षि के अवतार न बन गए होंगे। अधिकाश विवादों मे पड जाने के आप व्यसनी होंगे, अथवा इधर की बात उधर लगाने मे प्रसिद्ध या स्वभाव से कलहप्रिय अथवा पक्षपाती। किसी खास झगडे में सभव है आपका हाथ न हो, परन्तु पहले आप आग लगाने की यथेष्ट कीर्ति अर्जित कर चुके होंगे जिसके कारण कही भी आग लगने पर लोगों को आपका ही नाम याद आता होगा। कीर्ति मनुष्य के आगे-आगे दौड़ती है। दूसरों के झगड़ों में न पड़ने ही में बुद्धिमानी है ; पड़े भी तो निष्पक्ष होकर।

९. बहुत-से लोगों का ऐसा स्वभाव बन जाता है कि वे दिग्विजय करते हुए चलते हैं, अकारण भी किसी न किसीसे उलझकर उसको पेरते है। कोई झगड़नेवाला नही मिलता तो वे किसीपर कल्पित अभियोग लगाकर उसको विवश करते है कि वह अखाड़े मे आ जाए। कुटुम्बियों, सम्बन्धियों, मित्रों, नौकरों आदि पर दैनिक अत्याचार करने को उनको व्यसन होता है। यदि आप ऐसे है तो किसी ऐसे आदमी को मित्र या नौकर बनाइए जो अभ्यस्त बेहया हो। उसीको सिल्ली बनाकर रोज़ अपनी जिह्वा को पहट लिया कीजिए। यदि आप ऐसा न करेंगे तो आपको अनिद्रा या अजीर्णता अथवा ज्वर या मधुमेह हो जाएगा। शेखसादी को भी एक ऐसा अमली मिला था जिसका वर्णन उन्होने गुलिस्तां मे किया है। एक बादशाह था जो प्रतिदिन किसी न किसीको सताता रहता था। एक दिन एक साधु उससे मिलने आया। बादशाह ने उससे पूछा कि मेरे लिए कौन-सी पूजा सर्वोत्तम होगी ?

साधु ने कहा—दिन का सोना, क्योंकि जब तक आप सोएगे, कम से कम तब तक गरीबो की जान सासत से बची रहेगी और आपको पुण्य मिलेगा।

१० यदि आप सत्य के ऊपर कल्पना का पहाड लादने के आदी होगे तो सत्य अवश्य ही मर जाता होगा। बातों को मनोरजक बनाने के लिए जो लोग उनमे कल्पना के पख लगाते है, उनके हाथ से बातें निकल जाती है। नमक-मिर्च लगाना या बढा-चढाकर बाते करना अथवा तिल का ताड बनाना आत्मसम्माननाशी होता है। इसका अभ्यास हो जाने पर वक्ता स्वय अपनी कल्पित कथाओ को सत्य मानने लगता है और श्रोतागरण उसकी सत्यकथाओ को भी कल्पित समझने लगते है।

११. अपनी विफलता का दोप समय या किसी अन्य के सिर मढने से अपनी अकर्मण्यता का विज्ञापन होता है। यदि आप सबल है तो आपको सभी सहायक मिलेंगे, और आप अतीत को न देखकर भविष्य को देखेंगे : 'सबै सहायक सबल के, कोउ न निबल सहाय।'

१२ यदि आप सर्वत्र अपनी ही चर्चा करते है तो लोग आपसे ऊबते होगे। अपनी राम-कहानी कहने का व्यसन पड़ जाने पर मनुष्य आत्मघोष (कौवा) जैसा लगता है जो अपना ही मान रटता है।

१३. यदि आप पर-छिद्रान्वेषी है तो समाज आपको मक्खी जैसा समझता होगा। दूसरों के दुर्गुणो को देखकर कहते फिरना वैसा ही है जैसा गलियो का कूडा गाड़ियों मे भरकर ले चलना। उससे अपने गदे स्वभाव का विज्ञापन होता है। दूसरों के सद्गुण जिह्वा पर रखना वैसा ही है जैसा कपड़े पर इत्र लगाना। इसके विपरीत दुर्गुणो को जिह्वा पर रखना वैसा ही है, जैसा किसी दुर्गन्धित पदार्थ को जेब में भरकर

चलना। किसीकी निन्दा करने के पूर्व निन्दक स्वय निन्दा का पात्र हो जाता है।

१४. यदि अपने अतिरिक्त अन्य सभीको आप धूर्त या विश्वास के अयोग्य मानते हैं तो आप स्वय स्वभाव के कच्चे एव सशयालु होगे। जो सबको बेईमान समझता या बनाता है, वह स्वय बेईमान होता है। विश्वास विश्वास से ही जमता है। जो स्वय विश्वासपात्र होता है, उसको दूसरे भी विश्वासपात्र मिलते है। जो सदेहग्रस्त होता है, उसको अपने स्त्री-बच्चो के ऊपर भी सन्देह होता है।

१५ यदि आप दूसरो के ही गुणगान करते है और स्वयं प्रतिष्ठित नही है तो आपका महत्त्व किसी चारण से अधिक न होगा। यदि आप गुणी है तो आपके गुणगायक भी होगे। दृश्य को दर्शक की कमी नही रहती।

१६. आत्मप्रशसक हीनकोटि का व्यक्ति होता है। मध्यमकोटि के मनुष्य की प्रशसा उसके मित्रगण भी करते है। उत्तम पुरुष की उसके शत्रु भी करते है। कर्ण की प्रशसा कृष्ण भी करते थे :

> स्वतः तथा मित्र-समाज से सदा,
> कहा नही कौन प्रशंसनीय है।
> गुणी वही है जिसके प्रभाव की,
> करें विरोधीजन भी सराहना।। (अगराज)

१७ यदि आपके मित्रों की सख्या अधिक है तो यह आपकी तेजस्विता, मिलनसारिता और विश्वासपात्रता का परिचायक है। सज्जन और शूरवीर सदैव अजातशत्रु होते है। यदि आपकी शत्रु-सख्या अधिक है तो आप स्वभाव, व्यवहार, पुरुषार्थ से कुटिल, असभ्य या असमर्थ होगे। सभवत: आप षड्यन्त्री, कटुभाषी या परद्वेषी होगे। अधिक सभव है कि आप अशक्त अतएव भयशील अतएव महाक्रोधी हों। इस

सर्प-स्वभाव के कारण लोग लाठी लेकर आपके पीछे पड़े रहते होगे। सर्प शरीर से निर्बल, स्वभाव से वहुत भीरु और उत्तेजित होने पर महाक्रोधी और दुस्साहसी होता है। तीनो वाते प्राय साथ चलती हैं : 'क्षीणा नरा. निष्करुणा भवन्ति।' मित्र और शत्रु की सख्या तुलना करते समय इस वात का ध्यान रखिए कि वीस मित्र बराबर हैं एक शत्रु के।

१८. दुर्बल व्यक्ति को जिस प्रकार साधारण जलवायु के परिवर्तन से जुकाम हो जाता है वैसे ही दुर्बल हृदयवाले साधारण वातो से 'छू' जाते है। मिथ्या अहकार से लोगो को मनोमालिन्य होता है। ऐसे व्यक्तियो को मित्र-सकट सदैव रहता है।

१९. मूर्ख, अकुलीन और अल्पज्ञ का प्रथम चिह्न यह है कि वह अपना ही मिथ्या विज्ञापन करता रहता है। 'विद्वान कुलीनो न करोति गर्वं, गुणैर्विहीना वहु जल्पयन्ति'—इस सम्बन्ध मे महामना सुकरात के इस मत को मानना चाहिए कि ससार मे सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करने का सरल और निश्चित उपाय यही है कि मनुष्य वास्तव में जैसा हो वैसा ही अपने को व्यक्त करे।[1]

जार्ज बर्नार्ड शॉ के इस मत को भी ध्यान मे रखना चाहिए कि दरिद्र बने रहने का एक अच्छा उपाय है—अपने को धनी बताना या धनी होने का ढोंग करना।[2]

क्षुद्र प्रकृति के व्यक्तियो की यह प्रवृत्ति होती है कि वे अपने प्रभाव

---

१ The shortest and surest way to live with honour in the world is to be in reality what we would appear to be

—Socrates

२. A good way of keeping poor is pretending to be rich

—G B Shaw.

का झूठा विज्ञापन करके दूसरों की दृष्टि मे अपने को उच्च दिखलाने का प्रयत्न करते है। किसी बड़े आदमी की साधारण जान-पहचान का वे अनुचित लाभ लेना चाहते है और लेते भी है, परन्तु एक अवसर ऐसा आता है जब उनकी रही-सही प्रतिष्ठा भी मिथ्या प्रतिष्ठा के साथ धूल मे मिल जाती है।

२०. यदि आप स्वय कीर्तिवन्त न होकर केवल पूर्वजों की कीर्ति के बल पर अपने को पुजवाना चाहते है तो यह आपका भ्रम है। चाणक्य ने लिखा है कि गुणी लोग अपने ही गुणों से प्रकाशित होते है, जन्म (अर्थात् जाति-कुल आदि) को कौन देखता है :

प्राकाश्य स्वगुणोदयेन गुणिनो
गच्छन्ति किं जन्मना।

पूर्वजो के यश पर ही रहनेवाले को हम आलू-वर्ग का प्राणी मानते है। आलू की तरह उसका सर्वस्व पूर्वजों की मिट्टी के भीतर गडा रहता है। स्वय यशस्वी होने पर पूर्वजो का यश सहायक होता है, न होने पर अपनी महिमा और भी घट जाती है, क्योकि लोग कहते है कि ऐसे उच्च कुल मे यह तुच्छ व्यक्ति कहां से पैदा हुआ। शॉ ने तो यहां तक कहा है कि किसी बडे आदमी का सम्बन्धी होना बड़ा दु खदायी है, क्योकि उसीके नाम से हमारा परिचय दिया जाता है, और हमारे स्वतन्त्र व्यक्तित्व की गणना ही नही होती।[1]

२१ धमकी देनेवाला सदा कायर होता है।[2] शक्तिवान् पुरुष धमकी नही देता। वह तो जो चाहता है उसको करके दिखा देता है। चौंकानेवाली बातों से लोगो को आकर्षित करनेवाला झूठा गिना जाता

१ It is maddening to be related to a celebrated person and never be valued for own sake —G B Shaw

२. Bullies are always cowards. —G. B Shaw.

है और प्राय: ईसप की कहानियो में वर्णित गडरिये की तरह धोखा खाता है। वह गड़रिया रोज 'भेडिया आया, भेडिया आया' कहकर चिल्लाता था। लोग सहायतार्थ दौडकर जाते तो देखते कि वहां कुछ नही था। एक दिन सचमुच भेडिया आ गया। गडरिया बहुत चिल्लाया, परन्तु लोग यह समझकर नही गए कि उसकी चौकाने की आदत ही है। भेडिया उसको खा गया।

२२. स्वाभाविक भीरुतावश प्राय: लोग प्रतियोगिता से घबराते है और ऐसे ही कामो मे हाथ लगाते है जिनमें प्रतियोगिता का भय नही रहता। वे डरते है कि कही विफल होने पर लोग उनकी हसी न उड़ाए। इससे उत्साह, साहस और आत्मविश्वास की कमी प्रकट होती है। मनस्वी व्यक्ति सदैव प्रतियोगिता का स्वागत करता है क्योंकि उससे आत्मयोग्यता प्रमाणित होती है; अपने बलाबल का ठीक पता चल जाता है। अमरीका के गत प्रेसिडेण्ट रूजवेल्ट ने एक बार अपने राजसचिव 'कार्डेल हल' से कहा था कि थोडी स्पर्द्धा या प्रतियोगिता की भावना उत्साहदायिनी होती है, क्योंकि वह प्रत्येक व्यक्ति में यह भावना जागरित रखती है कि वह अपने सहकर्मी से अपने को अधिक योग्य प्रमाणित करके दिखलाए, इसके कारण वे सच्चे भी बने रहते है।[1]

२३ यदि आप यह सोचते है कि भगवान आपका काम करेगा तो उस सर्वेश को आप अपना कुली बनाते है। कोई सत्ता-महत्ताधारी किसी-का सेवक होना स्वीकार नही करता। इस दुस्साहस के लिए सम्भवत: वह आपको दण्ड भी दे। 'होइहै सोइ जो राम रचि राखा'—यह

१. A little rivalry is stimulating, you know It keeps everybody going to prove that he is a better fellow than the next man. It keeps them honest too. —Roosevelt.

कर्महीनों और भाग्यहीनों का मंत्र है। शुक्र के शब्दों में नपुसक लोग ही कार्य-सिद्धि के लिए देवता के भरोसे बैठते है · 'क्लीबा दैवमुपासते।' और वन्दनीय बुद्धिमान लोग पौरुष ही को महत्त्व देते है · 'धीमन्तो वन्द्यचरिता मन्यन्ते पौरुष महत्।'

देवता को सहायतार्थ पुकारना अशक्तता का लक्षण है। इसका प्रबल प्रमाण यह है कि रोग से अशक्त होने पर प्राणी के मुख से स्वभावतः राम-नाम निकलता है। नीति का मत है कि पुरुषार्थी उद्योग से लक्ष्मी को प्राप्त करता है। 'देवता देते हैं'—ऐसा कापुरुष लोग कहते हैं; दैव को भूलकर पुरुषार्थ करो और यत्न करने पर भी सफलता न मिले तो देखो कि त्रुटि कहा है :

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी,
दैवं हि दैवमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या,
यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः॥

तुलसी ने भी लिखा है कि :

कादर मन कर एक अधारा।
दैव दैव आलसी पुकारा॥

स्वावलम्बन के बिना देवता का भी अनुग्रह नही मिलता। देव-बल होता है, परन्तु वह बाहर से नही आता; आत्मसाधना, बुद्धि-प्रयोग से ही उत्पन्न होती है। जो देवप्रिय होने की आशा मे बैठा रहता है वह बकरा, पशु, मूर्ख या पागल ही होता है। देवप्रिय के ये शाब्दिक अर्थ है।

सर्वोत्तम यह है कि आप अपने पुरुषार्थ को उद्दीप्त रखिए। इस विषय मे महावीर कर्ण को आदर्श मानना चाहिए। सूतकुल में पलकर आत्मपौरुष से उसने आत्मोत्थान किया; राज्य-स्थापना, दिग्विजय

की और निर्भय होकर पुरुषार्थ दिखाते हुए कर्मक्षेत्र में प्राण-त्याग किया, पुरुषार्थ से उसने देव कृष्ण तक को मोहित और मर्यादाभ्रष्ट कर दिया। राजसभा में कृष्ण के समक्ष कुरुराज द्वारा कही हुई अपनी लिखी यह कर्ण-प्रशस्ति हमे इस प्रसग मे याद आती है :

स्व-बाहु से अर्जित राज्य-कीर्ति के,
स्व-कर्म से संचित भाग्य के धनी।
हठोद्यमी, सत्य-पराक्रमी तथा,
अनन्य दानी नर-राज कर्ण हे॥

◇ ◇ ◇

स्वयं विधाता इनके ललाट की,
अदृष्ट-लेखा यदि मेटने लगे।
कभी न होंगे मन में हताश ये,
समर्थ जो हैं पुरुषार्थ-शक्ति से॥ (अगराज)

२४. जिसके काम में शीत, उष्ण, भय, प्रेम, धन तथा दारिद्र्य बाधक नही होते, वही पडित कहलाता है, ऐसा विदुर का मत हे :

यस्य कृत्यं न विघ्नन्ति शीतमुष्णं भयं रतिः।
समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पण्डित उच्यते॥ (महाभारत)

उद्योगी पुरुष ऋतु, साधन-असाधन की अपेक्षा नही करता। आलसी ही धूप, ठडक, बरसात और आर्थिक स्थिति से प्रभावित होता है। उद्योगी का प्रत्येक पल शुभ-मुहूर्त होता है। उसके लिए कुछ भी भारस्वरूप नही होता, क्योकि वह समर्थ होता है। व्यवसायी के लिए कोई स्थान दूर नही होता, विद्वान को कोई स्थान पराया नही होता, क्योकि वह जहा जाता है वही विद्वत्ता से सबको अपना बना लेता है; प्रियवक्ता को कोई पराया नही होता, क्योकि उसकी वाणी मे वशीकरण होता है :

कोऽतिभारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम्।
को विदेशः सुविद्यानां, कः परः प्रियवादिनाम्।। (पचतत्र)

यदि आप ऐसे नही है तो निरुद्योगी और खिन्न एव हताश होगे।

२५. यदि कामो को करने में आप अपने को असमर्थ पाते है तो यह काम की कठिनाई का नही, बल्कि आपकी अयोग्यता, अशक्तता और आत्महीनता का विज्ञापन है। कठिनाई का अनुभव बल, उत्साह की कमी और आलस्य से होता है। कार्लाइल के मत से अकर्मण्यता में अनन्त निराशा ही मिलती है।[1] उद्योगी व्यक्ति के सामने साध्य-असाध्य का प्रश्न नही उठता ; उसके लिए तो सभी कुछ साध्य होता है : 'उद्युक्ताना मनुष्याणां गम्यागम्य न विद्यते।' (मार्कण्डेय पुराण)।

यदि आप मनस्वी होगे तो कार्य की महत्ता को पहले देखेगे और कठिनाइयो की परवाह न करके उसको सफल करने मे तत्पर हो जाएगे। मनस्वी कार्यार्थी सुख-दुःख की परवाह नही करते · 'मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दु'ख न च सुखम्।' (भर्तृहरि)।

२६ यदि आपने अपने घर को अपना बन्धनागार बना लिया तो आप बाहरी जगत् के लिए अनुपयुक्त होगे। गृहमोही कभी उन्नति नहीं करता। वह चिरमोही (गधा) होकर घर की माया मे बधकर घर के आंगन मे ही नाचता रहता है और उसके लिए 'ज्यो तेली के बैल को घर ही कोस पचास' की उक्ति घटित होती है। वह स्त्री-बच्चो का मुह देखता हुआ पड़ा रहता है और कुछ दिनों में उसीका लटका हुआ मुह देखने के योग्य हो जाता है। निर्धन होने पर उसके स्त्री-बच्चे भी उससे विरक्त हो जाते है। विना बाहर जाए मनुष्य यथाजात (अर्थात् जैसा पैदा होता है वैसा ही मूर्ख) बना रहता है।

इस सम्बन्ध में हमे अंग्रेजो या मारवाडियों का आदर्श सामने

---

१. *In idleness there is perpetual despair.*

रखना चाहिए। 'जहा न जाए रवि, तहा जाए कवि' की तरह 'जहां न जाए गाड़ी, तहां जाए मारवाड़ी' की उक्ति कही जा सकती है। मारवाड़ी भी स्वदेश, स्वजाति, स्वकुल का अनन्य प्रेमी होता है, परन्तु वह बैठा नही रहता। व्यापार के लिए निकलने पर उसको गृहमोह नही सताता। देश-देशान्तरों मे जाकर वह धन-सग्रह करता है और उससे अपने घर की समृद्धि बढाता है। वह सब बातों में दूरदर्शी होता है, दूर के व्यापार-योग्य स्थानो को देखता है, आगे आनेवाले अवसर को पहले ही देख लेता है; किस काम मे आगे चलकर लाभ होगा, उसको पहचान लेता है और लक्ष्मी कितनी दूर पर खडी है, इसको समझकर ठीक मार्ग पर चलता है।

२७. यदि आप घर को एक जजाल मानते है तो यह आपकी भूल है। उसीके नियत्रण से आपकी स्वभावज उच्छृखलता और पशुता दबी रहती है। वह न होता तो आप अनाथालय मे पैदा हुए होते या पले होते। घर कितना भी बुरा हो, वह एक स्थान होता है जहा मनुष्य अन्तिम आश्रय लेता है। डॉक्टर जॉनसन ने सत्य ही लिखा है कि घर मे सुखी होना ही हमारी प्रत्येक आकाक्षा का अन्तिम ध्येय होता है।[१]

यदि घर मे आपकी डोरी कोई ठीक से पकडे रहे तो आप पतग की तरह चाहे जहा उड सकते है। डोरी टूटने पर कही न कही गिर जाएगे या अटक जाएगे।

२८. यदि आपकी किसी बात के लोग अनेक अर्थ लगाए तो उसका मतलब यह नही होगा कि आप असाधारण वक्ता है। निश्चय ही आपकी बाते भ्रमपूर्ण होगी, आप स्पष्टवक्ता न होंगे, आपके विचार

---

१ To be happy at home is the ultimate result of all ambitions. —Johnson.

अनिश्चित होगे अथवा आप छलवश 'किन्तु', 'परन्तु' के साथ बोलते होंगे। यह भी सम्भव है कि आप मनोभावो को व्यक्त करने की कला न जानते हों।

२९ अग्रेजी के एक विद्वान का कथन है कि अधिकाश लोग जब आपसे राय लेने आते है तो वास्तव में, वे अपने पूर्वनिश्चित विचारों के सम्वन्ध मे आपकी सहमति लेने आते है। इससे उनका कोई लाभ नही होता। उनका समर्थन कीजिए तो वे आपकी सम्मति को महामान्य मानेगे; उनके मत की सत्य आलोचना कीजिए तो वे आपकी बात को व्यर्थ समझेगे। चतुर व्यक्ति नये विचारो का सदैव स्वागत करता है और लोगो की स्पष्ट सम्मति लेकर अपनी अपूर्णता को पूर्ण करता है।

३०. आपकी वाते सुनते-सुनते यदि श्रोता ऊघने लगे या अन्य-मनस्क हो जाए तो इसका यह अर्थ है कि आप निरर्थक प्रलाप करते है, बहुवादी है, एक ही बात की पुनरावृत्ति करते हैं या आपकी बात-चीत की शैली प्रभावोत्पादक नही है अथवा श्रोता की दृष्टि मे आप स्वय प्रभावशाली नही हैं। यह भी हो सकता है कि आप आत्मप्रशसा या पर-निन्दा करते हो, जो दूसरे को प्रिय न लगती हो।

३१. खण्डन-मण्डन करनेवाला सरस वक्ता नही होता। सदा हा मे हां मिलानेवाला विचारहीन होता है। वाल की खाल खीचनेवाला सकीर्ण विचारो का माना जाता है और ईट का जवाव पत्थर से देने-वाला उद्दण्ड।

३२ यदि आप लोगो के वीच मे झंपते है तो सम्भवतः अत्यधिक एकान्तसेवी, सकोची, अनात्मविश्वासी या मानसिक क्लीव अथवा वहुत दवे हुए व्यक्ति होगे। आडम्वरी लोग भी झंपते या भडकते हैं

क्योकि बहुत बन-ठनकर निकलने पर भी उनको यह भ्रम बना ही रहता है कि अभी उनका शृ गार अपूर्ण है।

३३. यदि सभा-समाज मे आप सबके सामने निर्भय होकर नहीं बैठ सकते तो आपमे कोई स्वाभाविक, चारित्रिक या सामाजिक दुर्बलता होगी। सम्भव है, आपकी आर्थिक स्थिति ऐसी हो कि आप दूसरों से अपने को छोटा मानते हों। हो सकता है कि आप स्वभाव से ही उदासीन हो, मलिन या एकान्त-प्रेमी हो। सम्भव है आप षड्यन्त्री हों। यह भी हो सकता है कि आपकी शिक्षा ऐसी हुई हो कि आप दूसरों के पिछलगुए ही बने रहे।

कुछ भी हो, यदि आप यथायोग्य स्थान के अधिकारी बनने का प्रयत्न नही करते, तो उससे आपकी भीरुता और अयोग्यता प्रकट होती है। उन्नतिशील व्यक्ति अपने को आकर्षण का केन्द्र बनाने का प्रयत्न करता है तथा अवनतिशील व्यक्ति अपने को छिपाने का। प्रेसिडेण्ट रूज़वेल्ट का लडका अपने पिता की मनोवृत्ति को देखकर उनके विषय मे कहता था कि जब वे किसीके विवाहोत्सव में जाते थे तो उनकी आकाक्षा यह रहती थी कि वे ही वर होते तो कितना अच्छा होता; किसीकी शव-यात्रा मे सम्मिलित होने पर वे ही शव होते तो कितना आनन्द आता, क्योकि तब सबकी दृष्टि उन्हीपर लगी होती। समाज के सामने अपने को इस तरह खोलने की इच्छा उसीमे उठेगी जो उन्नतिकाम हो और जिसका सामाजिक आदर्श ऊचा हो। ऐसा व्यक्ति विश्वास रखता है कि चाहे हज़ार आंखे उसकी ओर देखे, उसका रूप कलकहीन लगेगा। जिसके हृदय में भय का दुर्विचार रहता है, वही अपराधी बनकर कोने में बैठता है।

३४. जिसमे आत्मसम्मान नही होता, वही सबके सामने हाथ जोडे खड़ा रहता है। स्वावलम्बी पुरुष स्वात्माभिमानी होता है।

अकर्मण्य, आलसी, कापुरुष और अपराधी लोग ही बात-बात में द्रवित होते है। यदि आत्मप्रभाव द्वारा आप अपनी टोपी या पगडी की मर्यादा नही बचा सकते, तो अच्छा होगा कि उसके स्थान पर किसीका जूता धारण करे।

३५. नतमस्तक होना या कमर झुकाकर चलना निश्चय ही अशक्तता का लक्षण है। प्रमाण प्रत्यक्ष है—वृद्धावस्था में मनुष्य ज्यों-ज्यों अशक्त होता जाता है, त्यों-त्यों उसकी कमर झुकती जाती है और गर्दन भी। मेरुदण्ड को उन्नत और भालखण्ड को उच्च रखने से पुरुषार्थ प्रकट होता है। आत्मसयमी, मनस्वी एव शक्तिशाली ही अपने शरीर को दण्डवत् खड़ा रखता है, अपराधी, भीरु एव कापुरुष अकारण दण्डवत् करने का या पैर पडने का आदती हो जाता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि शरीर चाहे छोटा हो या बडा, वह जब सीधा उठता रहता है तभी मनुष्य का व्यक्तित्व प्रभावशाली होता है। उसी समय ज्ञात होता है कि उस मनुष्य के उन्नत शरीर के रूप में उसकी मनुष्यता या आत्मशक्ति का मानदण्ड सामने है। अपने ही छन्दोबद्ध शब्दों मे हम इसीको अधिक आकर्षक ढग से यो कहते है:

उठा हुआ कांचन-शैल-शृंग-सा,
शरीर था शोभित अंगराज का।
प्रमाण था आत्म-विकास का यथा;
मनुष्यता-मापक मानदण्ड था। (अगराज)

३६. यदि आपको मित्रता निभाने में सदैव कठिनाई जान पड़े तो प्रथम अपने स्वभाव को दोष दीजिए। सम्भवतः आप स्वार्थवश किसीसे मित्रता स्थापित करते होंगे और स्वार्थ भग्न होने पर आपकी मित्रता भी खडित हो जाती होगी। हो सकता है कि आपके स्वभाव में अहकार, कृतघ्नता, दुर्विनीतता और दम्भ हो जिनके कारण जल्दी-

जल्दी आपको मित्र-सकट भोगना पडता हो। यह भी सम्भव है कि आप विना सोचे-विचारे किसीको भी सामने पाकर उसको अपना मित्र बना लेते हों और बाद में धोखा खाकर चेतते हो। कुछ भी हो, इतना मानना चाहिए कि मित्रता बार-बार बदलने की वस्तु नहीं है। उसको निभाने से ही अपना गौरव बढता है और अपनी शक्ति-प्रतिष्ठा स्थिर होती है। यदि आपका स्वभाव निर्दोष है तो ऐसे ही व्यक्ति को मित्र वनाइए जो सुख मे साझीदार होने का दुष्प्रयत्न न करे और विपत्ति मे पूरा साथ दे। स्वय भी इसी आदर्श का पालन कीजिए और सयत्न मित्रता की रक्षा कीजिए, क्योकि 'सर्वथा सुकर मित्र, दुष्कर प्रतिपालनम्'—इस सम्बन्ध मे इस युक्ति को याद रखिए।

सज्जन ऐसा कीजिए, ढाल सरीखा होय।
सुख में तो पीछे रहे, दुख मे आगे होय॥

३७. यदि आपके कुछ मित्र ऐसे हैं जिनसे आप लुक-छिपकर ही मिलते है तो आपका जीवन भेदपूर्ण होगा। आप कुचक्री हो सकते है, आपकी लीलाएं विचित्र हो सकती है। एक अग्रेजी कहावत है कि मनुष्य अपनी उस संगति के कारण पहचाना जाता है जिसको कि वह समझता है कि कोई जानता नही।[1]

३८. यदि किसी मनोरजक कला से आपको स्वाभाविक अनुराग नही है तो आप महाशुष्क होगे और अविश्वास के पात्र भी। आपके स्वभाव में कठोरता, जड़ता, निराशा, मलिनता होगी और विचारों में संकीर्णता। भर्तृहरि ने कुछ सोच-समझकर ही कहा था कि साहित्य-

---

१. A man is known by the company he thinks nobody knows he is keeping

सगीत-कला से हीन मनुष्य बिना सींग-पूछ का पशु होता है :

साहित्य - संगीत - कला - विहीनः,
साक्षात् पशुः पुच्छ-विषाणहीनः।

३९. ईश्वर-वन्दना के बाद समाचारपत्र पढना ही आजकल का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण काम है। यदि आप उनको नही पढते तो समय से पीछे रहेगे। यदि उनमे बेसिर-पैर की बाते ही पढते है तो अपनी ज्ञान-हत्या करते है। समाचारपत्रों से देशसमाज और मानव-विचारों की प्रगति का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

४० यदि आप अत्याचारी के सामने झुक जाते है तो आप कापुरुष, निर्वीर्य होगे। यदि अपने समक्ष झुकनेवाले के सामने शेर बन जाते है तो आप हृदय से शृगाल होंगे। झरबेरी के जगल मे शेर बन जाने से बिल्ली शेर थोडे बन जाती है। सौजन्य और बडप्पन इसमें होता है कि जो आपका सम्मान करता है उसका आप भी सम्मान करे। शेखसादी का उपदेश है कि जो तुम्हारे सामने झुकता है, उसके सामने तुम भी झुक जाओ। निर्बल पर क्रूरता करके आप उसको किसी समय जीवन से हताश बना देगे और इसको स्मरण रखिए कि जीवन से हताश व्यक्ति का आक्रमण बडा भयकर होता है। तुलसीदास की इन पक्तियो को इस सम्बन्ध में याद रखिए .

अतिशय रगड़ करै जो कोई।
अनल प्रकट चन्दन ते होई॥ (मानस)

४१ सुप्रसिद्ध विद्वान गेटे ने लिखा है कि मनुष्य अपने स्वभाव या चरित्र का ऐसा स्पष्ट विज्ञापन और किसी क्रिया से नही करता जैसे कि किसी वस्तु-विशेष की ओर देखकर हसने से।[1]

१. By nothing do men show their character more than by the things they laugh at

कैसे अवसर पर मनुष्य को हसी आती है और कैसे आती है—इसीसे उसके स्वभाव का पता चलता है। सभ्य व्यक्ति हास्य-विनोद में भी सभ्य रहता है। निर्लज्ज व्यक्ति दूसरों का उपहास करता है, दूसरो की त्रुटियो पर क्रूरता की हसी हसता है। गम्भीर, अस्वस्थ, चिन्तित या मलिन स्वभाव के व्यक्ति कम हसते है। असभ्य, अकर्मण्य, निश्चिन्त, चंचल और विनोदी स्वभाव के लोग अट्टहास करते है। शीलवान और सुकुमार स्वभाव के व्यक्ति मुस्कान-प्रेमी होते है। धूर्त और चाटुकार केवल कठ से हसते है तथा सहृदय और निर्भीक व्यक्ति हृदय के भी नीचे नाभि से। बड़ों के साथ खिलखिलाना अनधिकार चेष्टा है; नौकरो या हीन व्यक्तियों के साथ हास्य-व्यग्य करने से प्रभुत्व घटता है। लक्ष्मण ने शूर्पणखा से व्यग्य किया था तो राम ने उसको यही उपदेश दिया था कि दुष्ट-बुद्धि और निम्नकोटि के मनुष्यों के साथ परिहास न करना चाहिए :

क्रूरैरनार्यैः सौमित्रे, परिहासः न कथञ्चन। (रामायण)

४२ यदि स्थानीय समारोहों में आप अप्रयास आमत्रित होते हैं तो हम मानेगे कि समाज मे आपका एक स्थान है। आमत्रित होकर जाने पर यदि आपका यथोचित सत्कार न हो तो हम समझेंगे कि आप केवल पडोसी होने के नाते या समारोह की जनसख्या बढाने के लिए ही बुलाए गए थे। यदि कही जाकर आप स्वय अपने को धन्य मानते है तो समझ लीजिए कि आप अभी सम्मान के योग्य नही है। यदि दूसरे लोग आपके दर्शनो से अपना अहोभाग्य समझे तो प्रथम तो उनकी सज्जनता को श्रेय दीजिए, तदुपरान्त सन्तोष कीजिए कि आप नगण्य नही है।

४३ अनुभवी डॉक्टरो का कहना है कि तीन बीमारो के पीछे एक ऐसा बीमार होता है जिसको वास्तव मे कोई बीमारी नही होती।

अतएव कल्पित बीमारी से पीड़ित होकर निरुत्साह न बनिए। ठीक-ठीक देख लीजिए कि आपका मन बहाना करके सुस्ताना तो नहीं चाहता।

४४ यदि आपके कान मे कोई बात पहुचते ही नगर-भर मे फैल जाती है तो आप बड़े भयकर जीव होगे। कोई आपका विश्वास न करता होगा। मत्र को गुप्त रखने से मनुष्य का बड़प्पन प्रकट होता है। बहुत-से लोग बड़ी से बड़ी बात को पचा लेते हैं; वे महापुरुष होते है। हलके लोग छोटी बात पाकर भी चिनगारी से पैट्रोल के पीपे की तरह जलने लगते हैं।

४५. यदि आप बच्चों के बाप बने रहना चाहते हैं तो उनके अध्यापक न बनिए। अध्यापक बनते ही आप उनके प्रेम से वचित हो जाएगे और आपकी पदवी आपसे छिन जाएगी।

४६. यदि आप अपनी स्त्री के स्वामी है तो सुखी होगे। सखा होगे तो सखी जैसे बनकर रहते होंगे क्योंकि स्त्रियों के सखा नही होते। दास होगे तो मर्द नही बल्कि लतमर्द होगे।

४७. यदि आप किसी चचला के कथित पति है तो आपके हृदय-आकाश में दुःख के धाराधर दिन-रात उमड़े रहते होगे। यदि आप चण्डेश हैं तो चण्डेश (शिव) की तरह दिन मे कई बार हलाहल घूटते होंगे। भगवान आपको शाति दे। शाति याचना के पूर्व न्यायपूर्वक एक बात को देख लीजिए, कहीं आप ही ने तो अपनी नारी-उपासना से अपनी पत्नी को स्वेच्छाचारिणी और अभिमानिनी नहीं बना दिया है। यह भी देख लीजिए कि कहीं आपका पुरुपत्व तो नहीं खण्डित है। इसका भी पता लगा लीजिए कि आपकी स्त्री पहले सुशीला होकर आपके साथ विवाहित होने पर तो दुःशीला नहीं हो गई। यदि आप निर्दोप है तो किसी दुष्टा के कारण अपने जीवन को नष्ट न कीजिए।

४८. यदि आपके घर मे पधारते ही आतक का राज्य स्थापित हो जाए तो आपसे बड़ा अभागा कौन होगा ? आप अवश्य कायर होगे और बाहर का क्रोध आकर घर में अपने आश्रितो पर उतारते होगे। 'ठोकर लगी पहाड़ को फोडे घर की सील' की उक्ति आप ही के किसी पूर्वज के लिए लिखी गई होगी।

४९ शत्रुनाश के निमित्त देवोपासना निष्फल होती है। साधु-महात्मा की तरह विश्वात्मा भी किसी अपकर्म मे सहायक नही होता। अच्छा हो, यदि उतने समय मे आप डड-बैठक करे, जिससे आपके सुदृढ़ शरीर को देखकर आपके शत्रु आपसे भयभीत हो। प्रार्थना मे बड़ा बल होता है, परन्तु तभी जब उसके साथ सद्भावना हो।

५०. यदि आप स्वय ही अपने आदर्श है तो बहुत उन्नति न कर सकेंगे। अपने ही पैरों की ओर देखनेवाला व्यक्ति आगे का मार्ग कैसे देखेगा ?

५१ अनधिकारी होते हुए भी कोई उच्च पद पाकर यदि आप पद का मद प्रदर्शित करते है तो आपकी दशा उस बौने जैसी होगी जो पहाड की चोटी पर खडा होकर यह सोचता हो कि नीचेवाले उसको विशालकाय समझते होगे। दुबला-पतला आदमी यदि हाथी पर बैठा दिया जाए तो क्या वह मोटा हो जाएगा ? अयोग्य होकर भी यदि आप किसी युक्ति से उच्च-पदस्थ हो गए है तो आपको अभिमान न करना चाहिए। राजमहल के कगूरे पर बैठने पर भी कौआ गरुड़ की पदवी नही पा सकता : 'प्रासादशिखरस्थोपि काको न गरुडायते।'

५२ एक अग्रेजी कहावत है कि यदि कोई व्यक्ति इसकी चिन्ता न करे कि अमुक कार्य करने का श्रेय किसको मिलेगा तो वह प्रत्येक कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न कर सकता है। बहुत-से कार्य इसलिए बिगडते है कि इनमे से प्रत्येक यह चाहता है कि सारा श्रेय उसीको

मिले, इसलिए सब एक-दूसरे के साथ पूर्ण सहयोग नही करते। यदि आप सफलता चाहते है तो श्रेय के शेयर (हिस्से) औरो को बाटिए जिससे वे भी उस काम मे हाथ बटाए।

५३. यदि आप शीघ्र रीझनेवाले होगे तो आपको बहुत-से वादे भी करने पडते होगे, और आप उनको पूरे भी न कर पाते होंगे। एक बात और याद रखिए—शीघ्रवरदानी को कोई न कोई शीघ्रकोपी उसी प्रकार मिल जाता है, जैसे शिव को भस्मासुर मिल गया था।

५४. स्वप्न मे भी यदि आप भयानक दृश्य देखते है तो उससे अपनी मानसिक भीरुता का अनुमान कीजिए। यदि आप सुन्दरी स्त्रियो को देखते है तो अपनी अतृप्त प्रेम-वासना की ओर ध्यान दीजिए। यदि स्वप्न मे प्रीतिभोज ही दिखलाई पड़े तो समझिए कि आपको तृप्ति-दायक भोजन नही मिल रहा है। बेसिर-पैर के स्वप्न दिखाई पड़े तो अपनी पाचन-शक्ति और चित्त की अस्तव्यस्तता को सुधारिए। प्रत्येक दशा मे मन के बोझ को उतारिए। प्रगाढ निद्रा मे स्वप्न घातक होते हैं। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक पहले स्वप्न-विज्ञान पर विश्वास नही करते थे। अब वे बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखकर यह प्रमाणित करते है कि स्वप्नो से आपकी पूरी मनोदशा पढ़ी जा सकती है क्योंकि स्वप्नावस्था मे चतुर चेतन मन प्रसुप्त रहता है, अतएव भीतर की वृत्तिया बुद्धि-कौशल से छिपाई नही जा सकती। वे स्वप्न-मच पर खुलकर क्रीड़ा करने लगती हैं।

५५. दभी और मूर्ख लोग चलते समय पैर पटकते हैं। सुशील व्यक्ति मृदु गति से चलता है। सामुद्रिक मत से पैर पटककर चलना दुर्भाग्य-सूचक होता है। इसका यह अर्थ नही कि चोरो की तरह दबे पाव चलने से आप सौभाग्यशाली माने जाएगे। अभिप्राय यह है कि न

राक्षस-गति से चलिए, न चोर-गति से, बल्कि मनुष्य की तरह सतुलित गति से चलिए ।

५६. यदि आप व्यवसायी है और बहुत-से ग्राहकों के साथ व्यवहार करते है तो आपके लिए विनम्र, सुशील और मृदुभाषी होना आवश्यक है। आप गम्भीर या अहकारी बनकर बैठेंगे तो ग्राहक खो देगे । एक अनुभवी व्यक्ति ने कहा है कि जो हसमुख न हो, उसे दुकानदारी का काम न करना चाहिए। ग्राहक आपके माल पर उतना ही रीझते है जितना आपके शिष्ट व्यवहार पर। वे आपकी वस्तु का ही नही, बल्कि आपकी सरलता और सज्जनता का भी मूल्य देना चाहते है । बडी कम्पनियों के विक्रय-विभाग मे आजकल लड़किया विक्रयिका बनाकर नियुक्त की जाती है। इसका रहस्य यही है कि वे अपनी स्वभाव-सुलभ कोमलता से ग्राहक को आकर्षित कर लेती है ।

५७. एक विलायती समाजशास्त्री ने गृह-कलह निवारणार्थ कुछ नियम प्रकाशित किए है। उनमें एक यह है कि प्रतिमास अपनी स्त्री-बच्चों को कुछ पैसे जेबखर्च के तौर पर दे देने चाहिए, जिन्हे वे अपना समझकर खर्च करने या बचाने के लिए स्वतन्त्र हो। इससे उनके मन में यह बात नहीं जमने पाती कि वे एक-एक पैसे के लिए आपपर अवलम्बित है। ऐसा न करने से उनके मन मे आपके प्रति ईर्ष्या-द्वेष की भावनाए उठ सकती है ।

५८. यदि आप किसी ओषधि व चूर्ण का सेवन नियमित रूप से करते है तो आप शरीर से अस्वस्थ या स्वभाव से व्यसनी होगे। ओषधिया जब दैनिक आहार बन जाती है तो शरीर की स्वाभाविक क्रिया मन्द पड़ जाती है। स्वाभाविक आहार अन्न ही है।

५९. किसी कार्य मे विफल होकर हताश हो जाना कापुरुपता है। गिरने मे हानि नही है, गिरकर पड़े रहने मे हानि होती है। निरुद्योगी

व्यक्ति एक बार गिरकर वही कराहता पड़ा रहता है; शूरवीरों के तो कवध भी खड़े होकर लड़ते है।

६० यदि कभी-कभी आपके मन मे आत्मघात के विचार उठते हैं तो सत्य मानिए, आपकी आत्मा अपराधी है; आप अकर्मण्य, स्वार्थी, साहसहीन, क्रूरबुद्धि है। आपको अवसर मिले तो आप किसीकी हत्या करके अपने स्वार्थ की सिद्धि कर लेगे। ऐसा अवसर नही मिलता, इसलिए आप अपनी हत्या करके अपनी हत्या-प्रवृत्ति को शान्त करना चाहते है। आपका गृह-जीवन विफल होगा। शारीरिक व्यथा कितनी भी भयकर हो, उसके कारण आत्मघात का विचार नहीं उठता। केवल मानसिक पीड़ा, ग्लानि, लज्जा, भीरुता, असहनशीलता, असमर्थता और क्रोधाधिक्य मे आत्मनाशी विचार उठते है। अतएव अपनी मनोव्याधियो का उपचार कीजिए। उपचार यही है कि आशा को बलवती बनाकर किसी काम मे लग जाइए।

६१ कभी-कभी ऐसा होता है कि छोटे-छोटे कार्यो मे हमें निरन्तर सफलता मिलती जाती है, और जहा सफलता की आशा नही रहती वहा भी सफलता मिल जाती है। उस समय यह मानना चाहिए कि समय अपने अनुकूल है, अपना भाग्योदय हो रहा है। उस समय कोई भी महत्त्वपूर्ण कार्य करने से सफलता मिलने की अधिक आशा होगी। इसलिए तत्त्वज्ञो ने कहा है कि जव समय मुस्कराता हुआ मिले तो उससे अधिकाधिक लाभ ले लेना चाहिए। दैष्टिक विधान (भाग्य-विधान या पूर्वनिश्चित कर्म) मे कोई विश्वास करे या न करे, इतना मानना पड़ेगा कि अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितिया चुपचाप भी आकर हमारी जीवनदशा पर प्रभाव डालती है। वायु-मण्डल में असख्य तरगे है जो हमारे शरीर को ही नही, जीवन को भी स्पर्श करके उसकी गति मे साधक या बाधक बन जाती है।

६२. यदि आप अत्यधिक आशावादी है, तो कल्पनाजीवी होंगे और परिणामत: निराशा के बहुत-से झोके निरन्तर सहते होगे, क्योंकि कल्पना-जगत् के निर्मित और अतिरजित सुख प्रत्यक्ष जगत् में नहीं मिलते। 'मति अति रक मनोरथ राऊ' की मनोवृत्तिवाले ही उग्र आशावादी होते है। वे मनमोदक खाते है, आकाश-गगा में नहाते हैं, मृगमरीचिका का जल पीते है और आकाश-कुसुम लेकर पश्चिम दिशा मे सूर्य भगवान का आह्वान करते है। ऐसे लोगो के चरण प्रायः गलत रास्ते पर पड़ते है, क्योंकि उनकी दृष्टि कहीं और तैरती रहती है। निराशावादी कर्म को अधर्म समझता है, कल्पित भय से पीड़ित और सन्देहग्रस्त रहता है। वह सर्वथा विश्वासशून्य होता है।

६३. वर्तमानकाल में रहने पर न तो अधिक प्राचीन और न अधिक अर्वाचीन होना चाहिए। समय के साथ चलना चाहिए। देश-काल सभी परिवर्तनशील है और परिवर्तन ससार का निश्चित धर्म है। अतएव सामयिक रीति-नीति का अनुकरण करना चाहिए। शेखसादी की यह बात एक अश तक मान्य है कि जब तूफानो के देश मे पहुचे तो तू भी अपनी एक आंख बन्द कर ले। इसका अर्थ यह नहीं है कि विलायत जाने पर अपनी जातीयता और सभ्यता का परित्याग कर देना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि व्यावहारिक जगत् मे 'कालानुवर्त्ती भव' इसका ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि प्राचीनता और आधुनिकता का विपय सम्मिश्रण न हो। यदि आप हवन करते है तो घी से कीजिए, वनस्पति घी से नही; मन्दिर में जाते है तो शख बजाइए, मोटर का 'हार्न' नही; दफ्तर जाते है तो जूते पहनकर जाइए, खडाऊ नही।

६४ व्यक्तिगत चरित्र का प्रभाव जीवन के प्रत्येक कार्य पर पड़ता है। चरित्र तो व्यक्ति के साथ लगा ही रहता है। एक अग्रेजी विचारक के अनुसार जो व्यक्ति निजी जीवन मे दुर्जन रहता है वह सामाजिक

जीवन मे सज्जन नही हो सकता, क्योकि स्थान-परिवर्तन होने पर भी व्यक्ति तो वही रहता है।[1]

निवेदन

अपने गुणो-अवगुणो को इन उत्तरो से नापिए और देखिए कि आप कहां छोटे पडते है। इनके आधार पर आप दूसरो को भी देखिए। परन्तु सर्वप्रथम आत्म-निरूपण कर लीजिए। आत्म-वचना से आप स्वय धोखे मे रहेगे। यदि आप स्वय अपने को सुधारे बिना यह चाहे कि समाज आपके बनावटी रूप को असली मान ले, तो यह आपका आत्म-विभ्रम है। समाज के सूक्ष्मदर्शन-यंत्र के आगे मानव-चरित्र की छोटी-छोटी बाते भी स्पष्ट दिखलाई पडती है। आप मुह मे ताला लगाकर बैठे, तो आपके व्यवहार-कर्म आपकी आत्मकहानी सबको सुनाने लगते है : करतूती कहि देत आप कहिए नहि साई।

१. He who acts wickedly in private life can never be expected to show himself noble in public conduct, for it is not the man, but only the place that is changed.

१०. चयनिका

मंगल-सूत्र

१

असतो मा सद्गमय।—असत् से हमें सत् की ओर ले चलो।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।—अधकार से हमे प्रकाश मे ले चलो।
मृत्योर्मा अमृत गमय।—मृत्यु से हमे अमरता की ओर ले चलो।
(बृहदारण्यक उपनिषद्)

२

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा व सुसहासति॥ (ऋग्वेद)

—तुम्हारा अभिप्राय एक समान हो, तुम्हारा अन्तःकरण एक समान हो, और तुम्हारा मन एक समान हो, जिससे तुम्हारा सुसाह्य होगा, अर्थात् सघशक्ति की दृढता होगी।

३

'सत्य हि परम बलम्'—सत्य ही परम बल है। भीष्म ने युधिष्ठिर को अपनी मृत्यु के पूर्व यह उपदेश दिया था।

४

'मनस्ते महदस्तु च'—तू सदैव अपने मन को महान बनाए रख। युधिष्ठिर के लिए कुन्ती का यही अन्तिम उपदेश था।

५

'जीवितेनापि मे रक्ष्या कीर्तिस्तद्विद्धि मे व्रतम्'—चाहे हमारे प्राण भले ही जाए, पर अपनी कीर्ति की रक्षा करना मेरा व्रत है।—सूर्य ने

जब महारथी कर्ण से कहा कि तू अपने कवच-कुण्डल इन्द्र को दान में न देना, नही तो आयुर्बल क्षीण हो जाएगा, और जीवन ही नष्ट हो जाएगा, तो मरने पर तेरी कीर्ति किस काम आएगी : 'मृतस्य कीर्त्या किं कार्यम्'—तब कर्ण ने उपर्युक्त उत्तर दिया था।

६

उच्छ्रयस्व महते सौभगाय (ऋग्वेद)—महान सौभाग्य की प्राप्ति के लिए उन्नतिशील बनो।

७

'न मृत्यवेऽवेतस्थे कदाचन' (ऋग्वेद)—मै मरने के लिए कदापि नहीं पैदा हुआ हूं।

८

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥ (ऋग्वेद)

—हे देवगण! हम अपने कानों से कल्याणकर वचन सुने, हम नेत्रो से मगलमय वस्तुएं देखे, हम शरीर से दृढ और ससत्त्व होकर तुम्हारी स्तुति करके ईश्वर द्वारा निर्धारित आयु को भोगे।

९

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः (पतञ्जलि)—चित्त की वृत्तियो को वश में रखना ही योग है।

१०

भैषज्यमेतद् दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत्। (महाभारत)

—दु.ख को दूर करने की एक ही अमोघ ओषधि है—मन से दुःखो की चिन्ता न करना।

११

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥ (गीता)

—मनुष्य को उजित है वह स्वय ही आत्मोद्धार करे और अपनी अवनति अपने-आप न करे। मनुष्य अपना मित्र या शत्रु स्वयं ही होता है।

उद्योग करते रहो

१

आस्ते भग आसीनस्य ऊर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगः। चरैवेति, चरैवेति॥

—जो मनुष्य बैठा रहता है, उसका सौभाग्य भी बैठा रहता है। जो उठकर खड़ा हो जाता है, उसका सौभाग्य भी खडा हो जाता है। जो स्वयं शिथिल रहता है, उसका सौभाग्य भी सोता रहता है। जो उठकर चल पड़ता है, उसका सौभाग्य भी सक्रिय हो जाता है—इसलिए चलते रहो, चलते रहो।

२

चरन्वै मधु विन्दति चरन्स्वादुमुदुम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरन्। चरैवेति, चरैवेति।

जो मनुष्य गतिवान रहता है, वही मधु पाता है, वही स्वादिष्ट फल खाता है। परिश्रमी सूर्य को देखो, जो कभी आलस्य नही करता। अतएव चलते रहो, चलते रहो।

३

कलिः शयानो भवति, संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति, कृत सम्पद्यते चरन्। चरैवेति, चरैवेति॥

(एतरेय ब्राह्मण)

—पड़े सोते रहना कलियुग है, ऊघते रहना ही द्वापर है, उठ बैठना ही त्रेता है और चल पडना ही सतयुग है। अतः चलते रहो, चलते रहो।

४

उदीर्घ जीवो असुर्न आगादप प्रागात्तम आ ज्योतिरेति ।
आरैक् पन्थां यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ।। (ऋग्वेद)

—मनुष्यो ! उठो, हमारे शरीरों को सचालित करनेवाला प्राण उदय हो गया, अन्धकार विनष्ट हो गया, प्रकाश आ गया है। उषा ने सूर्य की यात्रा का मार्ग वना दिया है । जिस देश में उषा अन्न देकर हमारी वृद्धि करती है, हम उसी ओर जाएं। अर्थात् प्रभात होते ही कार्यक्षेत्र मे प्रवेश करो।

५

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ।। (पचतंत्र)

—कार्य मनोरथ से नही, उद्यम से सिद्ध होते है। सोते हुए सिंह के मुह मे मृग अपने-आप नही चले जाते।

बुद्धि-बल

१

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ।। (गीता)

—हे पार्थ ! जिस बुद्धि से यह ज्ञान होता है कि किस कार्य को करना चाहिए और किस कार्य से अलग रहना चाहिए, कौन-सा काम करने के योग्य है और कौन-सा नही, कहा डरना चाहिए और कहा नही तथा किस बात से हम बध जाएगे और किससे स्वतन्त्र हो जाएंगे, वह सात्त्विक बुद्धि है—निश्चित निर्णय करनेवाली सद्बुद्धि।

२

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।
अयथावत् प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ।। (गीता)

—धर्म-अधर्म, कार्य-अकार्य का ठीक-ठीक निरूपण जो बुद्धि न कर सके, उसको राजसी कहते है—सन्देहग्रस्त बुद्धि ।

३

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥(गीता)

—जो बुद्धि धर्म को अधर्म मानकर सभी बातों मे विपरीत निर्णय करती है, उसको तामसी बुद्धि कहते है—दुर्बुद्धि ।

४

मोक्षस्य न हि वासोऽस्ति न ग्रामान्तरमेव वा ।
अज्ञानहृदयग्रन्थिनाशो मोक्ष इति स्मृतः ॥ (शिव-गीता)

—मोक्ष किसी स्थान पर रखा हुआ नही मिलता और न उसको ढूढ़ने के लिए किसी दूसरे गांव को ही जाना पडता है। हृदय की अज्ञान-ग्रन्थि का नष्ट होना ही मोक्ष कहा जाता है ।

५

शोकः क्रोधश्च लोभश्च कामो मोहः परासुता ।
ईर्ष्या मानो विचिकित्सा कृपाऽसूया जुगुप्सता ।
द्वादशैते बुद्धिनाशहेतवो मानसा मला ॥(कालिकापुराण)

—शोक, क्रोध, लोभ, काम, मोह, आलस्य, ईर्ष्या, मान, सन्देह, पक्षपात, गुणवान के प्रति दोपारोपण, निन्दा—ये बारह मानस-मल है जिनके कारण बुद्धि नष्ट होती है ।

६

यः सततं परिपृच्छति शृणोति सन्धारयत्यहर्निशम ।
तस्य दिवाकरकिरणैर्नलिनीव विवर्द्धते बुद्धिः ॥ (पचतन्त्र)

—जो सदा पूछता, सुनता, रात-दिन धारण करता है, उसकी बुद्धि सूर्य की किरणों से कमलिनी के ससान बढती है ।

७

बुद्धि श्रेष्ठानि कर्माणि बाहु मध्यानि भारत।
तानि जङ्घाजघन्यानि भारप्रत्यवराणि च॥ (महाभारत)

—बुद्धि से कार्य करनेवाले श्रेष्ठ होते है, बाहु से कर्म करनेवाले मध्यम श्रेणी के। जघा पीड़ित करनेवाले निकृष्ट होते है—वे केवल भार ढोते हैं।

८

बुद्धेर्बुद्धिमतां लोके नास्त्यगम्यं हि किंचन।
बुद्ध्या यतो हता नन्दाश्चाणक्येनासिपाणयः॥ (पचतन्त्र)

—बुद्धिमानों की बुद्धि के सम्मुख ससार में कुछ भी असाध्य नही है। बुद्धि से ही शस्त्रहीन चाणक्य ने सशस्त्र नन्द का नाश कर डाला।

९

दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू याभ्यां दूरे हिनस्ति सः। (पचतन्त्र)

—बुद्धिमान की भुजाए बडी लम्बी होती है, जिनसे वह दूर से वार करता है।

१०

शस्त्रैर्हता न हि हता रिपवो भवन्ति,
प्रज्ञाहतास्तु रिपवः सुहता भवन्ति।
शस्त्रं निहन्ति पुरुषस्य शरीरमेव,
प्रज्ञा कुलञ्च, विभवञ्च, यशश्च हन्ति॥ (पचतन्त्र)

—शस्त्र से शत्रु का पूर्ण विनाश नही होता। बुद्धि द्वारा नष्ट किए हुए शत्रु का लोप ही हो जाता है। शस्त्र से पुरुष का शरीर ही नष्ट होता है, बुद्धि के प्रहार से तो वश-वैभव, कीर्ति सभी विनष्ट हो जाते है।

वाणी और यश

१

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रासखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि ॥ (ऋग्वेद)

—जिस प्रकार सूप से सत्तू निकाला जाता है, बुद्धिमान लोग उसी प्रकार बुद्धि-बल द्वारा परिष्कृत भाषा को प्रकट करते है। उस समय उनको अपने अभ्युदय का ज्ञान रहता है। उनकी वाणी मे मगलमयी लक्ष्मी निवास करती है।

२

सर्वे नन्दन्ति यशसागते न सभासाहेन सख्या सखायः।
किल्विषस्पृत् पितुषणिर्ह्येषामरं हितो भवति वाजिनाय ॥ (ऋग्वेद)

—यश मित्र का काम करता है, वह सभा-समाज से प्रधानता प्राप्त कराता है। इसको प्राप्त करके सभी प्रसन्न होते है, क्योंकि यश के द्वारा दुर्नाम दूर होता है, अन्न प्राप्त होता है, शक्ति मिलती है और सब तरह से लाभ होता है।

आत्मशक्ति

१

शक्ति बिना महेशानि ! सदाऽहं शवरूपकः।
शक्तियुक्तो यदा देवि ! शिवोऽहं सर्वकामदः ॥ (पद्मपुराण)

शिव कहते है—हे पार्वती ! शक्ति के बिना हम भी शव के समान है। शक्ति-युक्त होने पर ही हम शिव और सभी कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ बनते हैं।

२

प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः।
न तं भर्त्तारमिच्छन्ति, षण्ढं पतिमिव स्त्रियः ॥ (पचतन्त्र)

—जिसके प्रसन्न होने से किसीका लाभ नही होता और क्रुद्ध होने से किसीकी हानि नही होती, ऐसे नपुसक पति को स्त्रियां भी अपना स्वामी नही वनाना चाहतीं।

कर्म ही धर्म है

अपहाय निजं कर्म कृष्ण कृष्णेति वादिनः।
ते हरेर्द्वेषिणः पापाः धर्मार्थं जन्म यद्धरेः॥ (विष्णुपुराण)

—अपने (स्वधर्मोक्त) कर्मो को छोड़ (केवल) कृष्ण-कृष्ण कहते रहनेवाले लोग हरि के द्वेषी और पापी है, क्योंकि स्वय हरि का जन्म भी तो धर्म की रक्षा के लिए ही होता है। (गीता-रहस्य)।

पाप-पुण्य

१

अष्टादशपुराणानां सारं सारं समुद्धृतम।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥

—दूसरो के प्रति उपकार करना ही पुण्य, और दूसरों को कष्ट देना ही पाप है; यही अठारह पुराणो का सार है।

२

न तत्परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः।
एष सक्षेपतो धर्म कामादन्यः प्रवर्त्तते॥ (महाभारत)

—दूसरों के साथ ऐसा व्यवहार न करे जो स्वयं अपने को ही प्रतिकूल जान पड़े। यही समस्त धर्मशास्त्र का सार है; अन्य व्यवहार तो स्वार्थवश होते है।

३

यदन्येषां हितं न स्यात् आत्मन. कर्म पौरुषम्।
अपत्रपेत वा येन न तत्कुर्यात् कथञ्चन॥ (महाभारत)

—अपने जिस कर्म से दूसरो का लाभ नही होता और जिसके करने

में स्वय अपने को लज्जा-सकोच मालूम होता है, उसको कभी न करना चाहिए ।

सत्पुरुष के लक्षण

१

यस्य प्रसादे पद्मास्ते, विजयश्च पराक्रमे ।
मृत्युश्च वसति क्रोधे, सर्वतेजोमयो हि सः ।। (हितोपदेश)

—जिसकी प्रसन्नता से लक्ष्मी की वृद्धि होती है, जिसके पराक्रम का परिणाम विजय होता है, जिसके क्रोध में दूसरों के प्राण तक नष्ट करने की शक्ति होती है, वही महातेजस्वी होता है ।

२

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।

—जो उदारचरित होते है, सारा ससार ही उनका कुटुम्ब होता है।

३

अधमाः कलिमिच्छन्ति, सन्धिमिच्छन्ति मध्यमाः ।
उत्तमा मानमिच्छन्ति, मानो हि महतां धनम् ।। (गरुडपुराण)

—नीच पुरुप सदा झगडा पसन्द करते है , मध्यम कोटि के मनुष्य किसी भी तरह से शान्ति के लिए लालायित रहते है, श्रेष्ठ पुरुप सम्मान-प्राप्ति की कामना करते है । आत्मसम्मान ही महापुरुषो का धन होता है ।

४

सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः ।
सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः ।। (रामायण)

सीता ने राम के सम्बन्ध में हनुमान से कहा, "राम सबके प्रिय, साधु, बलवान आत्मावाले, तत्कालोचित कर्म मे कुशल और नदियों से समुद्र की तरह सदा सज्जनो से घिरे रहते है ।"

५

कार्यसिद्धेर्मतिश्चैव तस्मिन् वानरपुङ्गवे ।
व्यवसायश्च वीर्यञ्च श्रुतं चास्ति प्रतिष्ठितम् ॥ (रामायण)

सुग्रीव ने हनुमान के सम्बन्ध मे राम को बताया कि उसमें कार्य-सिद्धि की वुद्धि (उपाय-शक्ति) है, उद्योग, बल और पांडित्य सभी है ।

६

पात्रे त्यागी, गुणे रागी, भोगी परिजनैः सह ।
शास्त्रे बोद्धा, रणे योद्धा, पुरुषः पञ्चलक्षणः ॥

—सुपात्र के प्रति दानी होना, गुणानुरागी होना, स्वजनों के साथ सुख-दु.ख भोगना, शास्त्र का ज्ञानी होना, युद्ध मे पराक्रमी होना—यही पाच लक्षण पुरुष होने के है ।

७

स्वार्थो यस्य परार्थ एव स पुमानेकः सतामग्रणीः । (भर्तृहरि)

—जिसने परमार्थ को ही अपना स्वार्थ बना लिया है, वह सर्व-श्रेष्ठ सत्पुरुष है ।

८

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा, सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ, प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥
(भर्तृहरि)

—विपत्ति मे धैर्य रखना, ऐश्वर्यशाली होने पर क्षमावान होना, सभा मे वाक्पटुता दिखाना, युद्ध मे पराक्रम दिखाना, कीर्ति-अर्जन मे अनुराग रखना, विद्याव्यसनी होना—ये गुण महात्माओ मे स्वभाव मे ही होते हैं ।

९

प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते सम्भ्रमविधिः,
प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं चाप्युपकृतेः ।

अनुत्सेको लक्ष्म्या निरभि भवसाराः परकथा·,
सता केनोद्दिष्टं विपमममसिधाराव्रतमिदम् । (भर्तृहरि)

—दान को गुप्त रखना, अपने घर आए हुए पुरुष का सत्कार करना, परोपकार करके मौन रहना, दूसरो के किए हुए उपकार का सभा में वर्णन करना, धन पाकर गर्व न करना और पराई चर्चा मे उसके निरादर की बात बचाकर कहना, यह तलवार की धार के समान कठिन व्रत सत्पुरुपो को किसने बताया है।

१०

प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभङ्गेऽप्यसुकरं,
त्वसन्तो नाभ्यर्थ्याः सुहृदपि न याच्यः कृशधनः।
विपद्युच्चैः स्थैर्यं पदमनुविधेयं च महतां,
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ॥

—सज्जन अपने प्राण भले ही त्याग दे, पर वे नीच कर्म नही करते। वे दुष्ट जनो के सामने हाथ नही फैलाते, अल्पधन होने पर मित्र से भी याचना नही करते है। विपत्ति में भी वे महान बने रहते है और सत्पुरुषो का ही आचरण करते है। सज्जनों के लिए यह कठिन व्रत किसने निर्दिष्ट किया है—अर्थात् ये तो उनके स्वाभाविक गुण होते हैं।

११

मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम्। (भर्तृहरि)

—मनस्वी और कार्यार्थी लोग दु ख और सुख मे एक-से रहते हैं, उनकी परवाह नहीं करते है।

१२

महान्महत्स्वेव करोति विक्रमम्—बडे आदमी बड़े आदमियों के साथ ही वीरता दिखलाते है।

१३

प्रवृत्तवाक् चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान्,
आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते ॥ (विदुर)

—जो वाणी-व्यवहार में कुशल, यथातथ्य वर्णन करनेवाला, तर्क-वितर्क मे प्रवीण, प्रतिभाशाली, ग्रन्थ-अभिप्राय को शीघ्र समझनेवाला होता है, वही पण्डित कहलाता है।

राष्ट्र-भारती की कुछ सूक्तियां

१. रहिमन मोहिं न सुहाय, अमी पियावत मान बिन।
वरु विष देय बुलाय, मानसहित मरिबो भलो ॥ (रहीम)

२. आवत ही हरखे नही, नैनन नहीं सनेह।
तुलसी तहां न जाइए, कंचन बरसे मेह ॥ (तुलसी)

३. तुलसी तृण जल कूल को, निरधन निपट निकाज।
कै राखै कै संग चलै, बाह गहे की लाज ॥ (तुलसी)

४. प्रेम बैर अरु पुण्य-अघ, जस-अपजस जयहान।
बात-बीज इन सबन को, तुलसी कहहिं सुजान ॥ (तुलसी)

५. गुनी जनन के हृदय को, वेधत है सो कौन।
असमझवार सराहिबो, समझवार को मौन ॥ (अज्ञात)

६. तुलसी असमय के सखा, धीरज, धरम विवेक।
साहित, साहस, सत्यव्रत, राम भरोसो एक ॥ (तुलसी)

७. कलह न जानब छोट करि, कलह कठिन परिनाम।
लगति अगिनि लघु नीच गृह, जरत धनिक धनधाम ॥ (तुलसी)

८. काहु न कोउ सुख दुःखकर दाता।
निज कृत करम भोग सब भ्राता ॥ (तुलसी)

९. जहां सुमति तहं सम्पति नाना।
जहां कुमित तहं विपति निधाना।। (तुलसी)

१०. जाति न पूछो साधु की, पूछि लीजिए ज्ञान।
मोल करो तरवारि का, पड़ा रहन दो म्यान।। (कबीर)

११. जिन ढूढा तिन पाइया, गहिरे पानी पैठ।
मैं बपुरा बूड़न डरा, रहा किनारे बैठ।। (कबीर)

१२. नांव न जाने गांव का, बिन जाने कित जाव।
चलता-चलता जुग भया, पाव कोस पर गाव।। (कबीर)

१३. धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचै सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय।। (कबीर)

१४. आव गया, आदर गया, नैनन गया सनेह।
ये तीनो तब ही गए, जबहि कहा कछु देह।। (कबीर)

१५. कबहुंक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा तें, संत सुभाव गहौंगो।
जथा लाभ संतोष सदा, काहू सो कछु न चहौंगो।
परहित निरत निरन्तर मन क्रम वचन नेम निबहौंगो।
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगतमान सम सीतल मन परगुन औगुन न कहौंगो।
परिहरि देहजनित चिन्ता दुख सुख समबुद्धि सहौंगो।
'तुलसिदास' प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरिभक्ति लहौंगो।। (तुलसी)

१६. कुलबल जैसो होय सो, तैसी करिहै बात।
वणिक पुत्र जानै कहा, गढ़ लेवे की बात।।

अंग्रेजी की कुछ सूक्तियां

१

A single man without a family and traditions, who has

a fanatical belief in a higher mission may go beyond the limits of human law.

—Manstein, Commander-in-Chief, German Army

मेनस्टीन ने 'न्यूरमबर्ग ट्रायल' में हिटलर के सम्बन्ध मे गवाही देते हुए कहा था :

"एक अकेला मनुष्य जिसके पीछे कोई वश या कुल-परम्परा नहीं, जिसे उच्चतर आदर्श की प्रबल आकांक्षा हो, साधारण मानव-धर्म का अतिक्रमण कर सकता है।"

२

The crowd loves the strong man, the crowd is like a woman —Mussolini.

—जनता बलवान पुरुषों को चाहती है, वह स्त्री की तरह होती है।

३

The heights by great men reached and kept,
Were not attained by sudden flight.
But they, while their companions slept,
Were toiling upwards in the night. —Longfellow.

—महान व्यक्तियो ने जो प्रतिष्ठा प्राप्त की है, वह उन्हें एकाएक एक ही प्रयास में नही मिल गई है। जब उनके अन्य साथी लोग सोए पड़े थे तो वे चुपचाप आत्मोत्थान के लिए प्रयत्नशील थे। इस प्रकार वे उच्चता के शिखर पर पहुंचकर उच्च बन सके।

४

But for me and for us all, reverses are nothing but strokes of the whip, and it is practically these which we needed to drive us forward. —Hitler.

—मेरे लिए और हमारे सबके लिए प्रतिकूल परिस्थितियां और कुछ नहीं केवल चाबुक के प्रहार हैं, और वस्तुतः आगे बढने के लिए हमें इन्हीकी आवश्यकता थी।

५

A people which is not convinced of its own value can never achieve anything. —Hitler.

—जो जाति गौरव को नहीं समझती, वह कभी उन्नति नही कर सकती।

६

The punishment suffered by the wise who refuse to take part in Government is to live under the Government of bad men. —Plato.

—ऐसे बुद्धिमान व्यक्ति, जो गवर्नमेण्ट के सचालन में स्वयं नही भाग लेते, दुष्ट मनुष्यों द्वारा शासित होने का दण्ड भोगते है।

७

A bad man is worse when he pretends to be a saint.

—Bacon.

—जो दुष्ट होकर भी साधु होने का ढोंग करता है, वह महादुष्ट है।

८

Liberty is not merely a privilege to be conferred, it is a habit to be acquired. —Lloyod George.

—स्वतन्त्रता केवल दूसरो द्वारा प्राप्त होनेवाला एक विशेषाधिकार नहीं है, वल्कि वह एक स्वभाव-सुलभ गुण है, जिसका अभ्यास करना पडता है।

९

We know accurately only when we know little; with knowledge doubt increases.

—Goethe.

—जब हम ज्ञान के भार से दबे नहीं रहते तो जितना जानते हैं उसको शुद्ध और निर्दोष रूप मे, अर्थात् पूर्णरूपेण जानते है; ज्ञान की अजीर्णता के साथ चित्त में भ्रम-सन्देह की भी वृद्धि होती है।

१०

Even the best things are not equal to their fame.

—Thoreau.

—सर्वोत्तम वस्तुए भी अपनी प्रसिद्धि के समान श्रेष्ठ नहीं होती।

◇ ◇ ◇